I.S.S.N. 0971-9024

ARHAT VACANA

अर्हत् वचन

वर्ष – 15, अंक – 4 अक्टूबर–दिसम्बर 2003

Vol. -15, Issue-4 October-December 03

कागदीपुरा (नालछा) से प्राप्त
भगवान नेमिनाथ की प्रतिमा 1242 A.D.

(विशेष लेख पृ. 9–16)

कुन्दकुन्द ज्ञानपीठ, इन्दौर
KUNDAKUNDA JÑĀNAPĪṬHA, INDORE

CC-0. Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection. International Digitized by eGangotri For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

जैन समाज ही नहीं राष्ट्र के गौरव

सरस्वती के वरदपुत्र

वाणीभूषण प्राचार्य श्री नरेन्द्रप्रकाशजी जैन

31 दिसम्बर 1933 को आगरा के ग्राम जटौआ में जन्मे प्राचार्यजी ने संघर्षपूर्ण युवावस्था में अपनी प्रतिभा, क्षमता एवं कर्मठता से आदर्श शिक्षक की भूमिका का निर्वाह करते हुए 20 वर्षों तक प्राचार्य के पद को गौरवान्वित किया।

अखिल भारतीय दिगम्बर जैन शास्त्री परिषद के यशस्वी अध्यक्ष एवं जैन गजट के कुशल सम्पादक के रूप में अपने दायित्व का निर्वाह करते हुए आपने अपनी ओजस्वी किन्तु मर्मस्पर्शी वाणी तथा सरल, सहज, रोचक किन्तु तथ्यपूर्ण लेखनी से चतुर्विध संघ में पनप रहे शिथिलाचार पर गहरी चोट करते हुए तीर्थ भक्ति एवं गुरु भक्ति के क्षेत्र में नये प्रतिमान स्थापित किये हैं। दिगम्बर जैन आर्ष परम्परा के प्रति पूर्णतः समर्पित प्राचार्यजी का जीवन निर्भीकता एवं निष्पक्षता की जीवन्त मिसाल है। (देखें पृष्ठ 5-7)

राष्ट्रीय अभिन्दन – कोलकाता, 25.12.03

कर्मठता की प्रतिमूर्ति

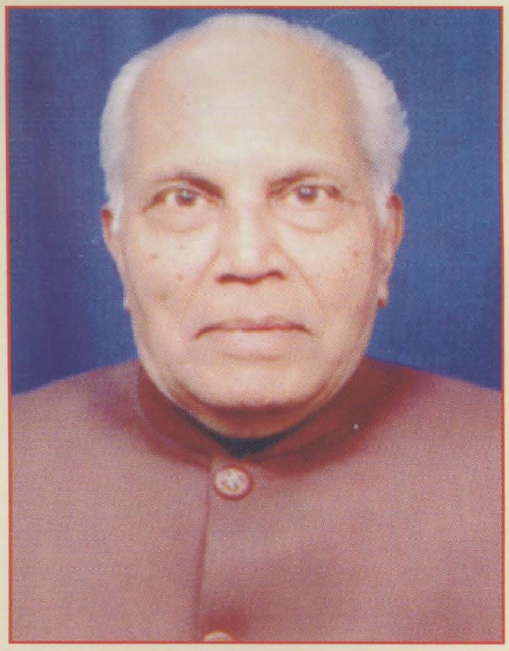

समाजभूषण श्री कैलाशचन्दजी चौधरी

15 नवम्बर 1929 को इन्दौर के श्री बापूलाल चौधरी के परिवार में जन्में श्री कैलाशचन्द चौधरी प्रारम्भ से ही एक सफल व्यवसायी योजनाकार, संगठक एवं कार्य निष्पादक रहे हैं। व्यवसाय, राजनीति एवं समाजसेवा तीनों ही क्षेत्रों में आपने अपनी विशिष्ट छवि निर्मित की है।

साठ के दशक में आपने पं. नेहरू के साथ जुड़कर युवक कांग्रेस के कार्यों को गति दी तो पश्चातवर्ती जीवन के 4 दशकों में भैया श्री मिश्रीलालजी गंगवाल एवं जैनरत्न श्री देवकुमारसिंहजी कासलीवाल के साथ मिलकर समाज को आदिनाथ आध्यात्मिक अहिंसा फाउन्डेशन (बद्रीनाथ) एवं महावीर ट्रस्ट – म.प्र. के रूप में समाज को जो सौगात दी है, उनको समाज कभी विस्मृत नहीं कर सकता है। (देखें पृष्ठ 8)

अमृत महोत्सव – इन्दौर, जनवरी–2004

कुन्दकुन्द परिवार की ओर से स्वस्थ एवं सुदीर्घ जीवन की मंगल कामनाएँ

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

I.S.S.N. - 0971-9024

अर्हत् वचन
ARHAT VACANA

कुन्दकुन्द ज्ञानपीठ (देवी अहिल्या विश्वविद्यालय, इन्दौर द्वारा मान्यता प्राप्त शोध संस्थान), इन्दौर द्वारा प्रकाशित शोध त्रैमासिकी

Quarterly Research Bulletin of Kundakunda Jñānapīṭha, INDORE
(Recognised by Devi Ahilya University, Indore)

वर्ष 15, अंक 4 — अक्टूबर – दिसम्बर 2003
Volume 15, Issue 4 — October - December 2003

मानद - सम्पादक
डॉ. अनुपम जैन
गणित विभाग
शासकीय होलकर स्वशासी विज्ञान महाविद्यालय,
इन्दौर - 452 017 भारत

HONY. EDITOR
DR. ANUPAM JAIN
Department of Mathematics,
Govt. Holkar Autonomous Science College,
INDORE - 452 017 INDIA

☎ 0731 - 2787790, 2545421 ☐ E.mail : anupamjain3@rediffmail.com

प्रकाशक
देवकुमार सिंह कासलीवाल
अध्यक्ष - कुन्दकुन्द ज्ञानपीठ,
584, महात्मा गाँधी मार्ग, तुकोगंज,
इन्दौर 452 001 (म.प्र.)

PUBLISHER
DEOKUMAR SINGH KASLIWAL
President - Kundakunda Jñānapīṭha
584, M.G. Road, Tukoganj,
INDORE - 452 001 (M.P.) INDIA

☎ (0731) 2545744, 2545421 (O) 2434718, 2539081, 2454987 (R)

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

अर्हत् वचन परामर्श मंडल / Arhat Vacana Advisory Board (2003-04)

श्री नरेन्द्रप्रकाश जैन, प्राचार्य
104, नई बस्ती,
फिरोजाबाद - 283 203

Shri Narendra Prakash Jain, Principal
104, Nai Basti,
Firozabad - 283 203

प्रो. लक्ष्मी चन्द्र जैन
सेवानिवृत्त प्राध्यापक - गणित एवं प्राचार्य
जबलपुर - 482 002

Prof. Laxmi Chandra Jain
Retd. Professor - Mathematics & Principal
Jabalpur - 482 002

प्रो. राधाचरण गुप्त
सम्पादक - गणित भारती,
झांसी - 284 003

Prof. Radha Charan Gupta
Editor - Ganita Bharati,
Jhansi - 284 003

प्रो. पारसमल अग्रवाल
रसायन भौतिकी समूह, रसायन शास्त्र विभाग
ओक्लेहोमा विश्वविद्यालय,
स्टिलवाटर OK 74078 USA

Prof. Parasmal Agrawal
Chemical Physics Group, Dept. of Chemistry
Oklehoma State University,
Stillwater OK 74078 USA

डॉ. तकाओ हायाशी
विज्ञान एवं अभियांत्रिकी शोध संस्थान,
दोशीशा विश्वविद्यालय,
क्योटो - 610 - 03 जापान

Dr. Takao Hayashi
Science & Tech. Research Institute,
Doshisha University,
Kyoto - 610 - 03 Japan

प्रो. जे. सी. उपाध्याय
प्राध्यापक - इतिहास
इन्दौर - 452 001

Prof. J.C. Upadhyaya
Professor - History
Indore - 452 001

श्री सूरजमल बोबरा
निदेशक - ज्ञानोदय फाउन्डेशन
इन्दौर - 452 003

Shri Surajmal Bobra
Director - Jñānodaya Foundation
Indore - 452 003

सम्पादकीय पत्राचार का पता

डॉ. अनुपम जैन
'ज्ञान छाया',
डी - 14, सुदामा नगर,
इन्दौर - 452 009
फोन/फैक्स : 0731 - 2787790

Dr. Anupam Jain
'Gyan Chhaya',
D - 14, Sudama Nagar,
Indore - 452 009
Ph./Fax : 0731 - 2787790

सदस्यता शुल्क / SUBSCRIPTION RATES (w.e.f 15.08.03)

	व्यक्तिगत INDIVIDUAL	संस्थागत INSTITUTIONAL	विदेश FOREIGN
वार्षिक / Annual	रु./Rs. 125=00	रु./Rs. 250=00	U.S. $ 25=00
10 वर्ष हेतु / 10 Years	रु./Rs. 1000=00	रु./Rs. 1000=00	U.S. $ 100=00
सहयोगी सदस्य	रु./Rs. 2100=00	रु./Rs. 2100=00	U.S. $ 250=00

पुराने अंक सजिल्द/अजिल्द फाईलों में रु. 250.00/U.S.$ 25.00 प्रति वर्ष की दर से सीमित मात्रा में उपलब्ध हैं। सदस्यता एवं विज्ञापन शुल्क के म.आ./चेक/ड्राफ्ट **कुन्दकुन्द ज्ञानपीठ, इन्दौर** के नाम देय ही प्रेषित करें। इन्दौर के बाहर के चेक के साथ कलेक्शन चार्ज रु. 25/- अतिरिक्त जोड़ कर भेजें।

लेखकों द्वारा व्यक्त विचारों के लिये वे स्वयं उत्तरदायी हैं। सम्पादक अथवा सम्पादक मण्डल का उनसे सहमत होना आवश्यक नहीं हैं। इस पत्रिका से कोई भी आलेख पुनर्मुद्रित करते समय पत्रिका के सम्बद्ध अंक का उल्लेख अवश्य करें। साथ ही सम्बद्ध अंक की एक प्रति भी हमें प्रेषित करें। समस्त विवादों का निपटारा इन्दौर न्यायालयीन क्षेत्र में ही होगा।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

वर्ष - 15, अंक - 4, 2003, 3 - 4

अर्हत् वचन
कुन्दकुन्द ज्ञानपीठ, इन्दौर

अनुक्रम / INDEX

सम्पादकीय - सामयिक सन्दर्भ 5

लेख / ARTICLES

कागदीपुरा (नालछा) में ही पंडित आशाधरजी द्वारा निर्मित विद्यापीठ 9
☐ नरेशकुमार पाठक

कैलाश पूजा या क्षेत्र पूजा ही लिंङ्ग पूजा है 17
☐ रामजीत जैन

जैन धर्म का सनातनत्व एवं महत्व 21
☐ शांतिराज शास्त्री एवं पद्मावतम्मा

श्रमण कौन ? 29
☐ समणी सत्यप्रज्ञा

नागवंश : जैन इतिहास की एक अलक्षित वंश परम्परा 33
☐ सूरजमल बोबरा

प्राणावाय पूर्व का उद्भव, विकास एवं परम्परा 41
☐ आचार्य राजकुमार जैन

सुदीर्घ जिन परम्परा में तीर्थंकर महावीर 49
☐ रमेश जैन

Theories of Indices and Logarithms in India from Jaina Sources 53
☐ Dipak Jadhav

टिप्पणियाँ / SHORT NOTES

जैन तीर्थंकर मूर्तियों में श्रीवत्स 75
☐ जया जैन

पुस्तक समीक्षाएँ / BOOK REVIEWS

जैन विज्ञान और दर्शन की जुगलबंदी 79
(जीवन क्या है ? - अनिलकुमार जैन)
☐ महेश दुबे

एक महत्वपूर्ण दस्तावेज (जैन इतिहास - सूरजमल खासगीवाला) 80
☐ अनुपम जैन

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

परिचय / INTRODUCTION

अनेकान्त ज्ञान मन्दिर (शोध संस्थान), बीना 81
□ ब्र. संदीप 'सरल'

आख्या / REPORTS

जैन पाण्डुलिपि सूचीकरण प्रशिक्षण शिविर, इन्दौर, 83
19 - 21 सितम्बर 03
□ अनुपम जैन

अर्हत् वचन पुरस्कार समर्पण समारोह, इन्दौर, 89
21 सितम्बर 03
□ अनुपम जैन

जैन पुस्तकालय एवं शोध संस्थान, राष्ट्रीय संगोष्ठी, सोनागिर, 93
13 - 14 सितम्बर 03
□ अनुपम जैन

प्रथम दि. जैन युवा विद्वत् संगोष्ठी, सोनागिर, 99
13 - 15 अक्टूबर 03
□ सुनील जैन 'संचय'

चतुर्थ जैन ज्योतिष प्रशिक्षण शिविर, सोनागिर, 101
16 - 22 अक्टूबर 03
□ मुकेशकुमार जैन

एकादश राष्ट्रीय विद्वत् संगोष्ठी, केकड़ी (अजमेर), 102
7 - 9 अक्टूबर 03
□ विजय कुमार जैन

कुण्डलपुर महोत्सव, कूण्डलपुर (नालन्दा) 103
8 - 10 अक्टूबर 03
□ अनुपम जैन

गतिविधियाँ 111

धन्यवाद/आभार 119

मत - अभिमत 121

हमारे लेखक 124

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

अर्हत् वचन
कुन्दकुन्द ज्ञानपीठ, इन्दौर

अभिनन्दन - दो सामाजिक विभूतियों का

सरस्वती के वरदपुत्र - प्राचार्य श्री नरेन्द्रप्रकाशजी जैन

शास्त्राणि अधीत्यापि भवन्ति मूर्खा:।
यस्तु क्रियावान पुरुष: स: विद्वान॥

इस उक्ति को जैन समाज ने सदियों से आत्मसात कर रखा है। यही कारण है कि पारम्परिक रूप से जैन समाज उत्कृष्ट चारित्र के धारी पूज्य संतों (आचार्यों/मुनिराजों) के प्रति ही विनयावनत होकर उनके वचनों को महत्व देता रहा है। भगवान महावीर के निर्वाण के बाद के लगभग 2000 वर्षों में शास्त्र सृजन एवं जिनवाणी की विवेचना का दायित्व पूज्य मुनिराजों ने निभाया। कालान्तर में विपरीत सामाजिक एवं राजनैतिक परिस्थितियों के कारण जब मुनियों का निर्बाध विहार दुष्कर हो गया तो भट्टारक परम्परा ने जिनवाणी का संकलन, संरक्षण एवं संवर्द्धन किया। गत 250 - 300 वर्षों में हिन्दी के मर्मज्ञ पण्डितों ने भी इस दायित्व का निर्वाह किया है। बीसवीं शताब्दी में जैन समाज के सम्मुख अनेक चुनौतियाँ आईं, अनेक आन्दोलन हुए। सदी के अन्तिम 3 दशकों में समाज के सम्मुख आई चुनौतियों से जूझने, सशक्त नेतृत्व देने एवं किंकर्त्तव्यविमूढ़ता की स्थिति में सम्यक मार्गदर्शन देने वाले विलक्षण एवं बहुआयामी प्रतिभा सम्पन्न व्यक्तित्व का नाम है - **प्राचार्य नरेन्द्रप्रकाश जैन।**

व्यक्तित्व एवं पारिवारिक जीवन - स्वनामधन्य पं. मक्खनलालजी शास्त्री से शिक्षित, सादा जीवन उच्च विचार के प्रतीक, ग्राम जटौआ जिला आगरा के निवासी प्रतिष्ठाचार्य **पं. रामस्वरूपजी शास्त्री** एवं माँ **चमेलीबाई** के घर 31 दिसम्बर 1933 को बालक नरेन्द्र का जन्म हुआ। 1952 में आपका विवाह एटा निवासी सुश्रावक श्री जयकुमारजी जैन की सुपुत्री **राजेश्वरीजी** से हुआ। इस धर्मनिष्ठ दम्पति की छह सन्तानें - **श्री भुवनेन्द्र, उपेन्द्र, जिनेन्द्र, श्रीमती प्रतिभा, कल्पना** एवं **अलकाजी** आज अपने अपने क्षेत्रों में पारिवारिक एवं सामाजिक दायित्वों का निर्वाह करते हुए माता - पिता की कीर्ति को वृद्धिंगत कर रहीं हैं।

पूर्व में आगरा जनपद का ही एक भाग रहे देश के सुप्रसिद्ध नगर **फिरोजाबाद** के प्रतिष्ठित एस. आर. के. इण्टर कॉलेज से इण्टरमीडिएट की परीक्षा उत्तीर्ण करने के बाद ही 1953 में स्थानीय पी. डी. जैन इण्टर कॉलेज में आपकी शिक्षक के रूप में नियुक्ति हो गई। ज्ञान प्राप्ति की नैसर्गिक रूचि के कारण आपने शिक्षक के रूप में ही B.A., M.A. एवं L.T. की उपाधियाँ अर्जित की। समर्पित शिक्षक के रूप में आपकी यशोगाथा निरन्तर फैलती रही। फलत: विद्यालय प्रबन्धन ने उन्हें 1971 में विद्यालय का प्राचार्य नियुक्त कर शैक्षिक नेतृत्व का दायित्व सौंपा। अपनी लगन, निष्ठा, समर्पित कार्यशैली, कुशल प्रबन्ध क्षमता, निष्पक्ष एवं प्रभावी वक्तृत्व कला के आधार पर आपने 21 वर्षों तक प्रशासनिक दायित्वों का सफलतापूर्वक निर्वाह किया एवं सेवानिवृत्ति की निर्धारित तिथि से 2 वर्ष पूर्व ही 1992 में निस्पृहता पूर्वक स्वैच्छिक अवकाश लेकर अपना शेष जीवन जैन समाज को समर्पित कर दिया। आपके सक्षम प्रबन्ध कौशल के कारण ही संस्था आपके प्राचार्यत्व में समस्या विहीन रही। 1982 एवं 1983 में क्रमश: आपको माता एवं पिता का वियोग सहना पड़ा।

सम्प्रति आप **अ. भा. दिगम्बर जैन शास्त्री परिषद के अध्यक्ष, अ. भा. दिगम्बर**

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

जैन (धर्म संरक्षिणी) महासभा के मुखपत्र जैन गजट के सम्पादक, कुन्दकुन्द ज्ञानपीठ - इन्दौर की शोध त्रैमासिकी अर्हत् वचन के परामर्श मण्डल के प्रमुख, भगवान महावीर ज्योति रथ प्रवर्तन समिति के महामंत्री के रूप में अपनी सेवाएँ समाज को प्रदान कर रहे हैं साथ ही स्वयं के नाती पोतों को प्यार एवं दुलार के साथ दे रहे हैं सुश्रावक/श्राविका के संस्कार।

कुशल एवं निर्भीक वक्ता – श्री नरेन्द्रप्रकाशजी अपने छात्र जीवन से ही एक कुशल प्रतिभा सम्पन्न एवं तर्क प्रवण प्रभावक वक्ता थे। मण्डल एवं प्रदेश स्तर पर वाद - विवाद प्रतियोगिताओं में प्रथम स्थान प्राप्त कर आपने अनेक पुरस्कार एवं चलित मंजूषाएँ प्राप्त कीं। समय के साथ - साथ आपकी इस प्रतिभा में निखार आता ही गया एवं वर्तमान में वे जैन समाज के सर्वश्रेष्ठ प्रभावी, निर्भीक एवं निष्पक्ष वक्ता हैं। आगम के तलस्पर्शी ज्ञान ने इस कला में सोने में सुहागे का काम किया। कुशल वक्तृत्व शैली के कारण आपको कोलकाता की समाज द्वारा **'वाणीभूषण'**, अ. भा. दिगम्बर जैन महासभा द्वारा **'व्याख्यान वाचस्पति'** एवं जैन मठ कोल्हापुर द्वारा **'व्याख्यान केसरी'** की उपाधि से विभूषित किया गया है।

सिद्धहस्त लेखक एवं सम्पादक – यह सत्य है कि आपने कोई विशालकाय ग्रन्थ या काव्य आदि नहीं रचा है किन्तु **मधुर स्मृतियाँ, 'शाकाहार - एक आन्दोलन', आचार्य विमलसागर, आचार्य विद्यानन्द : व्यक्तित्व एवं कृतित्व', 'हिन्दी रचना कल्पद्रुम', 'जैन पर्व : एक अनुचिन्तन'** जैसी लघु एवं प्रभावी कृतियाँ प्रस्तुत कर आपने एतद् विषयक अपनी क्षमताओं का दिग्दर्शन करा दिया है। यदि गुलेरीजी 5 कहानियाँ लिखकर हिन्दी साहित्य में अमर हो सकते हैं तो अत्यन्त समसामयिक एवं महत्वपूर्ण विषयों पर लगभग 300 सम्पादकीय एवं अन्य आलेख लिखने वाले प्राचार्यजी क्यों नहीं? आपके दो निबन्ध संग्रह - **'चिन्तन का प्रवाह'** एवं **'समय के शिलालेख'** मेरे सम्मुख हैं। इनमें विषयवस्तु का प्रौढ़ निदर्शन, भाषा की सरलता, सहजता, शैली का चुटीलापन, व्यंगोक्तियाँ , विषय की आवश्यकता के अनुरूप संकलित गाथाएँ, दोहे, शेरो - शायरी, एवं आगम के सन्दर्भ दृष्टव्य हैं। धर्म - दर्शन, श्रमणाचार, श्रावकाचार, सामयिकी, साधक के पर्व, समस्याएँ और समाधान, अंकुर आनन्द के, विविधा आदि उपशीर्षकों के अन्तर्गत इनमें संकलित आपके 70 - 80 आलेख ही आपको अमर बना चुके हैं। किन्तु अभी तो 200 से ज्यादा आलेख पुस्तकाकार रूप में आने शेष हैं। शोध पत्रिकाओं के अलावा शेष पत्र - पत्रिकाओं का जीवन थोड़ा होता है, उनमें निहित सम्पादकीय अंश समय के साथ बिसरा दिये जाते हैं किन्तु निबन्ध/आलेख संग्रह के रूप में उनके आने से इन विचारों का बेहतर मूल्यांकन हो सका है। प्राचार्यजी के राष्ट्रीय अभिनन्दन समारोह के अवसर पर उनके द्वारा स्फुट रूप में लिखी सम्पूर्ण सामग्री का संकलन एवं उनका पुस्तकाकार प्रकाशन एक बेहतर एवं आवश्यक रूप से किया जाने योग्य निर्णय होगा, यह मेरा अभिमत एवं आग्रह पूर्व निवेदन है।

सम्पादन का काम लेखन से अधिक जटिल होता है। दूसरों के विचारों की मौलिकता को अक्षुण्ण रखते हुए उसे भाषा एवं शैली की दृष्टि से तराशना जटिल, श्रम एवं समयसाध्य कार्य होता है। प्राचार्यजी ने इस क्षेत्र में अनुकरणीय मानक स्थापित किये हैं।

समर्पित शिक्षक एवं प्रशासक – शिक्षा के पावन क्षेत्र में व्यवसाय की पवित्रता एवं शिक्षक की गरिमा को अक्षुण्ण रखने हेतु उन्होंने जीवन भर संघर्ष किया। प्राचार्य के रूप में पी. डी. जैन इण्टर कॉलेज, फिरोजाबाद को आपने इतना सुन्दर नेतृत्व दिया कि **'प्राचार्यजी'** आपके नाम का पर्याय बन गया। कविवर हरिऔध की पंक्तियाँ **'कविता करके तुलसी न लसे, कविता लसी पा तुलसी की कला'** के अनुरूप मैं तो यह कहना चाहूँगा कि आप

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

सदृश व्यक्तित्व को पाकर प्राचार्य पद ही गौरवान्वित हुआ है।

गुरु भक्त एवं तीर्थ भक्त – आप परम मुनिभक्त एवं तीर्थ भक्त हैं। संतशिरोमणि आचार्य श्री विद्यासागरजी, राष्ट्रसंत आचार्य श्री विद्यानन्दजी, चारित्रचक्रवर्ती आचार्य श्री शांतिसागरजी की पट्ट परम्परा के आचार्य श्री वर्द्धमानसागरजी एवं आचार्यश्री अभिनन्दनसागरजी , मर्यादा पुरुषोत्तम आचार्य श्री भरतसागरजी, गणिनीप्रमुख आर्यिका श्री ज्ञानमती माताजी, गणिनी आर्यिका श्री सुपार्श्वमती माताजी आदि समस्त गुरूओं के प्रति आपकी अनन्य श्रद्धा एवं भक्ति है। स्वयं श्रावकों के मूलगुणों का पालन करते हुए आपने श्रमण संस्था में पनपने वाले शिथिलाचारों पर भी आवश्यकतानुसार अपनी लेखनी चलाई तथा इस महान एवं पूज्य संस्था में कुरीतियों को पनपने से रोका। वास्तव में यह उन सदृश निर्भीक, आगमनिष्ठ, गुरुभक्त विद्वान के लिये ही शक्य है। वे विवेकवान, गुरुभक्त सुश्रावक है।

तीर्थकरों की जन्मभूमियों, निर्वाणभूमियों के संरक्षण, संवर्द्धन एवं विकास में भी उन्होंने अपनी शक्तियों का सार्थक उपयोग किया है। मित्रों! संस्कृति संरक्षण के इस पुनीत यज्ञ में दी गई उनकी आहुति कभी भी व्यर्थ नहीं जायेगी, ऐसा हमारा विश्वास है एवं भावी पीढ़ी उनके इस निस्पृह योगदान हेतु सदैव कृतज्ञ रहेगी। फिरोजाबाद की जैन मेला भूमि के आन्दोलन का प्रश्न हो अथवा एकान्तवादियों की बेबुनियाद व्याख्याओं का जवाब देने का अवसर प्राचार्य जी सदैव अग्रिम पंक्ति में डटे रहे। उन सदृश समर्पित विद्वान श्रावकों के संघर्ष से ही श्रमण संस्कृति की धारा आज अविरल रूप में प्रवाहित हो रही है एवं भविष्य में होती रहेगी।

1987 में कुन्दकुन्द ज्ञानपीठ की स्थापना के बाद प्रारंभ के 4 - 5 वर्षों तक तो इसकी उपेक्षा हुई क्योंकि लोगों ने सोचा कि अन्य अनेक श्रेष्ठियों के समान श्री देवकुमारसिंह कासलीवाल जी ने भी इसकी घोषणा भर की है। किन्तु जब काका साहब श्री देवकुमारसिंहजी कासलीवाल के सतत संरक्षण, वैयक्तिक अभिरूचि एवं सुविचारित रीति - नीति के अन्तर्गत योजनाबद्ध ढंग से कार्य करने एवं कराने के कारण संस्था चल निकली एवं इसकी खुशबू फैलने लगी तो परम्परानुसार अनेक विघ्नसंतोषी जीवों ने संस्था पर प्रत्यक्ष या परोक्ष नियंत्रण करने के षडयंत्र रचने शुरू कर दिये। ऐसे में वैयक्तिक एवं पारिवारिक प्रतिकूलताओं की परवाह किये बगैर संस्था को सम्यक मार्गदर्शन, सतत सहयोग एवं समर्थन देकर प्राचार्यजी ने कुन्दकुन्द ज्ञानपीठ की अविस्मरणीय सेवा की है। पुरस्कार योजनाओं के क्रियान्वयन एवं अर्हत् वचन में प्रकाशनार्थ प्राप्त लेखों की समीक्षा में आपका सहयोग तो मैं कभी नहीं भुला सकता। अभिनन्दन समारोह के अवसर पर कुन्दकुन्द ज्ञानपीठ स्वयं को गौरवान्वित अनुभव करता है।

प्राचार्यजी के बहुआयामी व्यक्तित्व का चित्रण इन चंद पंक्तियों में संभव नहीं है। यहाँ तो मैंने मात्र एक झलक प्रस्तुत की है।

'समय के शिलालेख' शीर्षक अपनी सद्यः प्रकाशित कृति के प्रारम्भ में अपनी भावनाएँ व्यक्त करते हुए आपने जो अन्तिम दो लाइन लिखी हैं, वे उनके चिन्तन को सटीक रूप से व्यक्त करती हैं। काश! हम उनकी पीड़ा को आत्मसात कर पाते।।

कर्मक्षेत्र में उतर रहा हूँ, लेकर यह अभिलाषा।
समझ सके संगठन शक्ति की, जनता अब परिभाषा।।

आइये। राष्ट्रीय अभिनन्दन समारोह (कोलकाता - 25 दिसम्बर 03) के अवसर पर हम सब उनके स्वस्थ, सुदीर्घ, यशस्वी जीवन की मंगल कामना के साथ उनकी भावना के अनुरूप जैन समाज के संगठन को बलशाली बनाने के लिये भी प्रयासरत हों।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

कर्मठता की प्रतिमूर्ति - श्री कैलाशचन्दजी चौधरी

संत, विद्वान, श्रेष्ठि एवं सामाजिक कार्यकर्त्ता ये चारों मिलकर समाज को दिशा देते हैं। कोई भी बड़ा सामाजिक कार्य इन चारों के सम्मिलित प्रयासों के बिना शक्य नहीं है। पारम्परिक रूप से गुरुभक्त हमारी समाज संतों की प्रेरणा से प्रारंभ किये गये कार्यों में ही अपनी सहभागिता एवं समर्थन देती है। विद्वान किसी भी योजना के स्वरूप के युक्तियुक्तकरण एवं आगम की दृष्टि से उसकी सुसंगतता की पुष्टि करते हैं। विद्वान सम्यक सुझाव देकर योजना के स्वरूप को सुगठित, सार्थक एवं समाजोपयोगी बनाते हैं। क्रियान्वयन हेतु आर्थिक सहयोग उपलब्ध कराने का दायित्व श्रेष्ठियों का रहता है किन्तु उसको क्रियान्वित कौन करेगा? कोई भी योजना केवल आशीर्वाद, सुझाव एवं धन से नहीं चलती है। उसको चलाने वाला चाहिये। इसमें लगता है समय, शक्ति, मेधा एवं न्यूनाधिक अर्थ भी। किसी योजना की कार्ययोजना (Work Plan) तैयार करना, मानवीय संसाधनों को एकत्र करना उन्हें मानसिक रूप से योजना के विविध पक्षों के क्रियान्वयन हेतु सक्षम एवं सचेष्ट करना, योजना के क्रियान्वयन में आने वाली दिक्कतों की कल्पना कर उनके निराकरण हेतु तैयारी करना और इन सबसे ऊपर प्रत्येक कार्य में छिद्रान्वेषण कर उसकी निरर्थक, अनर्गल आलोचना करने वालों के व्यंगबाणों, आरोपों को धैर्यपूर्वक सुनते हुए अपने वैयक्तिक, पारिवारिक दायित्वों की अपेक्षा सामाजिक दायित्वों को वरीयता देना जिसका काम है उसे हम कहते हैं - **सामाजिक कार्यकर्त्ता।** भगवान महावीर के 2500 वे निर्वाण महामहोत्सव प्रसंग पर **धर्मचक्र** का प्रवर्तन, एवं **महावीर ट्रस्ट** की स्थापना, भगवान बाहुबली मूर्ति प्रतिष्ठापना सहस्राब्दि महोत्सव प्रसंग पर **जनमंगल महाकलश** का प्रवर्तन एवं **गोम्मटेश जनकल्याण ट्रस्ट** की स्थापना, भगवान ऋषभदेव की निर्वाण स्थली के प्रतीक रूप में अष्टापद बद्रीनाथ में भगवान आदिनाथ के चरण चिन्ह स्थापित कर **निर्वाण स्थली** का विकास एवं उसके प्रबन्धन तथा अन्य सम्बद्ध कार्यों हेतु **आदिनाथ आध्यात्मिक अहिंसा फाउन्डेशन** की स्थापना एवं संचालन में इन्दौर की जिस एक मात्र शख्सियत का नाम सामाजिक कार्यकर्त्ता के रूप में लिया जाता है एवं लिया जाना चाहिये उसका नाम है **कैलाशचन्द्र चौधरी।** इन्दौर के उदारमना, प्रज्ञावान श्रेष्ठि श्री देवकुमारसिंहजी कासलीवाल के साथ अभिन्न रूप से जुड़कर आपने अनेक योजनाओं को मूर्तरूप दिया है। यदि मैं यह कहूँ कि बीसवीं सदी के अंतिम 3 दशकों में दिगम्बर जैन समाज - इन्दौर, दिगम्बर जैन तीर्थक्षेत्र कमेटी - मध्यांचल तथा सिद्धवरकूट, पावागिरि ऊन, बनेड़िया, मक्सी, बड़वानी आदि क्षेत्रों की व्यवस्थाओं एवं विकास में श्री चौधरीजी का योगदान अप्रतिम है तो अतिशयोक्ति नहीं होगी।

15 नवम्बर 1929 को इन्दौर के प्रतिष्ठित श्री कंवरलाल बापूलाल चौधरी के परिवार में जन्में श्री कैलाशचन्दजी की माता का नाम श्रीमती मूलीबाई था। 12 वर्ष की अल्पायु में ही पिता का विछोह सहे श्री चौधरी का विवाह 23 जून 1946 को मालादेवीजी से हुआ। आपकी संताने श्री प्रदीप, श्री दिलीप एवं श्रीमती रानी आज अपने - अपने क्षेत्रों में समाजसेवा में रत हैं। आपकी शिक्षा - दीक्षा तिलोकचन्द जैन हाईस्कूल - इन्दौर, होल्कर कॉलेज - इन्दौर एवं मध्य भारत हिन्दी साहित्य समिति - इन्दौर से सम्पन्न हुई। जहां से आपने इण्टर, बी.ए. एवं साहित्यरत्न की परीक्षायें उत्तीर्ण कीं।

दिगम्बर जैन उदासीन आश्रम ट्रस्ट के ट्रस्टी के रूप में मुझे कुन्दकुन्द ज्ञानपीठ की गतिविधियों के संयोजन में उनका मार्गदर्शन अनेकशः प्राप्त हुआ है। दीर्घकालिक योजनाओं के गुण दोषों पर विचार कर उनको चरणबद्ध रूप में क्रियान्वित करने की उनकी रीति ने मुझे बहुत प्रभावित किया है।

अमृत महोत्सव (इन्दौर - 11 जनवरी 04) के पावन प्रसंग पर हम कुन्दकुन्द ज्ञानपीठ परिवार की ओर से उनके स्वस्थ एवं सुदीर्घ जीवन की मंगल कामना करते हैं।

अर्हत् वचन का यह 60 वाँ अंक सुधी पाठकों के हाथों में समर्पित है। कृपया अपने सुझावों से हमें अवश्य अवगत कराये। पत्रिका की षष्टिपूर्ति पर आश्रम ट्रस्ट के सभी माननीय ट्रस्टीगणों, सम्पादकीय परामर्श मंडल के सभी विद्वान सदस्यों एवं लेखकों का अभिनन्दन।

डॉ. अनुपम जैन

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

वर्ष - 15, अंक - 4, 2003, 9 - 16

अर्हत् वचन
कुन्दकुन्द ज्ञानपीठ, इन्दौर

कागदीपुरा (नालछा) में ही पंडित आशाधरजी द्वारा निर्मित विद्यापीठ

■ नरेशकुमार पाठक *

सारांश

23 अक्टूबर 2003 को नालछा के समीप कागदीपुरा से भगवान नेमिनाथ की 13 वीं शती की एक पद्मासन सांगोपांग प्रतिमा प्राप्त हुई। इस प्रतिमा के प्राप्ति स्थल के ऐतिहासिक सन्दर्भों एवं पुरातात्विक अवशेषों का विश्लेषण प्रस्तुत आलेख में किया गया है। **सम्पादक**

नालछा धार जिले की धार तहसील के माण्डव से 10 कि.मी. एवं धार से 25 कि.मी. की दूरी पर स्थित है। यह 22°16′ उत्तरी अक्षांस 75°29′ पूर्वी देशान्तर पर स्थित है। नालछा के अवशेषों में प्राचीनतम अवशेष के रूप में जैन तीर्थंकर नेमिनाथ की उत्कीर्ण प्रतिमा, जो कुक्षी से प्राप्त हुई थी, के लेख पर मण्डापिका दुर्ग में प्रतिमा दान का उल्लेख है। यह प्रतिमा लगभग 6 ठी शती ईस्वी की है। धार से 20 कि.मी. धार माण्डव मार्ग पर लुनेरा (लुन्हेरा) ग्राम स्थित है। यह 22°28′ उत्तरी अक्षांस व 75°25′ पूर्वी देशान्तर पर स्थित है। इस गाँव के पास मानसरोवर तीर्थ स्थल स्थित है। गाँव के दक्षिण पश्चिम में अवश्य जैन मूर्तियाँ मिली हैं। पठार में नीचे उतरते ही तलहटी में मेवाड़ से आये हुए लोगों की एक बस्ती भी मिली है, जिसकी पहचान माण्डल दुर्ग के रूप में की जा रही है। यहाँ एक मडलासी तालाब भी है। इस स्थल से पश्चिम में कुंजड़ा खोपडा (खाई) एवं चमार डांग क्षेत्र में प्राचीन काल के रिहायशी मकानों के अवशेष मिले हैं। मण्डल दुर्ग मूलत: राजस्थान के उदयपुर से 161 कि.मी. है। यह एक पर्वतीय शिखर पर आधा मील के क्षेत्र में विस्तारित था और अपनी गोलाकार आकृति के कारण मण्डलाकार नाम से भी जाना जाता था, राजस्थान पर मुस्लिम आक्रमणकारियों ने भीषण विनाश किया और चारों ओर आतंक फैला दिया। माण्डल दुर्ग भी मोहम्मद गौरी द्वारा जब जीत लिया गया तो प्रसिद्ध जैन विद्वान आशाधरजी अपने 1700 साथियों को साथ लेकर मालवा के परमार शासक विन्ध्य वर्मन के संरक्षण में चले आये, उन्होंने धार व माण्डु के मध्य स्थित नालछा ग्राम को अपना स्थायी निवास बनाने का निश्चय किया, पं. आशाधर परवर्ती परमार शासक सुभट वर्मा एवं जयतुंग देव के भी समकालीन रहे। आशाधर का पुत्र भी परमार शासकों की सेवा में था।

नालछा के समीप आशाधर का निवास अज्ञात था। मई - जून 1982 में राष्ट्रीय सेवा योजना के शिविर में एक स्थान खोज निकाला गया जहाँ पर कुछ समय पूर्व तक सौड़पुर के जागीरदारों का दरबार लगता था। यहाँ आम वृक्षों से घिरा 7x7 वर्ग मीटर का एक ओटला (चबूतरा) है, इसी स्थान के समीप पूरी हुई एक बावड़ी है, जिसकी प्राचीर में प्रस्तर पर 'माण्डल' शब्द खुदा हुआ है। स्थानीय लोगों से ज्ञात हुआ कि यहाँ पर एक छोटा सा दुर्ग था जिसकी प्राचीरें दक्षिण में कूजंड़ा खोदड़ा, पश्चिम में चमार डांग एवं उत्तर में मानसरोवर तक विस्तृत थी। तालाब वाले इस क्षेत्र के उस पार जैन मन्दिर के अवशेषों के ढेर पड़े हैं, उनमें से मन्दिर के पत्थरों और अनेक जैन तीर्थंकरों की खण्डित प्रतिमाओं को कृषकों ने अपने खेतों में मेड़ें पर लगा रखा है।

* संग्रहाध्यक्ष, जिला पुरातत्व संग्रहालय, हिन्दूपति महल, पन्ना (म.प्र.)

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

पण्डित आशाधर के साथ आये लोगों ने मिलकर अपने मूल स्थान की स्मृति में नालछा के समीप ही दूसरा माण्डल दुर्ग स्थापित किया। निश्चित ही यह पर्वतीय शिखर के बजाय पठारी भाग पर बनाया गया था। यहाँ पर एक तालाब और जैन मन्दिरों का निर्माण भी करवाया गया। यहीं के जैन मन्दिर में रहकर पण्डित आशाधर ने भारत प्रसिद्ध जैन ग्रन्थों[1] की रचना की जिसके कारण नलकच्छपुर (नालछा) जैन धर्मावलम्बियों की धार्मिक गतिविधियों का प्रमुख केन्द्र बन गया।

लुन्हेरा - नालछा के मध्य में धार - माण्डव मार्ग से एक कि.मी. पश्चिम में कागदीपुरा गांव स्थित है, यह 22°27′ उत्तरी अक्षांस व 75°25′ पूर्वी देशान्तर पर स्थित है। इस गाँव के बीहड़ में झाड़ियों में दबे गड्ढे मिले हैं, जो चूने व कांक्रीट से बने हैं। इन्हीं गड्ढों के समीप 20x15 मीटर के पक्के चबूतरे (प्लेट फार्म) भी मिले हैं। यहाँ से दिनांक 23 अक्टूबर 2003 को धनतेरस के दिन रेखा नामक लड़की द्वारा मिट्टी खोदते समय बाईसवें तीर्थंकर नेमिनाथ की प्रतिमा प्राप्त हुई। पद्मासन की ध्यानस्थ मुद्रा में बैठे हुए तीर्थंकर नेमिनाथ की यह दिगम्बर प्रतिमा नग्न अवस्था में है। सिर पर कुंचित केश, लम्बे कर्ण चाप, गर्दन में तीन मोड चिन्ह है। लम्बी नासिका थोड़ी रेखानक से अलग दिख रही है। शान्त मुद्रा, वक्ष पर श्रीवत्स, नाभि पर अष्टरेखा का रेखांकन है। हाथों की हथेली एवं पैरों के तलवों पर भी सूर्य चक्र का रेखांकन है। पादपीठ पर चार पंक्तियों का लेख उत्कीर्ण है, जो पूष मासे 13 सोमवार, विक्रम सम्वत् 1299 (ईस्वी सन् 1242) का लेख उत्कीर्ण है। इसमें मूलसंघे, पद्मा पुत्र महादेव द्वारा यह प्रतिमा प्रतिष्ठापित कराये जाने का उल्लेख है। लेख वाचन इस प्रकार है -

1. सं. 1299 वर्षो धोसरा 13 सोमवार
2. मूलसंघे ऽ॥ वीजयो तीरन शे वंश जिन
3. निज कूटान्वये सान्दाहडता जी माती पुत्र लीछा प्राटी श्री गिणि
4. सा विषे भंवरता जी पदमा पुत्र महादेव पूजा द्वारा दिव महादेव पति प्रण मति नितां

यह प्रतिमा परमार शासक जय तुंग देव के समय की है। पण्डित आशाधरजी 1242 में नलकच्छपुर (नालछा) में निवास कर रहे थे। इस प्रतिमा की प्राप्ति से यह प्रमाणित होता है कि इसी स्थान पर पण्डित आशाधर द्वारा स्थापित नेमिनाथ जिनालय था। यहाँ स्थित प्लेटफार्म एवं भवनों के अवशेष उनके द्वारा स्थापित साहित्य मन्दिर एवं विद्यापीठ के अवशेष प्रतीत होते हैं। यह शोध का विषय है।

मालवा के साहित्यकारों में कवि आशाधर का स्थान सर्वाधिक महत्वपूर्ण है। मोहम्मद गौरी के आक्रमण के पश्चात् 1192 ई. के लगभग आशाधर के पिता श्री सल्लक्षण अपना निवास स्थान मांडवगढ़ छोड़कर धारा नगरी आ गये थे। आशाधर की माता का नाम श्री रत्नी, पत्नी का नाम सरस्वती और पुत्र का नाम छाहड़ था। आशाधर उस युग की महान विभूति थे, उन्होंने धारा नगरी के पांच परमार राजाओं का राज्य देखा और उनके राजाश्रय में सम्मान प्राप्त किया। जैनधर्म के उत्थान के लिये उन्होंने धारा नगरी के समीप नलकच्छपुर (नालछा) को अपना मुख्य निवास स्थान बनाया। वहाँ के नेमि चैत्यालय में रहते हुए अनेक ग्रन्थ लिखे और लोगों को शिक्षित बनाया। उनकी शिष्य परम्परा में से अनेक विद्वानों को मध्यकाल की विभूति माना जाता है।

अर्जन वर्मन (भोज द्वितीय) परमार के समय जैन धर्म की शिक्षा और प्रचार - प्रसार के केन्द्र स्थापित किये गये। आशाधर ने स्वयं भी इसी उद्देश्य की पूर्ति हेतु नलकच्छपुर

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

(नालछा) को अपना निवास बनाया। उन्होंने लिखा है कि -'अब इस समय पुनः मालवा में जैन श्रावक स्वच्छन्दता पूर्वक बिहार करने लगे हैं।' पण्डित आशाधर एक प्रकाण्ड विद्वान, विविध विषय विशेषज्ञ एवं कुशल ग्रन्थकार थे। गद्य और पद्य में लिखे हुए उनके बीस से अधिक ग्रन्थ ज्ञात हैं। इनके विषय हैं - कोश, काव्य शास्त्र, वैद्यक शास्त्र, पूजा प्रतिष्ठा, धर्म शास्त्र, दर्शन, सिद्धान्त तथा काव्य आदि। नलकच्छपुर (नालछा) के नेमिनाथ जिनालय में उन्होंने अपना एक साहित्य मन्दिर एवं विद्यापीठ स्थापित किया था। उनके शिष्य बाल सरस्वती मदन तथा अर्हद्दास ने भी कई ग्रन्थ लिखे। ''पारिजात मंजरी'', ''शासन चतुस्त्रिंशतिका'', ''पुरुदेवचम्पू'' और ''भव्य जनकण्ठा भरण'' आदि इनमें प्रमुख हैं। एक अन्य समकालीन जैन कवि और सम्भवतः आशाधर के गुरु भाई दामोदर कवि कृत ''नेमिनाथ चरित्र'' भी ऐसी रचनाओं के साथ-साथ विशेष रूप से उल्लेखनीय है। आशाधर लगभग 35 वर्षों तक मालवा में रहे और मृत्युपर्यन्त देवपाल देव तथा जैतुंगी देव के समय तक शासकीय सम्मान पाते रहे। नलकच्छपुर (नालछा) में रहते हुए उन्होंने जाति, कर्तव्य, स्याद्वाद तथा अर्हत् सिद्धान्तों की भी सुन्दर व्याख्या की। परमार काल में मालवा में जैन धर्म प्रगति पर था। लेकिन इस प्रगति के साथ-साथ जैन धर्म में अनके बुराईयाँ भी आ चुकी थीं। आशाधर जैसे विद्वानों ने उन्हें दूर करने के लिये अत्यधिक प्रयत्न किये। जैन धर्म में पनपा देवतावाद भी इनका मुख्य कारण था। मध्यकाल में जैन धर्म भी तांत्रिक प्रभाव से अछूता नहीं था और तीर्थकरों के साथ-साथ अन्य देवताओं की पूजा प्रतिष्ठा में वृद्धि हो रही थी। हेलाचार्य, इन्द्रनंदि और मल्लिसेण जैसे दिग्गजों ने तांत्रिक साधना की जो प्रेरणा 9 वीं-10 वीं शती के लगभग समाज को दी वह आशाधर के समय खूब फैल चुकी थी। जैन परम्परा के पंच परमेष्ठियों की पूजन परम्परा का विधान बड़ा प्राचीन है। असद्भाव स्थापना पूजा, जिसे जैन प्रचारकों ने प्रारम्भ में अनुचित बताया है, मध्यकाल में वह प्रचलित हो रही थी। आशाधर जैसे विचारक असद्भाव स्थापना पूजा के विरूद्ध थे। अपने सुप्रसिद्ध ग्रन्थ 'प्रतिष्ठासारोद्धार' में उन्होंने स्पष्ट लिखा है कि असद्भाव स्थापना से लोग मोहित होकर अन्यथा कल्पना की ओर उन्मुख हो जाते हैं। वे त्रिषष्ट शलाका पुरुषों की आराधना को महत्व देते थे और सम्भवतः इसीलिये अनेक प्रतिष्ठा और चरित्र ग्रन्थों के होते हुए भी उन्होंने 'त्रिषष्टि स्मृति शास्त्र' की रचना की थी।

आशाधर के समय जैन धर्म बहु देवतावाद से प्रभावित हो चुका था। चौंसठ योगिनियों और 96 क्षेत्रपालों की पूजा को महत्व प्राप्त हो रहा था और उनसे सम्बन्धित स्तुति परक साहित्य का सृजन भी हो रहा था। भैरव पद्मावती कल्प, विद्यानुवाद, कामचाण्डलिनी कल्प, यक्षिणी कल्प, ज्वालिनी कल्प, दुवालिनी कल्प, मंत्राधिराज कल्प आदि ग्रन्थों में यक्ष-यक्षियों के विविध स्वरूपों की कल्पनाएँ तो थी हीं, साथ-साथ देवी कल्प, अम्बिका कल्प और अद्भुत पद्मावती कल्प जैसे तांत्रिक प्रभाव से युक्त ग्रन्थों का प्रचार-प्रसार भी जैन मतावलम्बियों को प्रभावित करने लगा था। आशाधर की दृष्टि से इस प्रकार का प्रभाव आम्नाय को विच्छेद की ओर उन्मुख करने वाला था। मालवा के इस जैन पण्डित ने आम्नाय की एकता को दृष्टिगत रखते हुए विक्रम सम्वत् 1285 (1228 ई.) में जब परमार नरेश देवपाल देव मालवा का शासक था तब, 'प्रतिष्ठासारोद्धार' नामक अपने सुप्रसिद्ध ग्रन्थ की रचना की। यह ग्रन्थ जैन प्रतिमा विज्ञान की महत्वपूर्ण कड़ी है। जैन विद्वानों के जिसे कलियुग का कालिदास कहा है, वह सन् 1195 से सन् 1245 तक यहीं के नेमि चैत्यालय में रह रहा था।

उपरोक्त विवरण से स्पष्ट होता है कि नालछा के आसपास का भाग, जहाँ कई नये गाँव बस गये हैं, परमार काल में नालछा नगर के अन्तर्गत थे। पण्डित आशाधर

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

का निवास, नेमि जिनालय, साहित्य मन्दिर एवं विद्यापीठ की खोज के सन्दर्भ में मेरा यह सुनिश्चित मत है कि कागदीपुरा से मिली तीर्थंकर नेमिनाथ की दिगम्बर जैन प्रतिमा पण्डित आशाधर की समकालीन प्रतिमा होकर नेमि जिनालय में स्थापित मुख्य प्रतिमा है। मन्दिर का सम्पूर्ण भाग उसी स्थान पर बिखरा पड़ा है, वहाँ फैले अवशेष साहित्य मन्दिर विद्यापीठ के अवशेष हैं।

सन्दर्भ

1. पंडित आशाधर ने विपुल परिमाण में साहित्य का सृजन किया है। वे मेधावी कवि, व्याख्याता और मौलिक चिन्तक थे। अब तक उनकी निम्नलिखित रचनाओं के उल्लेख मिले हैं -

1. प्रमेय रत्नाकर
2. भरतेश्वराभ्युदय
3. ज्ञान दीपिका
4. राजीमति विप्रलंभ
5. अध्यात्म रहस्य
6. मूलाराधना टीका
7. इष्टोपदेश टीका
8. भूपालचतुर्विंशति टीका
9. आराधनासार टीका
10. अमरकीश टीका
11. क्रियाकलाप
12. काव्यालंकार टीका
13. सहस्रनामस्तवन सटीक
14. जिनयज्ञ कल्प सटीक
15. त्रिषष्ठिं स्मृति शास्त्र
16. नित्यमहोद्योत
17. रत्नत्रय विधान
18. अष्टांगहृद्योतिनी टीका
19. सागार धर्मामृत सटीक
20. अनगार धर्मामृत सटीक

2. इन्दौर संग्रहालय में संरक्षित जैन तथा बौद्ध प्रतिमाएँ एवं कलाकृतियाँ, भोपाल, 1991.

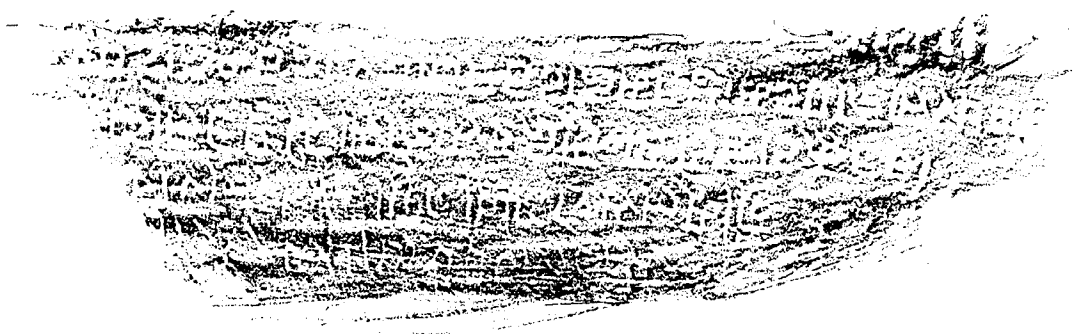

मूर्ति पर अंकित प्रशस्ति

प्राप्त - 30.10.03

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

कागदीपुरा (नालछा) के कतिपय चित्र

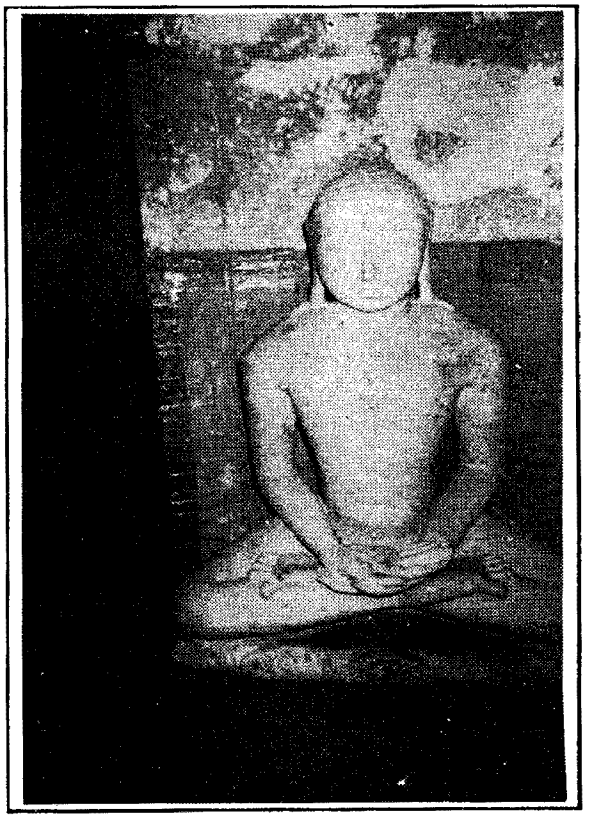

कागदीपुरा में खण्डहरों से प्राप्त
तीर्थंकर नेमिनाथ की प्रतिमा
वि.सं. 1299, ई.सन् 1242
सफेद बलुवा पत्थर पर निर्मित

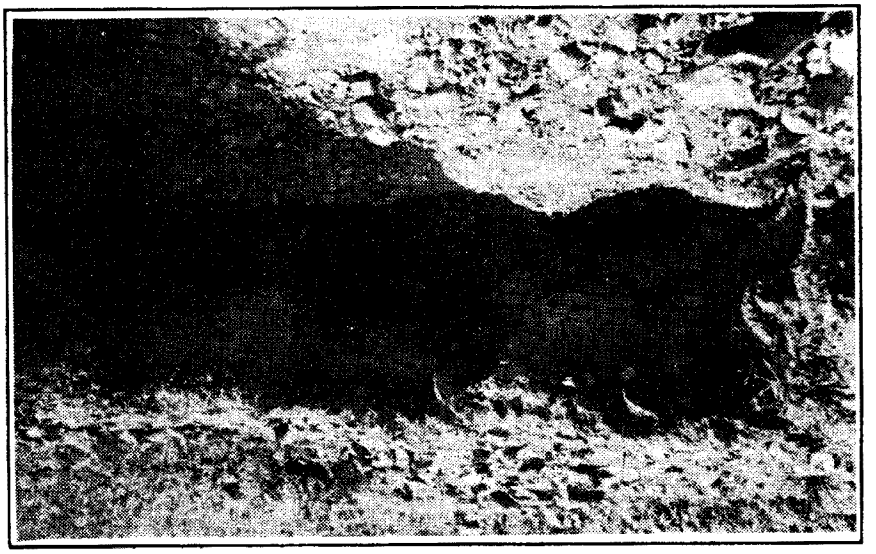

कागदीपुरा के खण्डहर, जहाँ से तीर्थंकर नेमिनाथ की प्रतिमा दिनांक 23 अक्टूबर 2003 को प्राप्त हुई। इसी स्थान पर जैन कवि, पण्डित आशाधर का नेमिनाथ जिनालय था।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

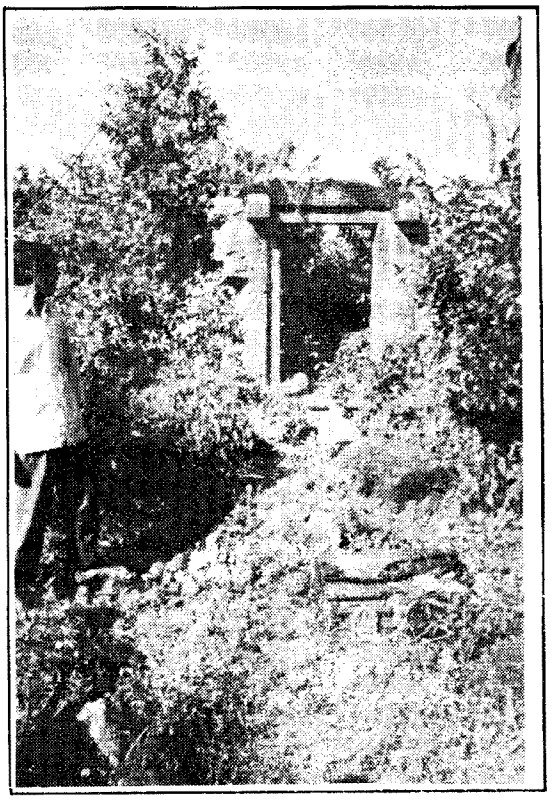

कागदीपुरा स्थित प्राचीन नेमिनाथ जिनालय के पास स्थित साहित्य मन्दिर व विद्यापीठ के एक दरवाजे का दृश्य एवं जिनालय के खण्डित पाषाण खण्ड

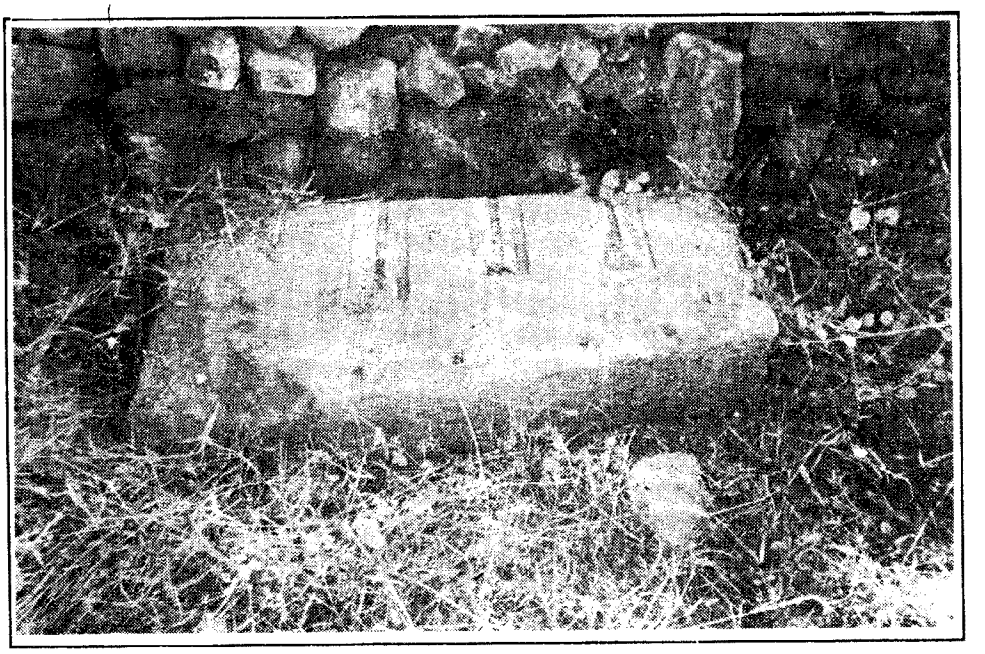

कागदीपुरा के पास के खण्डहर जिस पर स्थित नेमिनाथ जिनालय का टूटा हुआ पत्थर

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

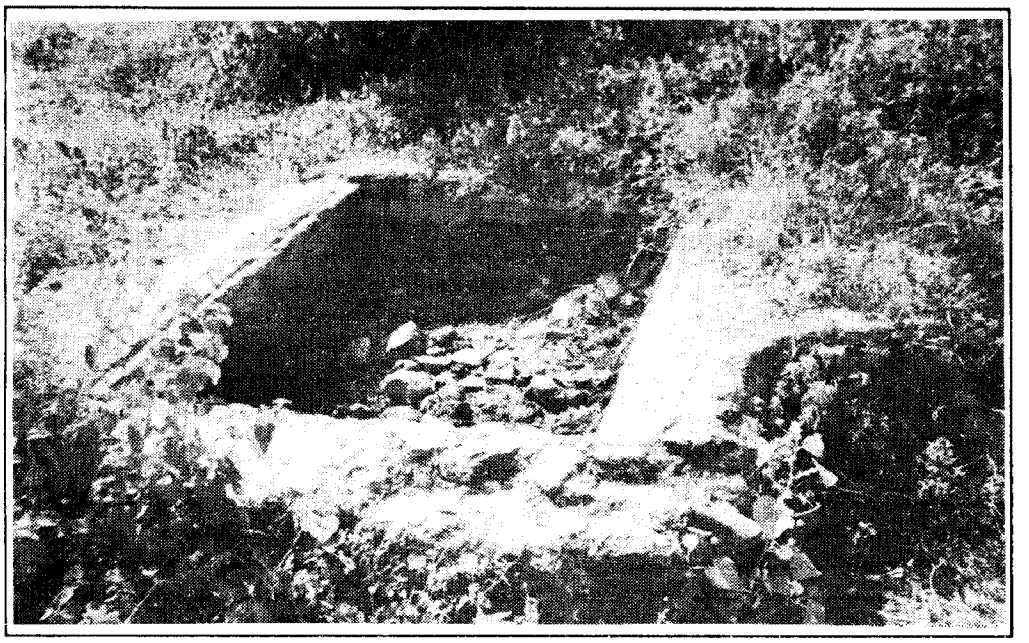

कागदीपुरा में स्थित खण्डहरों में जलकुण्ड, जहाँ संभवतः पण्डित आशाधर के विद्यापीठ का जलसंग्रह किया जाता होगा।

कागदीपुरा में स्थित खण्डहरों में पण्डित आशाधर द्वारा निर्मित नेमिनाथ जिनालय की एक प्राचीन परमार कालीन प्रतिमा

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

कागदीपुरा में प्राप्त परमारकालीन प्राचीन प्रतिमा

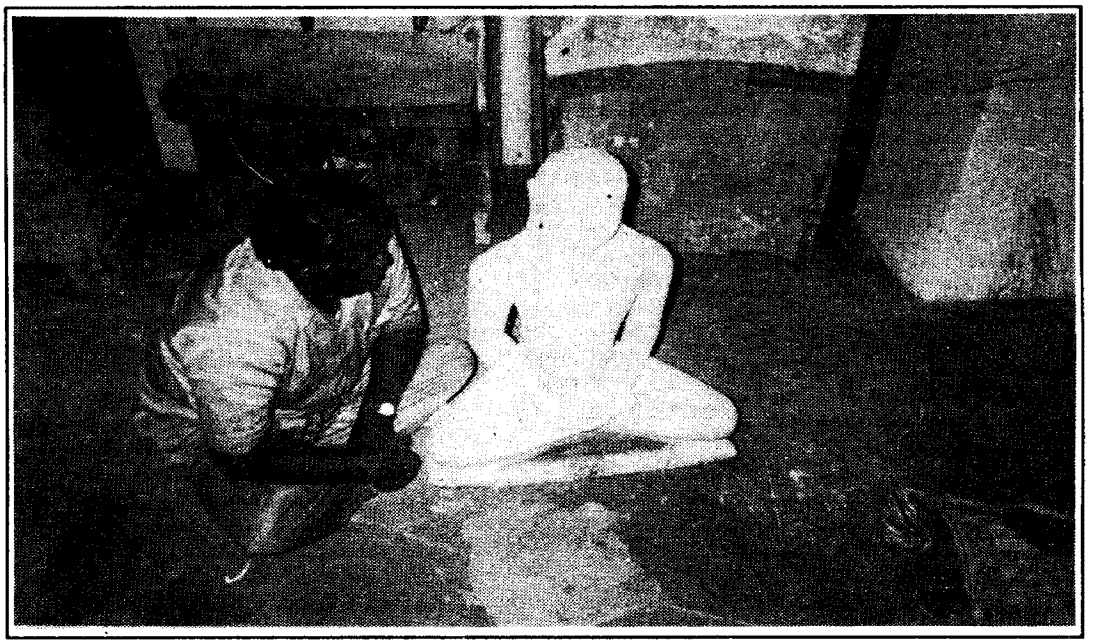

कागदीपुरा में प्राप्त तीर्थंकर नेमिनाथ की प्रतिमा का अवलोकन करते हुए
मानतुंग पुष्प - इन्दौर के सम्पादक श्री सुभाष गंगवाल

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

वर्ष - 15, अंक - 4, 2003, 17 - 20

अर्हत् वचन
कुन्दकुन्द ज्ञानपीठ, इन्दौर

कैलाश पूजा या क्षेत्र पूजा ही लिंङ्ग पूजा है

■ रामजीत जैन *

सारांश

तिब्बती भाषा में लिंग का अर्थ क्षेत्र या तीर्थ है। अतः लिंग पूजा का अर्थ तिब्बती भाषा में तीर्थ पूजा या क्षेत्र पूजा है। तिब्बत के लोगों में कैलाश पर्वत के प्रति बड़ी श्रद्धा है। वे इसकी 32 मील की परिक्रमा करते हैं। भगवान ऋषभदेव की निर्वाण भूमि होने के कारण कैलाश पर्वत परम पवित्र है। लेखक की राय में वर्तमान में प्रचलित शिव लिंग की पूजा कैलाश क्षेत्र की पूजा की ही एक प्रागैतिहासिक परम्परा है। सम्पादक

तीर्थ शब्द क्षेत्र या क्षेत्रमंगल के अर्थ में बहु प्रचलित एवं रूढ़ है। तीर्थक्षेत्र न कहकर के केवल तीर्थ शब्द कहा जाये तो उससे तीर्थक्षेत्र या तीर्थ - स्थान का आशय होता है। जैनों में चैत्य - वृक्षों की पूजा के साथ - साथ क्षेत्र मंगलरूप पूजा भी प्राचीन काल से प्रचलित है।[1] दिगम्बर जैन समाज में तीन प्रकार के तीर्थक्षेत्र प्रचलित हैं - सिद्धक्षेत्र (निर्वाणक्षेत्र), कल्याणक क्षेत्र और अतिशय क्षेत्र।

निर्वाण क्षेत्र – जहाँ तीर्थंकरों या किन्हीं तपस्वी मुनिराज का निर्वाण हुआ हो। संसार में शास्त्रों का उपदेश, व्रत - चारित्र, तप आदि सभी कुछ निर्वाण प्राप्ति के लिये है। यही चरम और परम पुरुषार्थ है। अतः जिस स्थान पर निर्वाण होता है, उस स्थान पर इन्द्र और देव पूजा को आते हैं। निर्वाण क्षेत्रों का महत्व अधिक होता है। तीर्थंकरों के निर्वाणक्षेत्र कुल पाँच हैं - कैलाश, चम्पा, पावा, उर्जयन्त और सम्मेदशिखर। इन निर्वाण क्षेत्रों के अतिरिक्त अन्य मुनियों की निर्वाण भूमियाँ हैं। इन्हें सिद्धक्षेत्र भी कहते हैं।

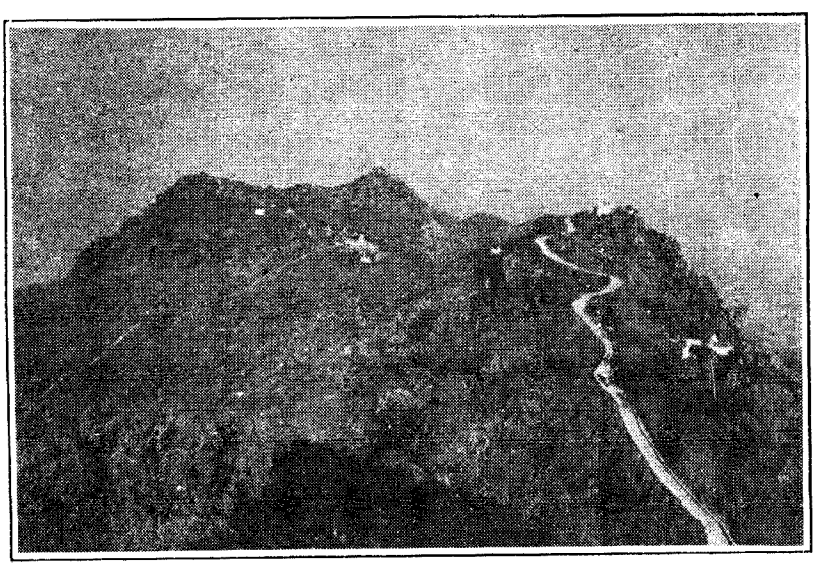

सम्मेदशिखर का एक विहंगम दृश्य

* एडवोकेट, टकसाल गली, दानाओली, ग्वालियर - 1

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

कल्याणक क्षेत्र – जहाँ किसी तीर्थंकर का गर्भ, जन्म, दीक्षा और केवलज्ञान कल्याणक हुआ है जैसे अयोध्या, मिथिलापुरी, हस्तिनापुर, भद्रिकापुरी आदि।

अतिशय क्षेत्र – जहाँ किसी मन्दिर में या मूर्ति में कोई चमत्कार दिखाई दे तो वह अतिशय क्षेत्र कहलाता है जैसा श्रीमहावीरजी, श्री पद्मपुराजी, श्री तिजाराजी आदि।

प्राचीनता

क्षेत्र पूजा का प्रारम्भ आदि निर्वाण भूमि कैलाश पर्वत की पूजा से हुआ। भगवान ऋषभदेव का इतिहास में भारत का प्रथम राजा, प्रथम मुनि, प्रथम केवली, प्रथम तीर्थंकर और प्रथम धर्म चक्रवर्ती के रूप में स्थान है।[2] वे वर्तमान अवसर्पिणी काल के सुषमा-दुषमा काल के दुषमा भाग में हुए जो 42 हजार वर्ष पूर्व रहा। इतिहास इस उन्नत अतीत की धूल भी नहीं छू सकता।[3] तीर्थंकर ऋषभदेव ने लोक मंगल के साथ ही साधना के पथ पर स्वयं अग्रसर होते हुए केवलज्ञान प्राप्त कर कैलाश पर्वत से मुक्तधाम को प्राप्त किया, तब वह पूज्य हो गया। कैलाश पर्वत सिद्धक्षेत्र है। यहाँ से अनेक मुनियों ने निर्वाण पद प्राप्त किया है। भगवान ऋषभदेव के अतिरिक्त भरत आदि भाइयों ने, भगवान अजितनाथ के पितामह त्रिदशंजय, व्याल, महाव्याल, अच्छेद्य, अभेद्य, नागकुमार, हरिवाहन, भगीरथ आदि असंख्य मुनियों ने कैलाश पर्वत पर आकर तपस्या की और कर्मों को नष्ट करके यहीं से मुक्त हुए।[4]

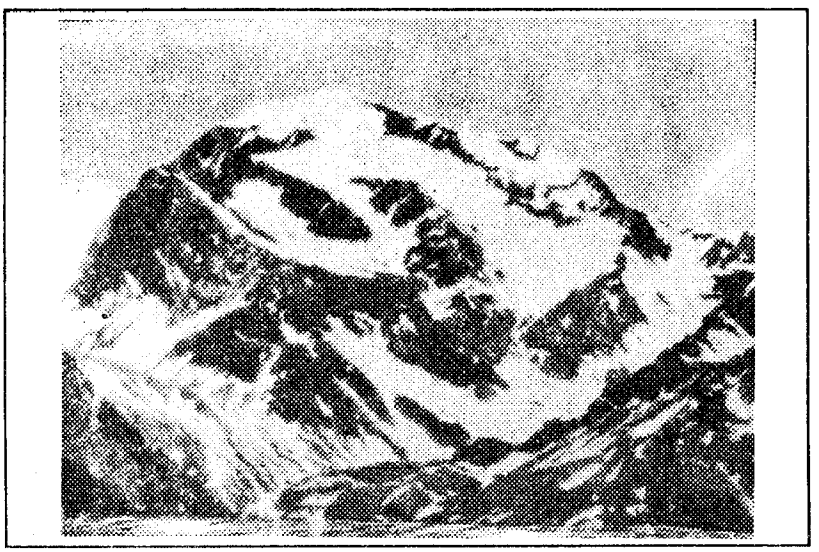

कैलाश पर्वत का एक दृश्य

भरत ने भगवान ऋषभ की वन्दना से लौटने पर ही कैलाश के आकार के घंटे बनवाये और उन पर ऋषभ भगवान की आकृतियाँ बनवाई।[5] कैलाश की आकृति ऐसे लिंगाकार की है जो षोडश दल कमल के मध्य खड़ा हो। इन सोलह दल वाले शिखरों में सामने के दो शिखर झुककर लम्बे हो गये हैं।[6] घंटे बनाकर नगर के चौराहों और राजमहल के द्वारों पर लटकाकर अपनी विनय प्रकट की थी। यही नहीं, उन्होंने अपने राजमुकुट में भी घंटा कृति को स्थान दिया जिस पर ऋषभ का आकार बना हुआ था।[7] आश्चर्य है कि प्राचीन काल में मिस्र (Egypt) के दक्षिण प्रदेश के शासक भी ऐसा ही घंटा या लिङ्ग

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

की आकृति के मुकुट पहनते थे।[8] भरत क्षेत्र जम्बूद्वीप का दक्षिण भाग ही है और भरत उसके पहले चक्रवर्ती राजा थे। विद्वानों का अनुमान है कि प्राचीन समय में कतिपय भारतीय मिस्र गये थे।[9] अत: संभव है कि वे भरत की राजमुकुट आकृति को वहाँ ले गये हों। जो हो, मुकुट की यह आकृति प्राचीन है और इसका उद्गम कैलाश पर्वत की लिंङ्गाकार आकृति से हुआ है। यह भगवान ऋषभदेव के कारण पूज्य क्षेत्र बना और क्षेत्र पूजा का आदि प्रतीक हुआ। स्व. श्री कामताप्रसादजी का मत है कि यही क्षेत्र पूजा कालान्तर में वैदिक आर्यों द्वारा लिंङ्ग पूजा में परिवर्तित की गई प्रतीत होती है।[10]

तिब्बत की ओर से कैलाश पर्वत ढलान वाला है। उधर तिब्बतियों के बहुत मन्दिर बने हैं। तिब्बत के लोगों में कैलाश के प्रति बड़ी श्रद्धा है। अनेक तिब्बती तो इसकी बत्तीस मील की परिक्रमा दण्डवत प्रतिपात द्वारा लगाते हैं। लिंग - पूजा इस शब्द का प्रचलन तिब्बत से प्रारम्भ हुआ। तिब्बती भाषा में लिंग का अर्थ क्षेत्र या तीर्थ है। अत: लिंग पूजा का अर्थ तिब्बती भाषा में तीर्थ पूजा है।[11] अत: यह सर्वमान्य है कि लिङ्गपूजा एक प्राङ्ऐतिहासिक कालीन धार्मिक प्रथा है।[12] यह कैलाश क्षेत्र की पूजा थी। उधर शिवलोक या क्षेत्र कैलाश माना ही जाता है।[13] ऋषभ का अलंकृत रूप 'शिव', 'रूद्र' अथवा 'पशुपति' है।[14] अन्य विद्वान भी ऐसा ही मानते हैं।[15] अतएव शिवलिंङ्ग की पूजा कैलाश की क्षेत्रपूजा है जो भगवान ऋषभ के कारण पवित्र हुआ और जिसका लिंङ्गरूप था। ऋषभ दिगम्बर साधु थे। उनकी नग्नता को लक्षाकर उपरान्त 'लिंङ्ग' शब्द 'क्षेत्र' अर्थ का सूचक न रहकर पुरुषेन्द्रिय का द्योतक मात्र रह गया।

सन्दर्भ

1. **'तत्र क्षेत्र मङ्गलं गुर – परिणतासनन – परिनिष्क्रमण – केवलज्ञानोत्पत्ति: परिनिर्वाणक्षेत्रादि:। तस्योदाहरणम्, उर्ज्जन्त – चम्पा – पावानगरादि:।'**
   - षट्खंडागम - धवला टीका, पु. 1, पृ. 28 - 29
2. जम्बूद्वीप प्रज्ञप्ति एव कल्पसूत्र, ऋषभ सौरभ, 1998, ऋषभदेव प्रतिष्ठान, पृ. 1.
3. जैन दर्शन : मनन और मीमांसा, मुनि नथमल, पृ. 16
4. जैन धर्म का प्राचीन इतिहास, प्रथम भाग, बलभद्र जैन, मेसर्स केशरीचन्द श्रीचन्द चांवल वाले, दिल्ली, पृ. 69.
5. महापुराण, पर्व 41, श्लोक 87 - 88, पृ. 323 - 324.
6. सन्दर्भ क्रमांक 4.
7. महापुराण, पर्व 41, श्लोक 89 - 92, पृ. 324.
8. S.K. Roy, Pre-historic and Ancient Egypt, New Delhi, pp. 18-19.
9. Ibid, pp. 34-40.
   इतिहास के वेत्ताओं का मत है कि भारत से जाकर कुछ यादव एबिसिनिया और इथ्यूपिया में आकर बसे थे और वहाँ से मिस्र तक फैल गये। (एशियाटिक रिसर्चेज, भाग - 3, पृ. 87). अबिसिनिया और इथ्यूपिया में प्राचीन काल में 'जिनोसूफिरट' थे। (एशियाटिक रिसर्चेज, पृ. 6) अर्थात् दिगम्बर जैन मुनिगण वहाँ विचरते थे क्योंकि 'जिनोसूफिरट' का अर्थ नग्न जैन मुनि माना गया है। एन्साइक्लोपिडिया ब्रिटेनिका, भाग - 35.
10. अहिंसावाणी, वर्ष - 7, अंक - 1 - 2, अप्रैल - मई.
11. It may be mentioned here that the 'Linga' is a Tibetan word for land. The northern most district of Bengal is called Dorje - Ling (Darjeeling is an English corruption)

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

which means Thunder's land. - S.K. Roy, Pre-historic India and Ancient Egypt, p. 38.

12. In fact Shiva and the worship of Linga and other features of popular Hinduism, were well established in India long before the Aryans came. - K.M. Pannikar, A survey of Indian History, p. 4.

13. संस्कृत शब्दार्थ - कौस्तुभ, पृ. 844 - 'शिवलोक' - शिवजी का लोक या कैलाश.

14. अनेकान्त, वर्ष - 12, किरण - 6, पृ. 185 - 187.

15. Hence it is most probable that Lord Risabha was the original Shiva and early Saivism and Jainism were one and the same. - Dr. A. Chintamani Religious Digest, No. 8, Jan.-Feb. 1957, pp. 11-14.

प्राप्त - 29.01.01

कुन्दकुन्द ज्ञानपीठ पुरस्कार

श्री दिगम्बर जैन उदासीन आश्रम ट्रस्ट, इन्दौर द्वारा जैन साहित्य के सृजन, अध्ययन, अनुसंधान को प्रोत्साहित करने के उद्देश्य से कुन्दकुन्द ज्ञानपीठ, इन्दौर के अन्तर्गत रुपये 25,000=00 का कुन्दकुन्द ज्ञानपीठ पुरस्कार प्रतिवर्ष देने का निर्णय 1992 में लिया गया था। इसके अन्तर्गत नगद राशि के अतिरिक्त लेखक को प्रशस्ति पत्र, स्मृति चिह्न, शाल, श्रीफल भेंट कर सम्मानित किया जाता है।

1993 से 1999 के मध्य संहितासूरि पं. नाथूलाल जैन शास्त्री (इन्दौर), प्रो. लक्ष्मीचन्द्र जैन (जबलपुर), प्रो. भागचन्द्र 'भास्कर' (नागपुर), डॉ. उदयचन्द्र जैन (उदयपुर), आचार्य गोपीलाल 'अमर' (नई दिल्ली), प्रो. राधाचरण गुप्त (झांसी) एवं डॉ. प्रकाशचन्द्र जैन (इन्दौर) को कुन्दकुन्द ज्ञानपीठ पुरस्कार से सम्मानित किया जा चुका है।

वर्ष 2000, 2001 एवं 2002 हेतु प्राप्त प्रविष्टियों का मूल्यांकन कार्य प्रगति पर है। वर्ष 2003 हेतु जैन विद्याओं के अध्ययन से सम्बद्ध किसी भी विधा पर लिखी हिन्दी/अंग्रेजी, मौलिक, प्रकाशित/अप्रकाशित कृति पर प्रस्ताव 31 दिसम्बर 03 तक सादर आमंत्रित हैं। निर्धारित प्रस्ताव पत्र एवं नियमावली कुन्दकुन्द ज्ञानपीठ कार्यालय में उपलब्ध है।

देवकुमारसिंह कासलीवाल
अध्यक्ष

डॉ. अनुपम जैन
मानद सचिव

01.07.2003

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

वर्ष - 15, अंक - 4, 2003, 21 - 27

अर्हत् वचन
कुन्दकुन्द ज्ञानपीठ, इन्दौर

जैन धर्म का सनातनत्व एवं महत्व *

■ शांतिराज शास्त्री ** एवं पद्मावतम्मा ***

सारांश

प्रस्तुत आलेख में प्रमुख चिन्तकों के कथनों, जैनेतर धर्मग्रन्थों एवं अन्य प्राचीन साहित्य में उपलब्ध सन्दर्भों के आधार पर सप्रमाण यह सिद्ध किया गया है कि जैनधर्म अत्यन्त प्राचीन, आस्तिक एवं प्राकृतिक धर्म है। स्व. शांतिराज शास्त्रीजी का मूलतः कन्नड़ भाषा में लिखा यह लेख उनकी पौत्री प्रो. पद्मावतम्मा ने अनुवादित किया है, हमने मूल की रक्षा करते हुए भाषा में परिष्कार का प्रयास किया है। **सम्पादक**

"**विषम भवगहन प्रापणप्रवण दुर्जय कर्मट कर्मारातीन जयतीति जिनः**" : - विषम संसारारण्य को पल्लवित करने के लिए जो समर्थ है, जिन्होंने कठिन एवं कार्यशील कर्मशत्रुओं को जीता है, वे जिन हैं, और उनके द्वारा कहा गया तथा "**उत्तमे सुखे धरनीति धर्मः**" ऐसी व्युत्पत्तियुक्त धर्म का नाम "**जिन धर्म**" है। इस धर्म की सनातनता एवं प्राशस्त्य के ऊपर प्रकाश डालने वाला यह एक छोटा सा लेख है।

सनातनत्व का अर्थ है चिरकाल तक रहना। महत्व का अर्थ है बड़प्पन, किन्तु सनातन जो भी है वह सभी महत्व वाला नहीं होता। यदि ऐसा होता तो सनातन द्यूत, चौर्य, व्यभिचार, वेश्यागमन आदि भी महत्व वाले होंगे। इसलिए प्राशस्त्य सहित जो सनातन है वह महत्व का है ऐसा जानना चाहिए।

जिन में दो भेद हैं - एकदेश जिन और सर्वदेश जिन। यहाँ सर्वदेश जिन का ही अभिप्राय ग्रहण करना चाहिए। उनको जिनेश्वर कहा जाता है। तीर्थकरों को भी "**जिनेश्वर**" ऐसा नाम है। मगर जिनेश्वर सभी तीर्थकर नहीं होते। काल के दो भेद हैं - उत्सर्पण और अवसर्पण। इनमें प्रत्येक का प्रमाण एक को दस कोड़ाकोड़ी सागरोपम कहा गया है। उत्सर्पण में आयुष्य - देहपरिमाण, आहार आदि बढ़ते जाते हैं और अवसर्पण में घटते जाते हैं। काल भेदों में प्रत्येक में 24 तीर्थकर यथाक्रम जन्म लेकर धर्मप्रचार करके मुक्त हो जाते हैं। वर्तमान में अवसर्पण काल चल रहा है। इस काल में भी यथाक्रम 1. ऋषभ, 2. अजित, 3. सम्भव, 4. अभिनन्दन, 5. सुमति, 6. पद्मप्रभ, 7. सुपार्श्व, 8. चन्द्रप्रभ, 9. पुष्पदन्त, 10. शीतल, 11. श्रेयांस, 12. वासुपूज्य, 13. विमल, 14. अनंत, 15. धर्म, 16. शांति, 17. कुन्थु, 18. अर, 19. मल्लि, 20. मुनिसुव्रत, 21. नमि, 22. नेमि, 23. पार्श्व, 24. वर्धमान - महावीर हुये थे। ये सब क्रम से गर्भावतार, जन्माभिषेक, परिष्क्रमण (दीक्षा), केवलज्ञान (सर्वज्ञत्व), निर्वाण (मोक्ष) इन पाँच कल्याणकों के बाद मुक्त हुये थे। कल्याणक का अर्थ है महामंगलोत्सव।

विश्वकोश में **धर्मः पुण्ये यमें न्याये स्वभावाचारयोः क्रतौ** कहा है। इसका तात्पर्य यह है कि स्वभाव का एक और अर्थ है धर्म। स्वभाव का मतलब है मत, जैन मत की "**सनातनता एवं महत्व**" के बारे में जैन धर्मग्रंथों के बजाय जैनेतर ग्रन्थों में सुस्पष्ट जानकारी मिलती है। इसी तरह के कुछ अभिप्रायों को यहाँ संग्रह किया गया है।

---

* मूल कन्नड रचना का हिन्दी अनुवाद

** मूल कन्नड रचनाकार, पण्डितरत्न (स्वर्गीय)

**० अनुवादिका, प्राध्यापिका - गणितशास्त्र, मैसूर विश्वविद्यालय, मानसगंगोत्री, मैसूर - 570 006 (कर्नाटक)

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

हिन्दू धर्म – ग्रन्थों में भगवान ऋषभदेव –

1. सृष्टि के आदि में जब ब्रह्मा ने स्वयम्भू मनु एवं सत्यरूपा को अवतरित किया तब ही पाँचवे क्रम पर थे ऋषभदेव। प्रथम सतयुग के अन्त में उनका उद्भव हुआ था। कहा जाता है अब तक 28 सतयुग बीते हैं।

जोधपुर के कन्नूलाल एम.ए., दिसम्बर 1904 एवं जनवरी 1905 के ''थियासूफिस्ट'' समाचार पत्र में लिखते हैं कि –

2. जैन धर्म व्युत्पत्ति एवं इतिहास संशोधन के लिए अत्यंत दुर्लभ एवं प्राचीन मत है।[1]

3. जैन धर्म अत्यंत प्राचीन है, जैन साहित्य के चार भेद हैं – प्रथमानुयोग, करणानुयोग, चरणानुयोग, द्रव्यानुयोग – जिनमें भगवान आदिनाथ की वाणी संग्रहीत है।वे बहुत प्राचीन, प्रसिद्ध एवं 24 तीर्थंकरों में प्रथम थे। इस प्रकार के अभिप्राय को मि. आबे जे. ए. डुबाइत् ने लिखा है।[2]

प्यारिस के डॉ. ए.. गिर्नटजी लिखते हैं कि –

4. जैन धर्म में मानव की उन्नति के लिए अत्युपयुक्त विषय हैं, यह धर्म स्वाभाविक, स्वतंत्र एवं पूर्वापर विरोधरहित है। ब्राह्मण मतों से श्रेष्ठ, सरल एवं विषयगर्भित है। यह मत बौद्धमत जैसा नास्तिक भी नहीं है।[3]

जर्मनी के डॉ. जोहानिस् हर्दल एम.ए., पी.एच.डी. लिखते हैं कि –

5. मैं जैन धर्म एवं जैनाचार्यों में निहित उत्तम नियम, आचार – विचारों को अपने देशवासियों को सुनाऊँगा। जैनधर्म के ग्रन्थ बौद्धधर्म ग्रन्थों से भी श्रेष्ठ हैं। मैं जैन धर्म के ग्रन्थों को पढते – पढते उनको चाहने लगा हूँ।[4]

रैस डेविड्स एव आर. बर्न अपने युक्तप्रान्त्य के रिपोर्ट में कहते हैं कि –

6. अब इस विषय में ज्यादा न कहते हुए यह सिद्ध करते हैं कि – इस कल्पकाल में जैन मत का प्रथम प्रचारक श्री ऋषभस्वामी था, उनको जैन समुदाय 24 तीर्थंकरों में प्रथम मानते हैं, डॉ. जैकोबी के मतानुसार, बौद्ध धर्म ग्रन्थों में महावीर स्वामी को निर्ग्रन्थों के अधिपति मानते हैं, वह जैन धर्म के संस्थापक नहीं है। जब क्षत्रिय ऋषभस्वामी संसार से विरक्त हुए तब उनके साथ चार हजार राजा – महाराज दिगम्बर मुनि बने। परन्तु मात्र ऋषभस्वामी चारित्रपालन में समर्थ हुए। शेष सब चारित्रपालन में असमर्थ होकर, भ्रष्ट होकर 363 पाखंडी मतों का प्रचार करने लगे। (इनमें शुक्र भी एक है) कहने का तात्पर्य यह है कि जैन मत बहुत प्राचीन है।[5]

स्वामी राममिश्र शास्त्रीजी ने काशी में अपने एक भाषण में कहा था कि –

7. वैदिक एवं जैन मत सृष्टि के आदि से हैं। महान् – महान् आचार्यों द्वारा जैन मत का खण्डन देखकर हँसी आती है, जैनाचार्यों के हुँकार से दसो दिशाओं में शब्द घुमडने लगते हैं। जैनियों का ग्रन्थ भंडार अगाध है। वेदव्यास ने जब ब्रह्मसूत्र को रचा था तब जैन मत विद्यमान था। वेदों में विष्णुपुराणादि में भी अनेकान्त (स्याद्वाद) मिलता है।

लोकमान्य बालगंगाधर तिलक अपने मराठी 'केसरी' में लिखते हैं कि –

8. जैन धर्म की प्राचीनता को ग्रन्थों से एवं सामाजिक व्याख्यानों से जाना जा सकता है। यह विषय निर्विवाद एवं मतभेद रहित है। इस विषय में इतिहास का सुदृढ़

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

आधार है। अ. 526 ई. पूर्व भी जैन मत था यह सिद्ध ही है। भगवान महावीर स्वामी द्वारा जैन धर्म को पुन: प्रकाश में लाने को 2400 वर्ष बीते हैं। बौद्ध धर्म की स्थापना से पहले ही जैन धर्म प्रकट हुआ था यह निश्चित है। चौबीस तीर्थंकरों में भगवान महावीर स्वामी अंतिम थे। इससे भी जैन धर्म की प्राचीनता जानी जा सकती है। उसके बाद ही बौद्ध धर्म प्रचलित हुआ यह बात भी निश्चित है।[6]

इन्दौर के वासुदेव गोविन्दजी आप्टे का भाषण ''विविध ज्ञान विस्तार'' पत्रिका में प्रकाशित हुआ था। वह इस प्रकार है - 'जैन नास्तिक हैं या आस्तिक? आत्मा, कर्म एवं सृष्टि नित्य हैं। उनकी रचना या नाश का कर्ता कोई नहीं है। जैनियों का यह अभिप्राय है कि हम जो कर्म करते हैं तदनुसार फल प्राप्त होता है। व्यक्ति के कार्य से ईश्वर का कोई सम्बन्ध नहीं है। व्यक्ति को अपने कर्मानुसार अच्छे, बुरे फल मिलते हैं।ईश्वर पूजा, सेवा स्तुतियों से प्रसन्न होकर हमारे ऊपर विशेष कृपा रखता है या न्याय नामक दुखकारी कांटे को बढ़ाता है या घटाता है। इस तरह की कोई भी मान्यता जैन धर्म में नहीं मिलती। संसार के झंझट में परमेश्वर नहीं पड़ता। यही जैन धर्मावलम्बियों का अभिप्राय है। मनुष्य - आत्मा रत्नत्रय साधना द्वारा उन्नति प्राप्त करते - करते निर्वाण की ओर जाती है। अर्थात् ईश्वर रूप होती है। वैसे ईश्वर सृष्टि का कर्ता, शासक या संहारकर्ता नहीं होता। जैन धर्मावलम्बियों का मत यह है कि - पूर्णावस्था को प्राप्त हुई आत्मा ही ईश्वर है। ईश्वर के कार्य के सम्बन्ध में हिन्दू और जैन अभिप्राय में भेद है। **''जैन नास्तिक हैं'' ऐसा निर्बल और व्यर्थ अपवाद को जैनियों पर चढ़ाया गया है।**

कर्म के अनुसार फल प्राप्ति - इस नियमानुसार यह दुनिया चल रही है, जैन मानते हैं कि ईश्वर की ओर से यह कार्य कहीं से भी नहीं होता। भगवान श्रीकृष्ण ने भगवद्गीता के पाँचवे अध्याय में कहा है -

न कर्तृत्वं न कर्माणि लोकस्य सृजति प्रभु:।
न कर्मफलसंयोगं स्वभावस्तु प्रवर्तते॥
नादस्ते कस्यचित्पापं न कस्य सुकृतं विभु:।
अज्ञानेनावृतं ज्ञानं तेन मुह्यंति जंतव:॥[8]

''प्रभु परमेश्वर जीवों की सृष्टि, कर्मों का कर्ता, कर्मफलों का संयोजक (भोक्ता) भी नहीं है। वे तो स्वभाव से चलते हैं। किसी के भी पाप या पुण्य को परमेश्वर नहीं लेता। ज्ञान के ऊपर अज्ञान परदा (आवरण) आने पर अज्ञानी जीव मोह में व्यस्त रहते हैं।''

यह नहीं सूझता कि ''इस जगत् की रचना या सृष्टि परमेश्वर से नहीं हुई है'' प्रामुख्यता देने की बात यह है कि आस्तिक और नास्तिक शब्दों के विचार करते समय ईश्वरास्तित्व और कृतित्व के सम्बन्ध में संयोजन न करके व्याकरणानुसार पाणिनि जैनों के ऊपर नास्तिकता को नहीं चढाया जा सकता।

पाणिनि ने ऐसे कहा है -

परलोकोऽस्तीति मतिर्यस्यास्तीति आस्तिक:।
तथा परलोको नास्तीति मतिर्यस्यास्तीति नास्तिक:॥[9]

अर्थात् 'परलोक है' ऐसा जो मानता है वह आस्तिक है और 'परलोक नहीं है' ऐसा जो मानता वह नास्तिक है।

उनके वचनानुसार जगत् का वर्णन एवं अस्तित्व स्वर्ग नरक एवं मर्त्य है। दिगम्बर

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

जैन स्वर्ग को 16, तथा श्वेताम्बर 12 कहते हैं, तो भी परलोक के विषय में उनमें मतभेद नहीं हैं। कर्मों का नाश होने पर मोक्ष की प्राप्ति होती है। यह जैनों का दृढ़ विश्वास है।

और भी अनेक वेदादि ग्रन्थों को मनन करने पर जैन धर्म की सनातनता एवं महत्व को जान सकते हैं। वशिष्टर्षि प्रणीत छत्तीस सहस्र श्लोक परिमित योगवाशिष्ट में अहंकार निषेध नाम के प्रथमाध्याय में वशिष्ट और श्रीरामचन्द्र के बीच हुए संवाद में रामचन्द्र का कहना है कि -

नाहं रामो न न मे वांछा भावेषु न च मे मन:।
शांतिमास्तातु मिच्छामि स्वात्मन्येव जिनो यथा॥[10]

तात्पर्य : - ''मैं राम नहीं। मुझे इच्छा नहीं। पदार्थों में मेरा मन नहीं। जिनेश्वर की तरह आत्मा में शांति स्थापना करने का इच्छुक हूँ।'' इस पद्य से यह जाना जाता है कि - राम से जिनेश्वर श्रेष्ठ है।''

दक्षिणामूर्तिसहस्रनाम में लिखा है -

जैनमार्गरतो जैनो जितक्रोधो जितामय:।[11]

अर्थात् क्रोध और राग को जीतनेवाले जिनेश्वर है, जिनेश्वर से उपदिष्टित मार्ग में जो आसक्त हुआ है वह जैन है।

वाहिम्न स्तोत्र में कहा गया है -

तत्वद्दर्शनमुख्यशक्तिचरिति च त्वं ब्रह्म कर्मेश्वरी।
कर्ताहिन् पुरूषो हरिश्च सविता बुद्ध: शिवस्त्वं गुरू:॥[12]

अर्थात् 'आर्हतमत' यह जैन मत का दूसरा नाम है। इसलिए अर्हन् का अर्थ अर्हत् परमेश्वर है। ऐसे अर्हत् परमेश्वर की स्तुति एवं उसकी श्रेष्ठता इस श्लोक में प्रकट होती है।

हनुमन्नाटक में लिखा है -

यं शैवा समुपासते शिव इति ब्रह्मेति वेदांतिनो।
बौद्धा बुद्ध इति प्रमाणपटव: कर्तेति नैयायिका:॥
अर्हन्नित्यथ जैनशासनरता: कर्मेति मीमांसका:।
सोऽयं वो विदधातु वांछितफलं त्रैलोक्यनाथ: प्रभु:॥[13]

वैष्णव मत प्रतिपादक इस श्लोक में त्रैलोकयाधिपति प्रभु अर्हन् ऐसे कहने से उसकी श्रेष्ठता प्रकट होती है।

रूद्रयामलकतंत्र में :-

कुंडासना जगद्धात्री बुद्धमाता जिनेश्वरी।
जिनमाता जिनेन्द्रा च शारदा हंसवाहिनी॥[14]

इस प्रकार सरस्वती माता की स्तुति की गई है। जगद्धात्रि, जिनमाता, भवानी ये पर्यायवाची नाम हैं। ये सब श्रेष्ठता के सूचक हैं।

गणेशपुराण में -

जैन पाशुपतं सांख्य[15] ऐसा कहा हुआ है। यहाँ पाशुपत सांख्यमतों से पहले जैन मत का उल्लेख करने से इसकी श्रेष्ठता प्रकट होती है।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

प्रभास पुराण में -

भवस्य पश्चिमें भागे वामनेन तप:कृतम्॥
तेनैव तपसाकृष्ट: शिव: प्रत्यक्षतां गत:॥ 1॥
पद्मासनसमासीन: श्याममूर्तिर्दिम्बर:॥
नेमिनाथ: शिवोऽथैवं नाम चक्रेऽस्य वामन:॥ 2॥
कलिकाले माहाघोरे सर्वपाप प्रणाशक:॥
दर्शनात्पर्शनादेव कोटियज्ञफलप्रभद:॥ 3॥ [16]

पद्मासन में बैठे हुए, श्याम वर्ण वाले नग्न नेमिनाथ का दर्शन वामन को हुआ। नेमिनाथ का नाम शिव है। महाघोर कलिकाल में सर्वपाप प्रणाशक नेमिनाथ के दर्शन से, स्पर्श से, कोटियज्ञ का फल प्राप्त होता है। ऐसा वामन ने कहा है।

नगरपुराण एवं भावावतार रहस्य में :-

अकारादिहकारांतं मूर्धाधो रेफसंयुतं।
नादबिन्दु कलाक्रान्तं चन्द्रमंडलसन्निभम्॥ 1॥
एतद्देवि! परं तत्त्वं यो विजानाति तत्त्वत:।
संसारबन्धनं छित्वा स गच्छेत्परमां गतिम्॥ 2॥ [17]

यहाँ ''अर्ह'' का अर्थ है परमतत्व, नादबिन्दु कलाक्रान्त चन्द्रमंडल के समान इस तत्वरहस्य को जाननेवाला संसार बन्धन से विमुक्त होकर मुक्ति की ओर अग्रसर होता है। यह ''अर्ह'' जैन धर्मावलम्बियों का पवित्र बीजमंत्र है।

मनुस्मृति में :-

कुलादिबीजं सर्वेषामाद्योविमलवाहन:।
चक्षुष्मान् यशस्वी वाभिचन्दोऽथ प्रसेनजित्॥ 1॥
मरुदेवी व नाभिश्च भरते कुलसत्तमा:॥
अष्टमो मरुदेव्यां तु नाभेर्जात उरूक्रम:॥ 2॥
दर्शयन् वर्त्म वीराणां सुरासुर नमस्कृत:।
नीतित्रितयकर्त्ता यो युगादौ प्रथमो जिन:॥ 3॥ [18]

इन पद्यों में विमलवाहन आदि मनुओं को, सुरासुरवंदित युग का आदिपुरुष आदि जिन का उल्लेख है। विमलवाहनादि मनु, जिन जैनियों को पूज्यनीय है। सो 'जिन' का वर्णन जैन धर्मग्रन्थों में आता है। इससे जैन मत की पुरातनता को जाना जा सकता है।

पंचमवेद नाम से प्रसिद्धि प्राप्त महाभारत में :-

मध्यमांसाशनं रात्रौ भोजनं कन्दभक्षणं।
ये कुर्वति वृथा तेषां तीर्थयात्रा जपस्तप:॥ 1॥
वृथा एकादशी प्रोक्ता वृथा जागरणं हरे:।
वृथा च पौष्करी यात्रा कृत्स्नं चांद्रायणं वृथा॥ 2॥
चातुर्मास्ये तु संप्राप्ते रात्रिभोज्यं करोति य:।
तस्य शुद्धिर्न विद्येत चांद्रायणशतैरपि॥ 3॥ [19]

मद्यपान, मांसभक्षण, रात्रिभोजन, कन्दभक्षण आदि अहिंसा प्रधान जैन धर्म में निषिद्ध हैं। ऊपरी विषयों में इन्हीं विषयों का प्रतिपादन करके, इनका सेवन जो करते हैं उनकी तीर्थयात्रा, जप - तप, एकादशीव्रत, हरिजागरण, पौष्कर यात्रा, कृत्स्न चांद्रायणव्रत आदि व्यर्थ हो जायेंगे। चातुर्मास रात्रिभोजन करने वालों को चांद्रायणव्रतों से भी शुद्धि नहीं होती। इस

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

प्रकार इन श्लोकों में जैन श्रावकाचारों का वर्णन है।

भागवत में कहा है -

मद्यमांसमधुत्यागी त्यक्तोदुबंरपंचक:।
निराहारपरित्यक्त एतद्ब्राह्मणलक्षणम्॥[20]

मद्य, मांस एवं मधुत्याग के साथ उदुम्बरपंचक त्याग, रात्रिभोजन त्याग ब्राह्मण का लक्षण है।

भर्तृहरि के श्रृंगार शतक में कहा गया है -

एको रागीषु राजते प्रियतमादेहार्धधारी हरो
निरागेषु जिनो विमुक्तललवासंगो न यस्मात्पर:
दुर्वाररस्मरबाणचन्नगविषव्यासक्तमुग्दो जन:
शेष: कामविडंबितो हि विषयान् भाक्तुं न मोक्तुं
क्षम: ॥ 97 ॥[21]

इस श्लोक का तात्पर्य यह है कि अनुरागवालों में हर देहार्थ में प्रियतमा पार्वती को धारणकर शोभायमान है। स्त्रीसंग त्यागि 'जिन' अनुरागरहितों में सर्वश्रेष्ठ होकर शोभायमान हैं। शेष सब जन दुर्निवार कामबाण नामक सर्प - विष से मूर्छित रहकर काम - वासनाओं के भोक्ता बनकर जीवनमुक्ति पाने में असमर्थ रहे हैं।

वैराग्यशक में कहा गया है -

एकाकी निस्पृह: शांत: पाणिपात्रो दिगम्बर:
कदा शंभो भविष्यामि कर्मनिर्मूलने क्षम: ॥[22]

ऐसा कहा हुआ है। इसका अभिप्राय यह है कि - हे शम्भु! तुम अकेले, निस्पृह, शांत, हस्तपात्र, नग्न हुये हो, मैं अपने कर्मों का नाश करके कब तुम्हारे जैसा बनूँगा? जिन दिगम्बर होता है। उस अवस्था की प्राप्ति मुझे कब होगी? इस प्रकार शम्भु से प्रार्थना करने से जैन धर्म की उत्कृष्टता विदित होती है।

ऋग्वेद में आया है -

ओं त्रैलोक्यप्रतिष्ठितान् चतुर्विंशतितीर्थकरान् ऋषभाद्यावर्धमानांतान् सिद्धान् शरणं प्रपद्यो ओं पवित्रं नग्नमुपाविविप्रसामहे एषां नग्ना (नग्नये) जातिर्येषां वीरा।[23]

तीनों लोकों में प्रतिष्ठित, सिद्ध ऋषभादि वर्धमानांत चतुर्विंशतितीर्थकरों के शरण में जाता हूँ। जिनेश्वर की नग्नता पवित्र है। वह वीर क्षत्रियों का लक्षण है। ऐसे ऋग्वेद में निहित उल्लेख को मोक्षमार्ग प्रकाशक ग्रन्थ से जान सकते हैं।

यजुर्वेद में कहा गया है -

ओं नमो अर्हतो ऋषभो ओं ऋषभ पवित्र पुरहूतमध्वरं यज्ञेषु नग्नं परमं माहसंस्तुतं वरं शत्रुं जयंतं पशुरिंद्रमाहुरिति स्वाहा। ओं त्रातारमिंद्रं ऋषभं वदंति अमृतारमिंद्रं हवे सुगतं सुपार्श्वमिंद्रं हवे शक्रमजितं तत्वर्धमानपुरूहूत मिंद्रमाहुरिति स्वाहा। ओं नग्न सुधीरं दिग्वाससं ब्रह्मगर्भं सनातनं उपैमि वीरं पुरूषमर्हतमादित्यवर्ण तमस: परस्तात् स्वाहा।[24]

ऋग्वेद में पुन: कहा गया है -

ओं स्वस्तिन इंद्रो वृद्धश्रवा: स्वस्तिन: पूषा विश्व वेदा: स्वस्तिन स्ताक्ष्यो अरिष्टनेमि: स्वस्तिनो बृहस्पतिर्दधातु। दीर्घायुस्त्वायुर्बलायुर्वा शुभजातायु ओं रक्ष रक्ष अरिष्टनेमि: स्वाहा वामदेव शांत्यर्थमनुविधीयते सोऽरमाकं अरिष्टनेमि: स्वाहा।[25]

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

ऐसा कहकर यहाँ 22 वें अरिष्टनेमि तीर्थकर एवं तीर्थकरों की पवित्रता को दर्शाया गया है।

उपसंहार :-

''ऋग्यजुस्सामाथवर्ण नामक चार वेद, अनादि निधन हैं, अपौरूषेय हैं, जब वे कालाविशेष में लुप्त होते हैं तो परमेश्वर अपने मुखकमल से पुनः प्रकाशित करता है'' इस प्रकार द्वैताद्वैतादि मतानुयायी जन समुदाय कहते हैं और उसको मानते भी हैं। इस प्रकार जब वेद अनादिनिधन अपौरूषेय होते हैं तो उनमें प्रतिपादित ऋषभादि वर्धमानांत्य चतुर्विंशति तीर्थकरादि भी एवं उनसे प्रकाशित जैन मत भी अनादिनिधन तथा अपौरूषेय सिद्ध होते हैं।

सन्दर्भ

1. दिसम्बर 1904 एवं जनवरी 1905.
2. एक पुस्तक, लंदन में मुद्रित, 1817.
3. दिनांक 3.12.1911
4. दिनांक 17.09.1908.
5. रैस डेविड्स एवं आर. बर्न की रिपोर्ट
6. दिनांक 13.12.1914.
7. विविध ज्ञान विस्तार, मुम्बई, दिसम्बर 1903.
8. भगवद्गीता, पंचम अध्याय।
9. पाणिनि व्याकरण।
10. योगवाष्टि, वशिष्टर्षि प्रणीत उनत्तीस सहस्र श्लोक।
11. दक्षिणापूर्तिसहस्रनाम।
12. वाहिम्न स्तोत्र।
13. हनुमन्नाटक।
14. रूद्रयामलकतंत्र।
15. गणेश पुराण।
16. प्रभास पुराण।
17. नगर पुराण।
18. मनुस्मृति।
19. पंचमवेद।
20. भागवत।
21. श्रृंगार शतक।
22. वैराग्यशतक।
23. ऋग्वेद।
24. यजुर्वेद।
25. ऋग्वेद।

प्राप्त - 14.07.01

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

ज्ञानोदय इतिहास पुरस्कार

श्रीमती शांतिदेवी रतनलालजी बोबरा की स्मृति में श्री सूरजमलजी बोबरा, इन्दौर द्वारा स्थापित ज्ञानोदय फाउण्डेशन के सौजन्य से कुन्दकुन्द ज्ञानपीठ, इन्दौर के माध्यम से ज्ञानोदय पुरस्कार की स्थापना 1998 में की गई है। यह सर्वविदित तथ्य है कि दर्शन एवं साहित्य की अपेक्षा इतिहास एवं पुरातत्त्व के क्षेत्र में मौलिक शोध की मात्रा अल्प रहती है। फलतः यह पुरस्कार जैन इतिहास के क्षेत्र में मौलिक शोध को समर्पित किया गया है। इसके अन्तर्गत पुरस्कार राशि में वृद्धि करते हुए वर्ष 2000 से प्रतिवर्ष जैन इतिहास के क्षेत्र में सर्वश्रेष्ठ शोध पत्र/पुस्तक प्रस्तुत करने वाले विद्वान् को रुपये 11000/- की नगद राशि, शाल एवं श्रीफल से सम्मानित किया जायेगा।

वर्ष 1998 का पुरस्कार रामकथा संग्रहालय, फैजाबाद के पूर्व निदेशक **डॉ. शैलेन्द्र रस्तोगी** को उनकी कृति **'जैन धर्म कला प्राण ऋषभदेव और उनके अभिलेखीय साक्ष्य'** पर 29.3.2000 को समर्पित किया गया। इस कृति का ज्ञानोदय फाउण्डेशन के आर्थिक सहयोग से कुन्दकुन्द ज्ञानपीठ, इन्दौर द्वारा प्रकाशन किया जा रहा है।

वर्ष 1999 का पुरस्कार प्रो. हम्पा नागराजैय्या **(Prof. Hampa Nagarajaiyah)** को उनकी कृति **'A History of the Rastrakutas of Malkhed and Jainism** पर प्रदान किया गया।

वर्ष 2000 का पुरस्कार **डॉ. अभयप्रकाश जैन (ग्वालियर)** को उनकी कृति **'जैन स्तूप परम्परा'** पर एवं 2001 का पुरस्कार **श्री सदानन्द अग्रवाल (मेण्डा-उड़ीसा)** को उनकी कृति **'खारवेल'** पर 3 मई 2003 को समर्पित किया गया।

वर्ष 2002 से चयन की प्रक्रिया में परिवर्तन किया गया है। अब कोई भी व्यक्ति पुरस्कार हेतु किसी लेख या पुस्तक के लेखक के नाम का प्रस्ताव सामग्री सहित प्रेषित कर सकता है। चयनित कृति के लेखक को अब रु. 11000/- की राशि, शाल, श्रीफल एवं प्रशस्ति प्रदान की जायेगी।

साथ ही चयनित कृति के प्रस्तावक को भी रु. 1000/- की राशि से सम्मानित किया जायेगा। वर्ष 2002 एवं 2003 के पुरस्कार हेतु प्रस्ताव सादे कागज पर एवं सम्बद्ध कृति/आलेख के लेखक तथा प्रस्तावक के सम्पर्क के पते, फोन नं. सहित 31 दिसम्बर 2003 तक मानद सचिव, कुन्दकुन्द ज्ञानपीठ, 584, महात्मा गांधी मार्ग, तुकोगंज, इन्दौर - 452 001 के पते पर प्राप्त हो जाना चाहिये।

जैन विद्याओं के अध्ययन/अनुसंधान में रुचि रखने वाले सभी विद्वानों/समाजसेवियों से आग्रह है कि वे विगत 5 वर्षों में प्रकाश में आये जैन इतिहास/पुरातत्त्व विषयक मौलिक शोध कार्यों के संकलन, मूल्यांकन एवं सम्मानित करने में हमें अपना सहयोग प्रदान करें।

देवकुमारसिंह कासलीवाल
अध्यक्ष

डॉ. अनुपम जैन
मानद सचिव

कुन्दकुन्द ज्ञानपीठ, इन्दौर

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

वर्ष - 15, अंक - 4, 2003, 29 - 31

अर्हत् वचन
कुन्दकुन्द ज्ञानपीठ, इन्दौर

श्रमण कौन ?

■ समणी सत्यप्रज्ञा *

सारांश

प्रस्तुत आलेख में 'श्रमण' की विशेषताओं पर आगमोक्त रीति से प्रकाश डाला गया है। श्रमण शब्द मुनि का पर्यायवाची है। **सम्पादक**

भारतीय संस्कृति अध्यात्म प्रधान संस्कृति रही है। श्रमण परम्परा, ऋषि परम्परा का यहाँ गौरवमय स्थान रहा है। इस परम्परा के प्रति जन सामान्य की आस्था में आज अंतर आया है। इसका कारण है वेश बढ़ा है अर्हता में कमी आई है। आचार्य भिक्षु के शब्दों में **'हाथी का भार गधे पर लादा जा रहा है।'**

श्रमण शब्द जिस अर्हता को लिए हुए है उसकी गरिमा का वहन यदि साधु - समाज कर पाता, तो किसी भ्रांति को पनपने का अवकाश न मिलता, आस्था को चरमराने का अवसर न मिलता।

श्रमण कौन ?

''समयाए समणो होइ''। जो समभाव की साधना करता है वह श्रमण है। जैसे मुझे दुःख प्रिय नहीं है वैसे ही सब जीवों को दुःख प्रिय नहीं है, यह जानकर जो किसी प्राणी का घात नहीं करता है और न करवाता है। इस प्रकार समता में गतिशील होने के कारण वह समण कहलाता है। राब जीवों में कोई उसका अप्रिय और प्रिय नहीं है। सबके प्रति समभाव की साधना समण का नैसर्गिक स्वभाव है। सब जीवों में सम मन वाला होने के कारण वह समन (समना) कहलाता है। सब जीवों में कोई उसका अप्रिय और प्रिय नहीं है। सब जीवों में सम मन वाला होने के कारण वह समन (समना) कहलाता है। **''उवसम सारं सामण्णं।''** श्रामण्य का सार उपशम है। सदा उपशान्त रहना समण धर्म का आधार है। समण का एक अर्थ सु - मन; श्रेष्ठ मन वाला भी होता है। वह भाव से पाप - मन वाला नहीं होता, स्वजन और अन्य जन में तथा मान और अपमान में सम होता है इसलिए वह श्रमण है। **''श्रमुच खेदतपसे''** जो तपस्वी होता है वह श्रमण होता है। अर्थात् जो विविध अनुष्ठानों के माध्यम से कर्म शरीर को तपाता है वह श्रमण है।

आगम में कतिपय विशेषणों में जैन श्रमण की जीवंत प्रतिमा उत्कीर्ण की गई है। इनके माध्यम से श्रमण की श्रमणता का साक्षात्कार किया जा सकता है।

1. **गुप्तेन्द्रिय** – जो अपनी इन्द्रियों को सुरक्षित रखता है गुप्त का अर्थ है संरक्षित। चलना, बोलना आदि जीवन यात्रा की सामान्य प्रवृत्तियां है। इनके साथ समिति शब्द का प्रयोग होता है। वह इस बात की ओर इंगित करता है कि मुनि की ये प्रवृत्तियां सर्वसाधारण की तरह नहीं होनी चाहिए। ये गुप्तिपूर्वक होनी चाहिए। कछुआ के समान अपनी इन्द्रियों का गोपित करके रहे। संयत को परिभाषित करते हुए कहा गया जो श्रोत आदि इन्द्रियों को विषयों में प्रविष्ट नहीं होने देता तथा विषय प्राप्त होने पर जो उनमें राग - द्वेष नहीं करता उसे इन्द्रियों से संयत कहते हैं।

* जैन विश्व भारती संस्थान (मान्य विश्वविद्यालय), लाडनूं - 341306 (राज.)

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

2. गुप्त ब्रह्मचारी – ब्रह्मचर्य की 9 गुप्तियों, शील की नव बाड, का पालन करने वाला गुप्त ब्रह्मचारी होता है। शील रक्षा के लिए नौ गुप्तियों व दसवें कोट का उल्लेख करते हुए कहा गया -

स्थान विजन हो, कामकथा वर्जन आसन का संयम हो,
आंखों का कानों का संयम, स्मृति का संयम सक्षम हो।
सरस और अतिमात्र अशन न करे न विभूषाभाव भजे,
बने न विषयासक्त व्यक्त दसविध विधान से शील सझे।

3. चाई - असंग - संग का त्याग करने वाला। मुनि के लिए संग, लेप या आसक्ति का त्याग करना आवश्यक है। स्वामी कार्तिकेय के अनुसार मिष्ट भोजन, राग - द्वेष उत्पन्न करने वाली वस्तुएं और ममत्व के वास स्थान - उनको छोड़ना संग त्याग है। संयम, संवर और समाधि की विशिष्ट उपलब्धि संग त्याग से ही संभव है। श्रमण असंग होता है।

4. लज्जू – रज्जूवत् अवक व्यवहार करने वाला, संयमी लज्जू कहलाता है। धर्म कहां ठहरता है? इस प्रश्न को समाहित करते हुए कहा गया - **"सो ही उज्जुयभूयस्स धम्मो सुद्धस्स चिट्ठई।"** जो ऋजुभूत हेता है, सरल होता है उसमें धर्म निवास करता है। आचारांग भाष्य के अनुसार जिसकी प्रज्ञा सत्य होती है वह शरीर, वाणी व भाव से ऋजु तथा कथनी और करनी से समान होता है। इस प्रकार की प्रज्ञा से संचालित अन्त:करण ही हिंसा और विषय से विरत हो सकता है। कोई भी साधक केवल बाह्यचार से हिंसा और विषय से विरत नहीं हो सकता है। इस प्रकार ऋजुता व अकरणीय कार्य में लज्जा करना मुनि के चरित्र का विशेष लक्षण है।

5. धन्य – गृहस्थ धन - सम्पदा को प्राप्त कर अपने आपको धन्य मानता है। वैसे ही मुनि अध्यात्मिक सम्पदा को उपलब्ध कर धन्य होता है। जो संबंधातीत जीवन जीता है, उसके पास अपना कुछ भी नहीं होता, किन्तु वह संपूर्ण विश्व की सम्पदा का सहज स्वामी बन जाता है।

आकिन्चनोहमित्यारव त्रैलोक्याधिपतिर्भवेत्।"
योगिगम्यमिदं तथ्यं रहस्यं परमात्मन:॥"

6. खंतिखमे – श्रमण क्षमापूर्वक सहन करने वाला होता है। क्षांति को परिभाषित करते हुए कहा गया -

सहनं सर्वकष्टानामप्रतिकारपूर्वकम्।
चिन्ताविलापरहित्वात्, क्षांतिरित्यभिधीयते॥

बिना किसी प्रतिकार के, चिन्ता विलाप रहित अवस्था में सभी कष्टों को सहन कर लेना क्षान्ति है। कुछ लोग असमर्थ होने के कारण सहन करते हैं अथवा उन्हें सहन करना पड़ता है। मुनि समर्थ होते हुए भी प्रतिकूल परिस्थिति को सहन करता है इसीलिए वह क्षान्तिक्षम कहलाता है।

7. जितेन्द्रिय – इन्द्रिय - विकार से मुक्त जितेन्द्रिय है। भगवती वृत्ति में गुप्तेन्द्रिय व जितेन्द्रिय में एक भेदरेखा खींची गई है, जिसमें इन्द्रिय विकार का अभाव नहीं है किन्तु उनका गोपन कर लेता है वह गुप्तेन्द्रिय और जिसमें इन्द्रिय - विकार उत्पन्न नहीं होता, वह जितेन्द्रिय है।

8. शोधी – आत्मा का पर से शोधन करने वाला शोधी होता है। मुनि का हृदय अकलुषित

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

8. शोधी - आत्मा का पर से शोधन करने वाला शोधी होता है। मुनि का हृदय अकलुषित और पवित्र होता है इसीलिए उसे शोधी कहा गया है। इसका वैकल्पिक अर्थ सहृद हो सकता है। वह समस्त प्राणियों के साथ मैत्री का व्यवहार करता है। इसीलिए सुदृढ़ अर्थ भी संगत है।

9. अनिदानी - निदान न करने वाला होने से श्रमण अनिदानी होता है। वह पॉद्गलिक पदार्थों की आकांक्षा नहीं करता। जो निदान युक्त होता है उसके चरित्र नहीं होता क्योंकि निदान के साथ हिंसा की अनुमोदना जुड़ी हुई है।

10. अल्पोत्सुक्य - श्रमण अल्प उत्सुकता वाला अनुत्सुक होता है। मुनि आत्मा में रमण करता है इसीलिए पदार्थ के प्रति उसके मन में औत्सुक्य नहीं होता। वस्तु के प्रति व्याकुलता या उत्कण्ठा से वह मुक्त होता है। यह स्थिति सुख की स्पृहा का निवारण करने पर प्राप्त होती है।

11. अबहिर्लेश्य - संयम से अबहिर्भूत चित्तवृत्ति वाला अबहिर्लेश्य कहलाता है। मुनि की भावधारा, संयम में अन्तर्लीन रहती है इसलिए वह अबहिर्लेश्य है। अबहिर्लेश्य बनने के लिए आचार्य महाप्रज्ञ **''रहें भीतर जीएं बाहर''** का संबोध देते हैं।

12. सुश्रामण्यरत - श्रमण सम, शम, श्रम की साधना करता है। सम - समानता की अनुभूति, शम - शांति, श्रम - क्लम - तपस्या में रत होता है। इनसे उसका श्रामण्य अतिशायी बनता है। इसलिए उसे सुश्रामण्यरत कहा जाता है।

13. निर्ग्रंथ प्रवचन के अनुसार चलने वाला - निर्ग्रंथ प्रवचन में श्रद्धा, प्रतीति, रूचि होना - पूर्ण समर्पण की अभिव्यंजना हैं। निर्ग्रंथ प्रवचन को निरंतर आगे रखकर चलना हार्दिक श्रद्धा का प्रतिफलन है।

मुनि, साधु, भिक्षु आदि शब्द भी श्रमण के लिए प्रयुक्त होते हैं।

''नाणेण य मुणी होइ'' - जो ज्ञान की आराधना करता है वह मुनि होता है। संवेग, निर्वेद, विषय - त्याग, सुशील - ससंर्ग, आराधना, तप, ज्ञान - दर्शन, चारित्र, विनय, क्षांति, मार्दव, आर्जव, विमुक्तता, अदीनता, तितिक्षा, आवश्यक शुद्धि - ये भिक्षु की पहचान है।

श्रमण के लिए प्रयुक्त ये विविध विशेषण साधक के जीवन चित्र को विविध आयामों से प्रस्तुत करते हैं। **''पणया वीरे महावीहिं'' त्याग के महान पथ पर महान व्यक्ति ही बढ़ सकता है।**

प्राप्त : 22.04.02

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

कुन्दकुन्द ज्ञानपीठ, इन्दौर का प्रकल्प

कुन्दकुन्द ज्ञानपीठ पुस्तकालय

आचार्य कुन्दकुन्द द्विसहस्राब्दि महोत्सव वर्ष के सन्दर्भ में 1987 में स्थापित कुन्दकुन्द ज्ञानपीठ ने एक महत्वपूर्ण प्रकल्प के रूप में भारतीय विद्याओं, विशेषत: जैन विद्याओं, के अध्येताओं की सुविधा हेतु देश के मध्य में अवस्थित इन्दौर नगर में एक सर्वांगपूर्ण सन्दर्भ ग्रन्थालय की स्थापना का निश्चय किया।

हमारी योजना है कि आधुनिक रीति से दाशमिक पद्धति से वर्गीकृत किये गये इस पुस्तकालय में जैन विद्या के किसी भी क्षेत्र में कार्य करने वाले अध्येताओं को सभी सम्बद्ध ग्रन्थ/शोध पत्र एक ही स्थल पर उपलब्ध हो जायें। इससे जैन विद्याओं के शोध में रूचि रखने वालों को प्रथम चरण में ही हतोत्साहित होने एवं पुनरावृत्ति को रोका जा सकेगा।

केवल इतना ही नहीं, हमारी योजना दुर्लभ पांडुलिपियों की खोज, मूल अथवा उसकी छाया प्रतियों/माइक्रो फिल्मों के संकलन की भी है। इन विचारों को मूर्तरूप देने हेतु दिगम्बर जैन उदासीन आश्रम, 584, महात्मा गांधी मार्ग, इन्दौर पर कुन्दकुन्द ज्ञानपीठ पुस्तकालय की स्थापना की गई है। 30 सितम्बर 2003 तक पुस्तकालय में 1000 महत्वपूर्ण ग्रन्थों एवं सहस्राधिक पांडुलिपियों का संकलन हो चुका है। जिसमें अनेक दुर्लभ ग्रन्थों की फोटो प्रतियाँ भी सम्मिलित हैं। अब उपलब्ध पुस्तकों की समस्त जानकारी कम्प्यूटर पर भी उपलब्ध है। फलत: किसी भी पुस्तक को क्षण मात्र में ही प्राप्त किया जा सकता है। हमारे पुस्तकालय में लगभग 300 पत्र-पत्रिकाएँ भी नियमित रूप से आती हैं, जो अन्यत्र दुर्लभ है।

आपसे अनुरोध है कि —

संस्थाओंसे : 1. अपनी संस्था के प्रकाशनों की 1-1 प्रति पुस्तकालय को प्रेषित करें।

लेखकों से : 2. अपनी कृतियों की सूची प्रेषित करें, जिससे उनको पुस्तकालय में उपलब्ध किया जा सके।

3. जैन विद्या के क्षेत्र में होने वाली नवीनतम शोधों की सूचनाएँ प्रेषित करें।

दिगम्बर जैन उदासीन आश्रम परिसर में ही अमर ग्रन्थालय के अन्तर्गत पुस्तक विक्रय केन्द्र की स्थापना की गई है। पुस्तकालय में प्राप्त होने वाली कृतियों का प्रकाशकों के अनुरोध पर बिक्री केन्द्र पर बिक्री की जाने वाली पुस्तकों की नमूना प्रति के रूप में उपयोग किया जा सकेगा। आवश्यकतानुसार नमूना प्रति के आधार पर अधिक प्रतियों के आर्डर दिये जायेंगे। अर्हत् वचन में 'धन्यवाद/आभार' स्तम्भ में प्राप्त प्रतियों की प्राप्ति स्वीकार की जायेगी।

प्रकाशित जैन साहित्य के सूचीकरण की परियोजना भी यहीं संचालित होने के कारण पाठकों को बहुत सी सूचनाएँ यहाँ सहज उपलब्ध हैं।

देवकुमारसिंह कासलीवाल
अध्यक्ष

डॉ. अनुपम जैन
मानद सचिव

01.10.03

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

अर्हत् वचन
कुन्दकुन्द ज्ञानपीठ, इन्दौर

वर्ष - 15, अंक - 4, 2003, 33 - 40

नागवंश

जैन इतिहास की एक अलक्षित वंश परंपरा

■ सूरजमल बोबरा *

सारांश

नागवंश या उरगवंश का उदय ऋषभदेव की शासन-व्यवस्था के परिणाम स्वरूप हुआ। पुराणों में वर्णित तक्षशिला व पातालपुरी के नाग अन्य कोई नहीं वरन सिंधु घाटी व नर्मदा घाटी क्षेत्र के नागवंशी थे जो महामारी व जलप्लावन के कारण सुरक्षित स्थानों पर विस्थापित होने के लिये बाध्य हो गये थे। कालान्तर में जनमजेय के 'नागयज्ञ' की विनाशलीला के बाद भी नागवंशी बचे रहे और उनके हाथों हस्तिनापुर का अंत हुआ।

नागवंशी सुसंस्कृत मानव थे जो विद्याधर तो नहीं थे किन्तु कई विद्याओं को जानते थे। ई.पू. 8 वीं शती तक (शिशुनाग वंश के रूप में) इनका प्रबल प्रभाव हम उत्तर भारत में पाते हैं। हस्तिनापुर, पवैया, बनारस व मगध इनके प्रमुख गढ़ थे।

नागवंशी मूलतः जैन परम्परा के होने के कारण जैनेतर संदर्भों द्वारा अलक्षित रखे गये। जैन इतिहास को समझने के लिये इस वंश के इतिहास को समझना आवश्यक है।

नागवंश का भारत के प्राचीन इतिहास में बहुत बड़ा स्थान है। नागजाति अथवा नाग जनसमूह व उनके राज्य परिवारों का समस्त भारतीय इतिहास की धाराओं पर अमिट प्रभाव पड़ा है। भारतीय जनमानस में नाग संस्कृति के अस्तित्व, उनका लोक परंपरा पर प्रभाव, कथा-कहानी व जन श्रुतियों में उनका वर्णन, कला के सभी आयामों में उनके रूपाकारों के प्रति लगाव एक आधारभूत संरचना का प्रमाण है। यह आधारभूत संरचना है एक सुसंस्कृत मानव समाज की जो भारत भूमि पर अपने कार्य कलापों से आर्थिक, सामाजिक, राजनैतिक व धार्मिक उपलब्धियों द्वारा विश्व की सभी सभ्यताओं के लिए आकर्षण का कारण रही।

अति प्राचीन भारतीय इतिहास की धारायें जैन व वैष्णव/हिन्दू पुराणों में सुरक्षित हैं। यद्यपि पुराण कर्ताओं ने उन्हें रूपकों में बांधकर धार्मिक आधार दिया है किन्तु यदि सकारात्मक दृष्टिकोण अपनाया जाय तो वास्तव में उन रूपकों में इतिहास छिपा है। उदाहरण के लिए जनमजेय के नागयज्ञ पर विचार करें। वास्तव में घटनाक्रम इस प्रकार है - महाभारत के उपरान्त उत्तर भारत में वैदिक क्षत्रियों के बारह राज्य थे। उनमें सर्व प्रधान राज्य कुरु देश में हस्तिनापुर का पुरु-कुरु अथवा पांडव वंशियों का था। अर्जुन का पौत्र परीक्षित उनका अधीश्वर था। किन्तु उसके समय में ही वैदिक आर्यों की बढ़ती हुई शक्ति के सम्मुख लंबे समय से दबी रही नाग आदि-द्रविड़ जातियाँ जागृत हो गई थीं। पश्चिमोत्तर प्रदेश की तक्षशिला और सिन्धुमुख की पाताल पुरी के नाग विशेष प्रबल हो उठे। नवीन उत्साह से जागृत, विशेषकर तक्षशिला के नागों ने कुरु राज्य के उपर भीषण आक्रमण शुरू कर दिये। उन के साथ युद्ध में ही परीक्षित की मृत्यु हुई। उसके बेटे जनमजेय का भी सारा जीवन नागों के साथ युद्ध करने में ही बीता। उसने उनका भरसक संहार भी किया किन्तु उनके बढ़ते हुए वेग को रोकने में वह भी असमर्थ रहा और हस्तिनापुर राज्य उत्तरोत्तर क्षीण होता चला गया। जनमजेय की इसी नाग संहारक गतिविधि को वेदानुयायी पुराणों ने ''नाग यज्ञ'' के रूप में प्रकाशमान करने का प्रयत्न किया है। यह एक स्वाभाविक प्रक्रिया है। जनमजेय के पश्चात् शतानीक,

* निदेशक - ज्ञानोदय फाउन्डेशन, 9/2, स्नेहलतागंज, इन्दौर - 452 005

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

अश्वमेधदत्त और अधिसीमकृष्ण गद्दी पर बैठे। अधिसीम के समय अयोध्या में दिवाकर, मगध में सेनजीत एवम् विदेह में जनक उग्रसेन राज्य करते थे और पंजाब में प्रवाहण जैबलि का प्रभाव था। नागों के दबाव व प्राकृतिक विपदाओं से त्रस्त होकर कुरूवंशी राजा अधिसीम के बेटे निचक्ष के राज्य काल में देश का परित्याग कर वत्स देश की कोशांबी नगरी में जा बसे। यह घटना लगभग ई.पू. 9 वीं, 10 वीं शताब्दी की है। तक्षशिला के व पाताल पुरी के नाग अन्य कोई नहीं वरन् सिंधु घाटी क्षेत्र व नर्मदा घाटी क्षेत्र में जल विप्लव व महामारियों के प्रकोप के कारण सुरक्षित स्थानों पर विस्थापित होने के लिए बाध्य हो गये लोग थे। ऋग्वेद की ऋचाओं के कर्त्ता व वैदिक संस्कृति से जुड़ने वाले लोग भी प्राकृतिक प्रकोप व परिस्थितियों से जूझते वे भारतीय थे जो संभवत: नागवंशियों से असहमत होकर पंचनद क्षेत्र में फैल गये।

प्राय: इसी समय विदेह के 'जनकों' की राज्य सत्ता का अन्त हो गया और वहाँ संघ राज्य स्थापित हो गया। उसी के पड़ोस में लिच्छिवियों का संघ राज्य विकसित हो रहा था। विदेह के संघ राज्य व लिच्छिवियों के संघ राज्य के आपस में विलय के पश्चात् वृजि या वज्जिगण की स्थापना हुई। ये लोग श्रमणोपासक व्रात्य क्षत्रिय थे।

काशी में भी उरग, उग्र या नागवंशी व्रात्य क्षत्रियों का राज्य स्थापित था। इस समय काशी राज्य की बड़ी सत्ता थी। कोसल और अश्मक राज्य भी काशी के अधीन थे। काशी नरेश ब्रह्मदत्त जैन परम्परा के थे। इस तथ्य को डॉ. रायचौधरी आदि विद्वानों ने सही माना है। उसका उल्लेख अथर्ववेद तथा बौद्ध साहित्य में भी आता है। इसी वंश में तीर्थंकर पार्श्वनाथ का जन्म हुआ।

यहाँ हम नागवंश की शक्ति का प्रसार पाते हैं। तक्षशिला, पातालपुरी व सिन्धु क्षेत्र से लेकर नर्मदा घाटी, काशी, मगध तक नागजाति का प्रभुत्व आंका जा सकता है। शिशुनाग उसकी ज्ञात महत्वपूर्ण कड़ी थी जिसे सब इतिहासकारों ने स्वीकार किया है।

8 वीं शती ई.पू. में मगध में राज्य विप्लव हुआ और मगधवालों ने शिशुनाग को राजा होने के लिए आमंत्रित किया। वह काशी का राज्य अपने पुत्रों को देकर मगध का राजा बना। इस घटना ने मगध व काशी के सम्बन्धों को नया आधार दिया। वैदिक नाग और श्रमण नागों का 8 वीं शती ईसा पूर्व में समस्त उत्तर भारत में प्रभाव नजर आता है।

नागवंश या उरग वंश भारत के उन प्रसिद्ध वंशों में है जिसका अस्तित्व ऋषभदेव की शासन व्यवस्था के परिणाम स्वरूप आया। ऋषभदेव द्वारा अधिष्ठित चार महामाण्डलिक राजाओं में एक काश्यप था जो ऋषभदेव से मघवा नाम पाकर उग्रवंश/उरगवंश का मुख्य राजा हुआ। मघवा हिन्दू पुराणों के अनुसार एक इन्द्र हैं और सातवें द्वापर के व्यास थे।

नागवंश का एक जैन संदर्भ और महत्वपूर्ण है। आचार्य जिनसेनकृत आदिपुराण[1] में निम्नप्रकार विवरण है।

कच्छ महाकच्छ के पुत्रों नमि विनमि ने जब भगवान ऋषभदेव के सम्मुख मांग रखी कि - 'हे स्वामिन' आपने अपना साम्राज्य अपने पुत्रों और पौत्रों को बांट दिया, आपने हम दोनों को भूला ही दिया। हम भी तो आपके ही हैं। अब हमें भी कुछ दीजिए। ध्यानस्थ भगवान के तप के प्रभाव से धरणेन्द्र (भवन वासी देवों की जाति के नागकुमार इन्द्र) का आसन कम्पित हुआ। उसने अवधि ज्ञान से सब बातें जान ली। कुमारों के भक्तिपूर्ण वचन सुनकर धरणेन्द्र अत्यंत संतुष्ट हुआ और अपना परिचय देकर बोला ''मैं भगवान का साधारण सेवक हूँ। आप लोगों की इच्छा पूर्ण करने के लिए यहाँ आया हूँ।''

फिर धरणेन्द्र उन्हें विजयार्ध पर्वत पर ले गया। रथनूपुर: चक्रवाल नामक नगर में प्रवेश किया। फिर धरणेन्द्र ने विद्याधरों को बुलाकर कहा 'जगदगुरू भगवान ऋषभदेव ने इन कुमारों को यहाँ भेजा

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

है। ये आज से तुम्हारे स्वामी है। यह कुमार नमि दक्षिण श्रेणी का अधिपति होगा और कुमार विनमि उत्तर श्रेणी पर राज्य करेगा। संभवत: विंध्याचल पर्वत श्रेणी में यह स्थान हों। विद्याधरों ने धरणेन्द्र की यह आज्ञा स्वीकार कर ली। तब धरणेन्द्र ने उन दोनों कुमारों का राज्याभिषेक किया और राज सिंहासन पर बैठाया। उसने उन दोनों को गान्धारपदा और पन्नगदा विद्यायें दी। यद्यपि वे कुमार जन्म से विद्याधर नहीं थे किन्तु उन्होंने वहाँ रहकर अनेक विद्यायें सिद्ध कर ली। स्पष्ट है कि विद्याधर जाति पर नागवंशी धरणेन्द्र इन्द्र का प्रभुत्व था। अर्थात् वे नागवंशी थे। धरणेन्द्र इन्द्र इक्ष्वाकु कुल के समर्थक थे। नमि, विनमि भी प्राप्त विद्याओं और साधनाओं के बल पर नागवंशी परंपरा के अंग हो गये थे। 'धरणेन्द्र' की महत्ता जैन परंपरा में उनके इसी महत्वपूर्ण कार्य के कारण है।

सम्भवत: नागवंश का शुभारंभ यहीं से हुआ।

जैन संदर्भों में विद्याधरों के संबंध में अनेक बार पढ़ने के लिए मिलता है। विद्याधर के बारे में धवला ग्रंथ में विचार किया गया है[2] जिसे जिनेन्द्रवर्णी ने निम्न प्रकार से स्पष्ट किया है - इस प्रकार से तीन प्रकार की विद्यायें (जाति, कुल व तप विद्या) विद्याधरों के होती है। वैताढ्य पर्वत पर निवास करने वाले मनुष्य भी विद्याधर होते हैं। सब विद्याओं को छोड़कर संयम को ग्रहण करने वाले भी विद्याधर होते हैं, क्योंकि विद्या विषयक विज्ञान वहां पाया जाता है जिन्होंने विद्यानुप्रवाद को पढ़ लिया है वे भी विद्याधर हैं, क्योंकि उनके भी विद्या विषयक विज्ञान पाया जाता है।

त्रिलोकसार[3] की एक गाथा भी स्पष्ट करती है कि विद्याधर लोग तीन विद्याओं तथा पूजा उपासना आदि षट कर्मों से संयुक्त होते हैं।

धवला के अनुसार विद्याधर आकाशचारी नहीं हो सकते। इस संदर्भों से यह स्पष्ट है कि विद्याधर मनुष्य ही होते थे किन्तु उन्हें कुछ विद्याओं का ज्ञान था। हो सकता है कि उनका तंत्र - मंत्र से जुड़ा होने के कारण उन्हें लोक जीवन में पृथक मान लिया गया हो।

राजा विनमि के पुत्रों में जो मातङ्ग हुआ उसी से मातङ्ग वंश की उत्पत्ति हुई। मातङ्ग जाति के भी 7 भेद हैं जिनमें एक है वार्क्षमूलिक = सर्प चिन्ह के आभुषण से युक्त।[4]

मातंग वंश के बाद में बहुत से संदर्भ उपलब्ध नहीं है। किन्तु संकेतों को हम ग्रहण करें तो एक चित्र स्वरूप लेता नजर आता है।

आदिनाथ (ईक्ष्वाकु)

↓

नाग जाति के इन्द्र धरणेन्द्र द्वारा अपने प्रभाव वाली विद्याधर जाति पर नमि - विनमि का राज्यारोहण किया गया

↓

विनमि के पुत्र मातंग द्वारा मातंगवंश का प्रारंभ

↓

कालान्तर में मातंग जाति के 7 भेद जिसमें एक वार्क्ष मूलिक = सर्प चिन्ह के आभुषण युक्त है।

इसी वार्क्षमूलिक परंपरा में भगवान सुपार्श्वनाथ हुए, इनका प्रतीक जातीय चिन्ह सर्प फणावली था। जो आज भी परंपरागत रूप से प्रयुक्त होता है। भगवान सुपार्श्वनाथ का चिन्ह तो स्वास्तिक है किन्तु सर्पफणावली उनकी मूर्ति के साथ सदैव अंकित होती है। इसे नागवंश की स्थापित परंपरा का सूचक माना जा सकता है। सुपार्श्वनाथ का जन्म स्थल वाराणसी व वर्ण हरित था। सुपार्श्वनाथ

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

का काल निर्धारण अति कठिन कार्य है। कुछ तथ्य हमारे सामने हैं - (1) वाराणसी में नागवंश का राज्य था। लोक जीवन में नागपूजा का वहाँ अत्यधिक महत्व था। (2) सुपार्श्वनाथ का यक्ष मातंग है। नागवंश की परंपरा भी विनमि के पुत्र मातंग द्वारा ही प्रारंभ हुई। (3) सुपार्श्वनाथ का प्रभाव बनारस से लेकर हड़प्पा संस्कृति के रूप में जाने जाने वाले सभी क्षेत्र में सर्पफण के रूपाकार एवम् स्वास्तिक के माध्यम से पहचाना जा सकता है। (4) जिस काल में श्रमण संस्कृति धीरे-धीरे विकसित हो रही थी उसी काल में उक्त ऋषभ धर्म एवम् श्रमण संस्कृति से कथंचित प्रभावित विद्याधरों की लौकिकता एवम् भौतिकता प्रधान उत्कृष्ट नागरिकता का प्रारंभ एक ओर नर्मदा कांठे में और दूसरी ओर सिंधुनदी की घाटी में हो रहा था। मातंगवंश - नागवंश के रूप में इसी क्षेत्र में पल्लवित हो रहा था। (5) विद्वानों के मतानुसार सिंधुघाटी सभ्यता का जीवन काल ई.पू. 6000 से 2500 वर्ष तक रहा प्रतीत होता है। (6) विनमि का राज्य विंध्याचल की श्रृंखलाओं में स्थापित होकर विद्याधरों के योगदान से पश्चिमांचल व सिन्धु घाटी क्षेत्र में विस्तृत हुआ। वाराणसी में भी इस राज्य का एक प्रमुख केन्द्र था। (7) विद्याधर मनुष्य ही थे, उनका अस्तित्व वास्तविक था। पौराणिक साहित्य विद्याधरों की क्षमता का प्रभावशाली वर्णन करते हैं।

मानक हिन्दी कोश तीसरा खण्ड[5] में श्री रामचंद्र वर्मा ने हिन्दु पुराणों के आधार पर नाग के विषय में रोचक सामग्री दी है।

नाग - पुराणानुसार पाताल में रहने वाला एक उपदेवता जिसका ऊपरी आधा भाग मनुष्य का और नीचे का आधा वाला भाग सांप का कहा गया है। (यहाँ स्मरण रखें की पातालपुरी सिंधु डेल्टा में अवस्थित होना चाहिए। हड़प्पा संस्कृति के विखंडन के पश्चात तक्षशिला और पातालपुरी नाग संस्कृति के प्रमुख केन्द्र बन गये थे।)

नाग : कद्रु से उत्पन्न कश्यप की संतान जिनका निवास पाताल में माना गया है। इनके वासुकी, तक्षकर, कुलक, कर्कोटक, पद्म, शंखचूड़, महापद्म और धनंजय ये आठ कुल हैं।

नाग : हिन्दू पुराणों में एक प्राचीन देश माना जाता है।

विशेष : उत्तरदेश में रहने वाली एक प्राचीन जाति नाग जाति सम्भवतः भारत में और हिमालय के उस पार रहती थीं क्योंकि तिब्बत वाले अपने आपको नागवंशी कहते हैं - महाभारत काल तक ये लोग भारत में आते थे। और उत्तर भारतीय आर्यों से इनका बहुत वैमनस्य था। इसीलिए जनमजेय ने बहुत से नागों का नाश किया था। बाद में ये लोग मध्यभारत में आकर फैल गये थे। जहां नागपुर और छोटा नागपुर प्रदेश इनके नाम की स्मृति के रूप में अब तक अवशिष्ट हैं। ये लोग नागों (बड़े बड़े फनदार सांपों) की पूजा करते थे। इसी से इनका यह नाम पड़ा था। बंगाल में अब तक हिन्दुओं में नाग एक जाति का नाम मिलता है।

नाग - एक प्राचीन पर्वत, हाथी, एक प्रकार की घास, नाग केसर, पुन्ननाग, नागर मोथा, सीसा नामक धातु, ज्योतिष के करणों में तीसराकरण, जिसे ध्रुव भी कहते हैं, बादल/मेघ कुछ लोगों के मत से सात की और कुछ के मत से आठ की संख्या, अश्लेषा नक्षत्र का एक नाम शरीर में रहने वाले पांच प्राणों या धातुओं में से एक जिससे डकार आता है।

पौराणिक वंशों की परंपरा का अस्तित्व और उनका भिन्न-भिन्न रूप में फैलाव अब तक इस दृष्टि से नहीं देखा गया है कि ये इतिहास के लिए आधारभूत सामग्री जुटा सकते हैं। यहाँ वहाँ विद्वानों ने इनका सहारा लेकर कुछ घटनाओं के क्रम को जोड़ा है किन्तु एक विशद दृष्टि से इसके पूर्वा पूर्व को समग्र इतिहास पर नहीं फैला पाये हैं।

यतिवृषभ ने भगवान धर्मनाथ को कुरूवंशी माना है। जबकि कुरूवंश का प्रारंभ तो आदिनाथ द्वारा ही कर दिया गया था। सोमप्रभ उसके प्रथम पुरूष थे जो बाहुबली के पुत्र थे। उनसे कुरूवंश

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

और सोमवंश चले। हरि और काश्यप आदिनाथ के पुत्र थे। नागवंश के समस्त वैदिक व हिन्दू पौराणिक संदर्भ ठीक से प्राप्त नहीं होते हैं। ऐसा लगता है जानबूझ कर या उपेक्षा भाव से इस वंश के संदर्भों/सूत्रों को अलक्षित कर दिया गया। यह संभवत: इसलिए भी किया गया हो कि नागों की परंपरा श्रमण परंपरा थी। इसीलिए नागों के प्रत्येक उत्थान - परिवर्तन को अभिलेखित करना आवश्यक न समझा गया हो। इस स्थिति को कई इतिहासकारों ने रेखांकित किया है। डॉ. जायसवाल लिखते है - 'पद्मावती' जैसी कला संस्कृति से पूर्ण नगरी के वर्णनों का इतिहास में अभाव - आश्चर्यजनक लगता है' - इस पर ध्यान जाता है कि नागवंशी राजाओं का वहाँ राज्य था। भले ही उस समय वे वैदिक परम्पराओं को भी मानने लगे थे। भारत के सभी राजा अपनी व्यक्तिगत आस्था के अतिरिक्त अन्य धार्मिक परम्पराओं का भी सम्मान करने के लिए बाध्य थे - जैसे अशोक का रूझान बौद्ध धर्म की तरफ था किन्तु उसके द्वारा कई जैन उपक्रमों में सहयोग देते हुए देखा जा सका है वैसे ही सम्प्रति का रूझान जैन धर्म की तरफ था किन्तु उसने बौद्धावलंबियों के प्रति विरोध भाव नहीं रखा।

इतिहास और कला के बहुआयामी स्वरूप तथा उनका एक दूसरे पर आश्रित होना स्वयम् सिद्ध है। अलिखित इतिहास का जो ढांचा खड़ा हुआ है वह उपलब्ध चित्रों व शिल्पों के आधार पर हुआ।

लक्ष्मण भांड ने डॉ. जायंसवाल से सहमत होते हुए लिखा है 'शतकों तक जनमानस को प्रभावित करने वाली नागवंशियों एवं उनकी राजधानी पद्मावती का उल्लेख तक भारतीय इतिहास में न होना पीड़ादायक सत्य है'।[6]

यहाँ यह ध्यान दिया जा सकता है कि पद्मावती के नागों के पूर्व वहाँ नागवंश का अस्तित्व था जिसका अंत करने के लिए जनमजेय ने प्रभावशाली अभियान छेड़ा था - उन्हें पीछे हटने के लिए बाध्य भी कर दिया गया था किन्तु अंतत: जनमजेय व उसके वंशजों को हार माननी पड़ी। ऐसा लगता है नागवंशी परंपरा ई.पू. 9 वीं 10 वीं शताब्दी में श्रमण एवं वैदिक समूह में विभाजित हो गये। एक परंपरा (श्रमण) में ब्रह्मदत्त व पार्श्वनाथ हुए और दूसरे समूह में पद्मावती के नाग हुए। श्रमण परंपरा प्राचीन थी जिसके एक प्रमुख व्यक्ति थे सुपार्श्वनाथ। बाद में - नागवंश का ज्ञात विवरण महाभारत काल तक उपलब्ध नहीं है। इसके बाद की परंपरा का विवरण पहले किया जा चुका है। वैदिक संदर्भों में जो संघर्ष बताये गये हैं वे संभवत: वेदानुयाइओं और द्रविड़ नागों के बीच हुए थे।

सिंधु घाटी में जैन चिन्तन का अस्तित्व माना जा रहा है। वैदिक सभ्यता के उदय के साथ-साथ पश्चिम भारत में नाग व कुरूवंशियों में संघर्ष हुआ। पहले तो नाग पराजित हुए किन्तु बाद में विजय उनके हाथ लगी। इस काल में नाग जाति का मिश्रण वैदिक आर्यों से हुआ और दो धारायें दिखाई देती हैं :-

1. श्रमण परंपरा के नाग जिसमें आगे चलकर ब्रह्मदत्त चक्रवर्ती व पार्श्वनाथ हुए।
2. वैदिक परंपरा के नाग जिसमें पद्मावती के नाग हुए।

'नाग' को पहचानते हुए धवला[7] में वर्णन किया गया है। **'फणोपलक्षित: नागा:'** फण से उपलक्षित भवनवासी देव नाग कहलाते हैं। पुराणों में आये कई शब्दों के हम अर्थ ढूंढने का प्रयत्न करें तो कई संदर्भ स्पष्ट हो जाते हैं - जैसे देव, विद्याधर, गंधर्व, राक्षस, वानर, नाग आदि जातियाँ या वंश थे जिससे समूह पहचाने जाते थे। बाद के काल में साहित्यिक कथानकों के कारण कई जातियाँ श्रेष्ठता या हीनता की रूढ़ता में बंध गई व लोकमानस में संदर्भों के अभाव में अतिमानवीय या मनुष्य के अतिरिक्त शक्ति रूप में स्मरण रह गई। नागवंश के लोग सर्प फण का प्रतीक अपनाते थे। हम ध्यान दें हमारे पुराणकारों ने पुरावा सम्हालकर अभिलेखित किया है कि भगवान सुपार्श्वनाथ

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

व पार्श्वनाथ के मस्तिष्क पर सर्पफण बनाया जाता है क्योंकि दोनों ही नाग/उरंग वंश में हुए थे। नाग वंश का प्रतीक सर्पफण तो है ही किन्तु दोनों की जन्म नगरी भी काशी है। इसमें दो ऐतिहासिक आधार छिपे हैं कि गंगा द्रोणी व विंध्य उपत्यका पर स्मरण से परे काल में नागवंश का शासन था और जिनकी राजधानी काशी थी। इक्ष्वाकु कुल में कई वंश हुए जिसमें उरग/नाग वंश भी हुआ। काल के थपेडे खाते हुए सभी वंशपरम्परायें खंडित व मिश्रित हो गई किन्तु शिल्प व साहित्य पुनः उस परंपरा को स्थापित व स्मृति में जीवित रखते हैं। मोहनजोदड़ो के अवशेषों में भी सर्पफण युक्त मूर्तियाँ मिली हैं।

यह मूर्तियाँ नाग वंशियों के सिंधु घाटी सभ्यता में अस्तित्व की सूचक हैं। इस सभ्यता के पतन के बाद हम हड़प्पा सभ्यता के दस्तकारों आदि को पूर्व और दक्षिण की ओर पलायन करते हुए पाते हैं।[8] दक्षिणांचल मे फणावली युक्त सुंदरतम मूर्तियों का निर्माण हुआ है और उनके कई अतिप्राचीन है।

इस चित्र का एक दूसरा पक्ष भी है :

(1) महाभारत पूर्व सिन्धु घाटी व नर्मदाघाटी के श्रमण नाग (अपने ज्ञान विज्ञान के कारण विद्याधर रूप में प्रसिद्ध) तक्षशिला क्षेत्र और द्वारिका क्षेत्र में केन्द्रित हो गये। द्वारिका का निर्माण अनायास ही नहीं हुआ। सिन्धु घाटी क्षेत्र के दस्तकारों ने द्वारिका क्षेत्र को उन्नत बनाया। यादव वंशी कृष्ण और बलराम ने श्रमण परम्पराओं के इस विकसित स्थान को अपने विचारों के अनुकूल पाकर अपनी राजधानी बनाया। पातालपुरी को यहीं कहीं ढूंढा जाना चाहिए।

(2) तक्षशिला के नागों ने वैदिक केन्द्र कुरू राज्य पर अपना दबाव बनाये रखा और अन्ततः उन्हें पूर्व की ओर धकेल दिया जहाँ पहले से ही श्रमण सभ्यता का अस्तित्व था व नाग वंश का प्रभाव था।

(3) वैदिक राजाओं द्वारा पूर्व की ओर आक्रमण और अग्रघर्षण को चित्रित करते हुए भगवानसिंह का यह मत उचित ही है कि जब हम इन आर्यों को पूर्व की ओर अग्रसर होते हुए देखते हैं और एकांगी बढ़त पर बल देते हैं तो इसके साथ इस बात पर ध्यान नहीं देते कि इनको इसी के साथ पश्चिम में इतने ही बड़े भाग को छोड़ना पड़ रहा है और वह भी किसी दबाव में[9]। यह दबाव अन्य कोई नहीं तक्षशिला व पातालपुरी के नागों का था।

(4) वैदिक राजाओं को पूर्व में भी कठिनाई का सामना करना पड़ा क्योंकि यहाँ भी नाग राजाओं और व्रात्यों का आधिपत्य था। वैदिक समूह में धार्मिक, सामाजिक व राजनैतिक छटपटाहट जो इस काल (ईसा से 10 वीं 8 वीं शती पूर्व) में पाते हैं वह इसी परिस्थिति का परिणाम है।

यादव वंश द्वारा द्वारिका के नेतृत्व में इस कार्य का प्रारंभ हुआ व नागवंश ने काशी के नेतृत्व में इस कार्य को आगे बढाया। नेमी, कृष्ण और पार्श्वनाथ इस परिवर्तन के प्रमुख नेता थे। इस परिवर्तन को आकार दिया वज्जिसंघ ने। वैशाली को केन्द्र बनाकर चेटक ने एक महत्वपूर्ण राजनैतिक संरचना बनाई जिसने - राजगृही, कोशांबी, दशार्ण, कौशल, अंवति, पांचाल, सिंधु सौवीर, नागहस्तिपुर, अहिच्छत्रा, मथुरा, पलाशपुरा, तक्षशिला, काशी, चंपा, कलिंग, हेमांग, आदि श्रमण केन्द्रों के विकास को संभव बनाया। महावीर इस सोच के सफलतम प्रवक्ता थे। प्रमुख राजा थे।

श्रेणिक बिंबिसार, शतनीक, दशरथ, उदयन, चण्डप्रद्योत
दधिवाहन, जीतशत्रु, प्रसेनजित जीवन्धर, विद्रवाज

इन राजशक्तियों ने श्रमण केन्द्र विकसित किये। गणधरों ने इन केन्द्रों को अपने ज्ञान से सींचा। कालान्तर में सम्राट चन्द्रगुप्त व सम्राट एल खारवेल ने इस धारा को पुनः महत्वपूर्ण राष्ट्रीय आधार दिया।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

समस्त तीर्थस्थानों और संग्रहालयों में अखंडित या खंडित मूर्तियों का आकलन करते हुए श्री शेलेन्द्रकुमार रस्तोगी ने लिखा है कि लटों से पहचाने जाने वाले आदिनाथ व सर्पफणावली से पहचाने जाने वाले पार्श्वनाथ की मूर्तियां देशभर में सबसे अधिक हैं। ईक्ष्वाकु कुल के आदि पुरूष आदिनाथ व उन्हीं की एक शाखा नाग/उरंग वंश के ऐतिहासिक महत्व को स्थापित करने में इस सूत्र को भुलाया नहीं जा सकता।

सैंधव सभ्यता में स्वस्तिक के प्रमाण व मथुरा में देवनिर्मित सुपार्श्वनाथ के स्तूप का प्रमाण मध्यप्रदेश में नाग जाति के ऐतिहासिक व सांस्कृतिक कार्यकलापों के साक्ष्य हैं। नागवंशी पार्श्वनाथ के काल में नागवंशी सुपार्श्वनाथ के स्तूप का पुनरूद्धार होना स्वाभाविक है।

नागवंश/उरगवंश के अधिक से अधिक प्रमाण एकत्रित किये जा सके तो जैन इतिहास सुपार्श्वनाथ तक अवश्य पहुंच जायेगा। सदैव से जैन इतिहासकार इस प्रश्न का उत्तर ठीक से नहीं दे पाते हैं कि सुपार्श्वनाथ और पार्श्वनाथ दोनों के मस्तिष्क पर सर्पफण मंडल क्यों बनाये जाते हैं। संभवतः इसका कारण यह है कि दोनों ही नागवंशी थे और सर्पफण उनका प्रतीक चिन्ह था।

भारत की सांस्कृतिक यात्रा इतनी जटिल है कि श्रमण-वैदिक संदर्भ जहाँ अपनी दार्शनिक पीठिका में अलग हैं वहां उनकी कला अभिव्यक्ति (साहित्य-शिल्प-चित्र-संगीत) में आपस में गले लगी हुई है। बाद में बौद्ध परंपराओं की मिलावट भी इसमें हो गई यद्यपि यह मिश्रण ईसा की प्रथम शताब्दी के बाद ही हो सका।

जैन और वैदिक परंपराओं के मिश्रण का मूल कारण निरंतर साथ रहना, आपसी विवाह संबध और उपनिषदों के प्रवर्तन के साथ श्रमण सोच की ओर झुकाव था। वंश परंपरायें कुछ भी रही हों किन्तु युद्धों व सामयिक व्यवस्था समीकरणों के कारण एक ही वंश में जैन व वैदिक दोनों ही धर्मावलम्बी शासक हुए।

नागवंश की यह परंपरा शिशुनाग (642 ई. पूर्व) के मगध के अधिपती होने के बाद स्पष्ट रूप से ज्ञात नहीं होती है। केवल 467 ई. पू. में शैशुनाग ब्रात्यनन्दि द्वारा विजयवंश (पूर्वनन्दवंश) की स्थापना का संदर्भ मिलता है। पर नागवंश का अस्तित्व बना रहा।

इसके पश्चात् नागों की चर्चा डॉ. जायसवाल ने की है। उनका कहना है कि भारशिव, नंदी और नवनाग एक ही वंश के होते हुए भी पदमावती, कान्तिपुर और मथुरा के नवनागों को नवनाग कहकर पुराणों में उल्लेख किया है। ऐसा लगता है कुषाणवंश का राज्य स्थापित हो जाने से नाग सम्राटों की श्रृंखला बीच में ही टूट गई थी। जिस समयभार शिव वंश के वाकाटक रूद्रसेन और मथुरा में यदुवंशी नाग राज्य कर रहे थे उसी समय टाकवंश के नाग राजा गणपति पद्मावती में राज्य कर रहे थे।

जायसवाल ने गणपतिनाग का समय 310 से 344 ई. माना है। एक संदर्भ ध्यान देने योग्य है कि पद्मावती के महाराज भवनाग के ब्राह्मण सेनापति विन्ध्यशक्ति ने विन्ध्य और पश्चिम में नर्मदा के छोर तक नागों की शक्ति को बढ़ाया। उत्तर में अहिच्छत्र (पांचाल), मथुरा और कौशांबी तक हम नागों का राज्य पाते हैं। नागों ने इन क्षेत्रों पर विजय प्राप्त कर अपना राज्य स्थापित किया था इसकी चर्चा हम पहले कर आये हैं।

गणपति नाग पद्मावती (पवैया) के अंतिम अधीश्वर थे जहाँ पहले से ही नागवंश का आधिपत्य चला आ रहा था। इसकी बहुत अधिक संभावना है कि जनमजेय व उसके वंशजों की गतिविधियों के कारण पद्मावती क्षेत्र में फैले बहुत से नागवंशी वैदिक परंपराओं से जुड़ गये हों। श्रमण परंपरा में यक्षों का समावेश तथा पदमावती से प्राप्त यक्ष मूर्तियाँ ऐसे परिवर्तन का सशक्त आधार बन सकती हैं।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

सन्दर्भ ग्रन्थ -

1. भारतीय इतिहास एक दृष्टि, डॉ. ज्योतिप्रसाद जैन, भारतीय ज्ञानपीठ, दिल्ली
2. आदि पुराण, आचार्य जिनसेन, भाग - 2, भारतीय ज्ञानपीठ, दिल्ली
3. हिन्दु सभ्यता, राधाकुमुदमुखर्जी, राजकमल प्रकाशन, दिल्ली
4. ग्वालियर कलम, लक्ष्मण भांड
5. जैनेन्द्र सिद्धांत कोश, भाग 2, जिनेन्द्र वर्णी, भारतीय ज्ञानपीठ, दिल्ली
6. हरिवंशपुराण, आचार्य जिनसेन, भारतीय ज्ञानपीठ, दिल्ली
7. तिलोयपण्णती, यतिवृषभ (भाग 2), भा. दि. जैन महासभा, कोटा
8. मानक हिन्दी कोश, तीसरा खंड, रामचन्द्र वर्मा, केन्द्रीय हिन्दी निदेशालय, दिल्ली
9. हड़प्पा सभ्यता और वैदिक साहित्य, भगवान सिंह
10. जैन धर्म व कला प्राण ऋषभ, शैलेन्द्रकुमार रस्तोगी, अप्रकाशित पाण्डुलिपि

ऋग्वेद की मनचाही व्याख्याओं और बहुदेव वाद् ने इतिहास के मार्ग को जहाँ प्रशस्त किया वहां उसे अपारदर्शी भी बना दिया। ऋग्वेद पूर्व में सुसंस्कृत भारतवासी थे ही नहीं ऐसी मान्यता वर्षों तथाकथित विद्वानों के मन में बनी रही जबकि सिंधु सभ्यता के अनावृत्त होते ही इसके प्रबल प्रमाण सामने आ गये कि एक अधिक बुद्धिमान - कार्यकुशल समाज का अस्तित्व ऋगवेद की रचनाओं के पूर्व था। इस बात के अभी प्रमाण नहीं मिले हैं कि ज्ञात सिंधु सभ्यता के पूर्व भारतवासियों का जीवन कैसा था? यदि केवल ऋग्वेदीय समाज के सभ्य होने का अहंकार सिंधु घाटी सभ्यता के लोगों ने तोड़ा है तो जिस सभ्यता ने सिंधु घाटी सभ्यता को जन्म दिया उसे नकारना नरवंश के इतिहास को नकारने के समान होगा। विद्याधर जाति, मातंगवंश व नागवंश तो केवल आधार है। इक्ष्वाकुवंश की समस्त उपधाराओं को ढूंढ लिए बिना यह कार्य सुदृढ़ आधार नहीं पा सकेगा। इस कार्य को जारी रखने में जितने भी डाक्टरेट हेतु इतिहास शोध हुए हैं उन्हें अंतिम प्रमाण न मानकर सहयोगी माना जाय तो श्रेयस्कर होगा। इतिहास की पुनर्व्याख्या प्रारंभ हो चुकी है और किसी परिणाम पर पहुंचने के लिए अभी समय लग सकता है। बहुत से उपलब्ध संदर्भ गलत निर्णय पर पहुंचा रहे हैं अत: उनसे निर्णय पर पहुँचने के पूर्व जैन संदर्भों की कसौटी पर उन्हें कसा जाना चाहिए।

सन्दर्भ स्थल

1. आदिपुराण, आचार्य जिनसेन, पर्व क्र. 19, गाथा 91 - 192.
2. धवला, 9/4.1.18/70/90.
3. त्रिलोकसार, गाथा 709.
4. हरिवंशपुराण, 2, श्लोक 22 - 28.
5. मानक हिन्दी कोश, तीसरा खण्ड, पृ. 232 - 233.
6. ग्वालियर कलम पृ. 11, पेरा 1.
7. धवला, गाथा 13 / 5, 5 / 140 / 391 / 7.
8. हड़प्पा संस्कृति और वैदिक साहित्य पृ. 62, लेखक - भगवान सिंह
9. वही, पृ. 63.

प्राप्त - 02.08.02

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

वर्ष - 15, अंक - 4, 2003, 41 - 48

अर्हत् वचन
कुन्दकुन्द ज्ञानपीठ, इन्दौर

प्राणावाय पूर्व का उद्भव, विकास एवं परम्परा

■ आचार्य राजकुमार जैन *

सारांश

प्राणावाय पूर्व में विवेचित विषय को ही वर्तमान में आयुर्वेद संज्ञा दी गई है। प्रस्तुत आलेख में इस ज्ञान के मूल स्रोत, जैनाचार्यों द्वारा इस ज्ञान के आधार पर रचित प्रामाणिक ग्रन्थों का विस्तार पूर्वक विवेचन किया गया है। **सम्पादक**

जैनागम में द्वादशांग के अन्तर्गत बारहवें दृष्टिवादांग के चतुर्दश पूर्व में ''प्राणावाय पूर्व'' का प्रतिपादन किया गया है। इसे वर्तमान में आयुर्वेद के नाम से जाना जाता है।

जैन सिद्धांत के अनुसार विश्व की समस्त विद्याओं और कलाओं की उत्पत्ति आद्य तीर्थंकर भगवान ऋषभदेव से मानी गई है। समस्त विद्याओं - कलाओं ज्ञान - विज्ञान के वे ही आद्य उपदेष्टा हैं तथा विभिन्न विद्याओं के प्रवर्तक हैं। भगवान ऋषभदेव के पहले सर्वत्र भोग भूमि थी जिसमें कल्प वृक्षों का बाहुल्य था। लोगों के सभी मनोरथ उन कल्पवृक्षों से पूर्ण हो जाते थे। अत: उन्हें न तो किसी आधि - व्याधि की चिंता थी और न ही अपनी आजीविका के लिए किसी वृत्ति या व्यवसाय की चिन्ता थी। काल प्रभाव वश शनैः शनै कल्पवृक्षों का ह्रास हो गया और भोग - भूमि का स्थान कर्म भूमि ने ले लिया। परिणाम स्वरूप उदर पूर्ति के लिए लोगों को श्रम का आश्रय लेना पड़ा जिससे समाज में श्रम को प्रतिष्ठा प्राप्त हुई और उसके परिणाम स्वरूप अन्यान्य वृत्तियों का आविर्भाव एवं प्रचलन समाज में हुआ। उन वृत्तियों का अनुसरण या पालन करने के लिए उनसे सम्बन्धित विद्याओं एवं कलाओं का ज्ञान आवश्यक था। श्री ऋषभदेव ने अपने राज्यकाल में इस परिवर्तन का अनुभव किया और उन्होंने ही सर्वप्रथम सामाजिक व्यवस्था के लिए लोगों को प्रेरित किया। इस प्रकार एक व्यवस्था का प्रारंभ हुआ। लोक में शिक्षा एवं विद्या का प्रसार करने के उद्देश्य से उन्होंने सर्वप्रथम अपनी दो पुत्रियों ब्राह्मी और सुन्दरी को क्रमशः लिपि विद्या अर्थात् वर्णमाला तथा अंक विद्या अर्थात् संख्या लिखना सिखाया। इस प्रकार इस युग में ऋषभदेव ने अपनी पुत्रियों के माध्यम से सर्वप्रथम शिक्षा का सूत्रपात कराकर वाङ्मय का उपदेश दिया और वाङ्मय शिक्षा के तीनों अंगों - व्याकरण शास्त्र, छन्द शास्त्र एवं अलंकार शास्त्र की रचना की। पुत्रियों की भांति पुत्रों को भी विभिन्न विद्याओं की शिक्षा देकर उन्हें निपुण बनाया। विभिन्न विद्याओं - कलाओं में अर्थशास्त्र, गन्धर्व शास्त्र, काम शास्त्र, सामुद्रिक शास्त्र, आयुर्वेद, धनुर्वेद, अश्वविद्या, गज विद्या, रत्न परीक्षा, ज्योतिष, शकुन विद्या, मंत्र ज्ञान, द्यूत विद्या, स्थापत्य कला आदि प्रमुख हैं। कालान्तर में इन्हीं विद्याओं का विकास एवं विस्तार जगत् में हुआ।

आयुर्वेद की उत्पत्ति एवं प्रसार के सम्बन्ध में श्री उग्रादित्याचार्य ने जो वर्णन अपने ग्रंथ 'कल्याणकारक' में किया है, तदनुसार अशोक वृक्ष, सुरपुष्प वृष्टि, दिव्य ध्वनि, छत्र, चमर, रत्नमय सिंहासन, भामण्डल और देव दुन्दुर्भि इन अष्ट महा प्रातिहार्य तथा द्वादश विध समाओं से वेष्ठित आदि तीर्थंकर भगवान ऋषभदेव के समवशरण में पहुंच कर भरत

* जैनायुर्वेद अनुसंधान एवं चिकित्सा केन्द्र, राजीव काम्प्लेक्स गली, इटारसी - 461 111 (म.प्र.)

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

चक्रवर्ती आदि नरेशों ने त्रिकरण शुद्धि पूर्वक त्रिलोकीनाथ को नमन कर निम्न प्रकार से पूछा -

''हे भगवन्! प्रथम, द्वितीय और तृतीय काल में जब यहां भोग भूमि की व्यवस्था थी, लोक परस्पर एक दूसरे को स्नेह की दृष्टि से देखते थे और कल्पवृक्षों से उनके सभी मनोरथ पूर्ण हो जाया करते थे, मनुष्य भव में आयु पर्यन्त उत्कृष्ट से उत्कृष्ट सुख भोग कर वे पुण्यात्मा भोग भूमिज जीव मृत्यु के बाद इष्ट सुख प्रदायक स्वर्ग को प्राप्त होते थे। इस क्षेत्र को भोग भूमि का रूप पलट कर कर्मभूमि का रूप मिला। फिर भी उपवाद शैया में उत्पन्न होने वाले देवगण, चरम व उत्तम शरीर को प्राप्त करने वाले पुण्यात्मा, अपने पुण्य प्रभाव से विष, शस्त्रादि से घात होने योग्य शरीर को धारण करने वाले भी बहुत से मनुष्य उत्पन्न होने लगे हैं। उन्हें (त्रिदोष) वात - पित्त - कफ के प्रकोप से महाभय उत्पन्न होने लगती है।''[1]

आगे वे पूछते हैं :-

''हे प्रभो! इस कर्मभूमि में शीत, अतिताप और वर्षा से पीड़ित, कालक्रम से मिथ्या आहार - विहार के सेवन में तत्पर तथा व्याकुल बुद्धि वाले आपकी शरणागत हम लोगों के लिए आप ही शरण हैं अर्थात् रक्षा करने वाले हैं। हे त्रिलोकी नाथ! अनेक प्रकार के रोगों के भय से अत्यन्त दुखी और आहार - औषधि के क्रम को नहीं जानने वाले हम रोगियों के स्वास्थ्य की रक्षा का विधान और उपाय क्या है? वह बतलाने की कृपा करें।''[2]

भगवान आदिनाथ (ऋषभदेव) के समवशरण में पहुंच कर भरत चक्रवर्ती आदि जनों ने करबद्ध रूप से उपर्युक्त प्रकार से निवेदन किया और मनुष्यों को पीड़ित करने वाले रोगों के शमन का उपाय पूछा। भगवान सर्वज्ञ थे, केवलज्ञानी थे, त्रिलोकदर्शी और त्रिकालदर्शी थे। जगत् के कल्याण हेतु उनके मुख से साक्षात् वाग्देवी रूप दिव्य ध्वनि में आयुर्वेद का वह सम्पूर्ण स्वरूप भी विद्यमान था जिसमें मनुष्य के स्वास्थ्य की रक्षा के साथ रोगों के शमन का उपाय भी प्रतिपादित था। समवशरण में बैठे हुए वृषभसेन आदि गणधरों ने उस दिव्य ध्वनि को ग्रहण किया और तत्पश्चात् धृति, स्मृति आदि के वैभव से सम्पन्न मनीषी आचार्यों ने विभिन्न विद्याओं को ज्ञान रूप में प्राप्त कर उसे अपने बुद्धि वैशिष्ट्य के द्वारा विभिन्न शास्त्रों में निबद्ध किया। इस प्रकार मनुष्यों में आयुर्वेद सहित समस्त लौकिक विद्याओं के ज्ञान का प्रसार हुआ।

भगवान की दिव्य ध्वनि का प्रस्फुट भाव तथा तदन्तर्गत वस्तु चतुष्टय का निरूपण करते हुए श्री उग्रादित्यचार्य ने लिखा है :-

''सम्पूर्ण जगत के हित के लिए गणधर प्रमुख वृषभसेन, भरत चक्रवर्ती आदि प्रधान पुरूष भगवान आदिनाथ से करबद्ध निवेदन कर अपने - अपने स्थान पर मौन होकर बैठ गए। तब उस समवसरण में साक्षात् पटरानी के रूप में रहने वाली सरस वाणी दिव्य ध्वनि से युक्त प्रसारित हुई। वह दिव्य ध्वनि इस प्रकार चार भाग में विभक्त करती हुई इन वस्तु चतुष्ट्य के लक्षण, भेद - प्रभेद सहित सम्पूर्ण विषयों का संक्षिप्त रूप से कथन करने लगी जिसने भगवान की सर्वज्ञता को सूचित किया।''[3]

आयुर्वेद शास्त्र का अध्ययन करने से ज्ञात होता है, कि वह कितना विशाल और सुव्यवस्थित शास्त्र है। भगवान् ऋषभदेव के मुखकमल से जब वह दिव्य ध्वनि के रूप में उद्भासित हुआ तब यद्यपि वहां उपस्थित समस्त प्राणियों ने उसे यथावत् रूप से स्वविवेक के अनुसार जान लिया, तथापि, अविकल रूप से उसका ग्रहण साक्षात् गणधर परमेष्ठी ने किया। उन गणधरों द्वारा उस आयुर्वेद का कथन यथावत् रूप से किया गया जिसे

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

निर्मल मतिज्ञान, श्रुतज्ञान, अवधिज्ञान तथा मनःपर्ययज्ञान के धारक परम तपस्वी धर्माचार्यों, मुनियों ने अविच्छिन्न रूप से जान लिया।[4]

इस प्रकार जैन मतानुसार आयुर्वेद का आदि स्रोत आद्य तीर्थंकर भगवान् ऋषभदेव हैं जिनकी दिव्य ध्वनि साक्षात् सरस्वती रूप में अवतरित होकर गणधरों द्वारा ग्रहण की गई। तत्पश्चात् एक लम्बी परम्परा उपलब्ध होती है जिसके माध्यम से विभिन्न विद्याओं - विषयों के साथ - साथ आयुर्वेद का ज्ञान भी सुरक्षित रखा गया। जैन धर्म के चौबीस तीर्थंकरों को यंह ज्ञान अविच्छिन्न और यथावत् रूप में प्राप्त हुआ। इसका मूल कारण यह रहा कि सभी तीर्थंकर 'केवल ज्ञान' प्राप्त करने के कारण सर्वज्ञ थे और उनका समस्त विषयों का ज्ञान सम्पूर्ण, अव्याहत एवं अविच्छिन्न था। अतः आदि तीर्थंकर भगवान् ऋषभदेव के मुख से प्रसूत वाग्देवी का स्वरूप अखण्डित एवं अविकृत रहना स्वाभाविक ही है। यहां पर एक महत्वपूर्ण तथ्य यह भी है कि जिस प्रकार आदि तीर्थंकर भगवान् ऋषभदेव की वाणी विकीर्ण हुई और उसे ''दिव्य ध्वनि'' की संज्ञा दी गई उसी प्रकार अन्य तेइस तीर्थंकरों की वाणी भी विकीर्ण हुई और वह 'दिव्य ध्वनि' कहलाई। संसार का ऐसा कोई विषय अवशिष्ट नहीं रहा जो उस दिव्यध्वनि में समाविष्ट नहीं हुआ हो। प्रत्येक तीर्थंकर की दिव्यध्वनि पूर्व की भांति तत्कालीन गणधरों द्वारा धारण की गई। तत्पश्चात् श्रुत केवली द्वारा उसका उपदेश दिया गया जो अपेक्षाकृत अल्पांग ज्ञानी मुनियों द्वारा सुना गया और तत्पश्चात् उनके द्वारा तद् विषयक विभिन्न शास्त्रों ग्रंथों की रचना की गई।

वर्तमान में धार्मिक ग्रंथों के रूप में आचार शास्त्र के रूप में, नीतिशास्त्र, गणित शास्त्र, ज्योतिष, आयुर्वेद, व्याकरण आदि के रूप में तथा प्रथमानुयोग, करणानुयोग, द्रव्यानुयोग और चरणानुयोग के रूप में तथा इन चारों अनुयोगों के अन्तर्गत समाविष्ट समस्त ग्रंथों के रूप में जो भी वाङ्मय या साहित्य समुपलब्ध है वह सब जैन धर्म के अंतिम तीर्थंकर भगवान महावीर की देशना (दिव्य ध्वनि) से सम्बद्ध है। तीर्थंकर महावीर की दिव्यध्वनि को धारण करने वाले उनके प्रधान गणधर गौतम इन्द्रभूति ने भगवान की देशना को धारण कर उसे द्वादसांग और चतुर्दश पूर्व के रूप में प्रतिपादित किया था। द्वादशांग रूप वह सम्पूर्ण वाङ्मय द्वादशांग श्रुत कहलाता है और उस द्वादशांग श्रुत के पारगामी श्रुतकेवली कहलाते हैं।

श्रुत केवली द्वारा उपविष्ट अन्यान्य विषयों में आयुर्वेद भी समाविष्ट हैं। अतः जिन वीतरागी मुनिजनों ने अन्य विषयों का उपदेश श्रुत केवली से ग्रहण किया उन्होंने अन्य विषयों के साथ आयुर्वेद का भी ज्ञान ग्रहण किया। उनमें से कुछ मुनिप्रवर ऐसे हुए जिन्होंने अन्य विषयों के साथ - साथ आयुर्वेद विषय को भी अधिकृत कर स्वतन्त्र ग्रंथ रचना की। इनमें से बहुत थोड़े से ग्रंथों का उल्लेख या जानकारी मिल पाई है। आयुर्वेद शास्त्र की परम्परा का उल्लेख श्री उग्रादित्याचार्य ने अपने ग्रंथ कल्याण कारक में इस प्रकार किया है -

''जिस प्रकार अन्य तीर्थंकरों (आद्य तीर्थंकर ऋषभदेव के पश्चात् अन्य अजितनाथ आदि महावीर पर्यन्त चौबीस तीर्थंकरों) द्वारा प्रतिपादित सिद्ध मार्ग से चला आया वह आयुर्वेद शास्त्र अत्यन्त विस्तृत, दोष रहित तथा गंभीर अर्थ से युक्त है। यह सम्पूर्ण आयुर्वेद शास्त्र तीर्थंकरों के मुखकमल से अपने आप उत्पन्न होने से स्वयम्भू और अनादि काल से निरन्तर चला आने के कारण सनातन है। यह आयुर्वेद गोवर्धन भद्रबाहु आदि श्रुत केवलियों द्वारा उपविष्ट होने के कारण अन्य वीतरागी श्रुताभ्यासी मुनिजनों द्वारा साक्षात् रूप से सुना गया।''[5]

श्रुत ज्ञान की परम्परा से यह स्पष्ट हुआ है कि वर्तमान में जो भी श्रुत या

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

आगम उपलब्ध है यह अंतिम श्रुत केवली भद्रबाहु द्वारा भणित है। वस्तुत: भगवान् जिनेन्द्र देव जो कुछ जानते हैं वह अनन्त होता है, जो कुछ कहते है वह उसका अनन्तवां भाग जिनवाणी होता है। इसके पश्चात् जो गणधर उसे ग्रहण करते हैं वह उसका भी अनन्तवां भाग होता है, गणधरों से जो प्रति गणधर, उनसे जो श्रुत केवली और उनसे जो वीतरागी मुनि उनसे अन्य आचार्य आदि क्रमश: अनन्तवां भाग ग्रहण करते हैं। वस्तुत: श्रुत केवलियों तक अंगश्रुत अपने मूल रूप में आया। उसके पश्चात् बुद्धिबल और धारणा शक्ति के उत्तरोत्तर क्षीण होते जाने से तथा बहुआयामी उस ज्ञान को ग्रंथ या पुस्तकाकार रूप में किए जाने की परम्परा नहीं होने से वह ज्ञान क्रमश: शनै: शनै: क्षीण होता चला गया।

अन्य विद्याओं की भांति आयुर्वेद शास्त्र भी लोकहितार्थ तीर्थकरों द्वारा प्रतिपादित किया गया है। अत: यह भी धर्मशास्त्र आदि की भांति जिनागम है। जिनागम की अनवरत परम्परा के अनुसार तीर्थंकरों से गणधरों ने, गणधरों से प्रति गणधरों ने, प्रतिगणधरों से श्रुत केवलियों ने, श्रुतकेवलियों से वीतरागी मुनियों ने, वीतरागी मुनियों से अन्य आचार्यों आदि ने आयुर्वेद का ज्ञान उपदेश रूप से ग्रहण कर आद्यन्त जान लिया और तत्पश्चात् लोकहित की भावना से प्रेरित होकर उसे लिपिबद्ध कर ग्रंथ रूप प्रदान किया जिससे शास्त्र या ग्रंथ रूप में कुछ अंशों में ही वह सुरक्षित रह पाया। आयुर्वेद के अनेक ग्रंथ, जिनका उल्लेख विभिन्न आचार्यों ने किया है, काल कवलित होने से लुप्त प्राय: हो गए हैं। श्री उग्रादित्याचार्य मुनि ने अपने ग्रंथ ''कल्याणकारक'' में ऐसे अनेक मुनियों - आचार्यों द्वारा प्रणीत ग्रंथों का उल्लेख किया है जिनके आधार पर उन्होंने अपने ग्रंथ 'कल्याणकारक' की रचना की।

इस सम्बन्ध में एक महत्वपूर्ण तथ्य यह है कि उन्होंने कल्याणकारक में स्पष्टता पूर्वक इस तथ्य को उद्घाटित किया है कि 'आचार्य समन्तभद्र स्वामी ने आयुर्वेद विषय को अधिकृत कर किसी ग्रंथ की रचना की थी जिसमें विस्तारपूर्वक विषय का विवेचन था। अष्टांग संग्रह नामक ग्रंथ का अनुसरण करते हुए मैंने संक्षेप में इस कल्याणकारक ग्रंथ की रचना की है।'[6]

श्री उग्रादित्य के इस उल्लेख से यह असंदिग्ध रूप से प्रमाणित होता है कि उनके काल में श्री समन्तभद्र स्वामी द्वारा विरचित अष्टांग वैद्यक विषयक कोई महत्वपूर्ण ग्रंथ अवश्य ही विद्यमान एवं उपलब्ध रहा होगा।

इसी प्रकार ज्ञान गाम्भीर्य और प्रखर पाण्डित्य धारी श्री पूज्यपाद स्वामी का आयुर्वेद ग्रंथ कर्तृत्व असंदिग्ध है। यद्यपि उनके द्वारा लिखित आयुर्वेदाधारित कोई ग्रंथ या रचना वर्तमान में उपलब्ध नहीं है, अत: कुछ विद्वान उनका आयुर्वेद ग्रंथ कर्तृत्व संदिग्ध मानते हैं। किन्तु ऐसे अनेक उद्धरण और प्रमाण उपलब्ध हैं जो उनके द्वारा आयुर्वेद के ग्रंथ की रचना किए जाने की पुष्टि करते हैं। आचार्य शुभचन्द्र ने अपने ग्रंथ ''ज्ञानार्णव'' में देवनन्दी (पूज्यपाद) को निम्न प्रकार से नमस्कार किया है :-

अपाकुर्वन्ति यद्वाच: कायवाक् चित्तसम्भवम्।
कलंकमग्निनां सोऽयं देवनन्दी नमस्यते॥

जिनके वचन प्राणियों के काय, वाक् (वाणी) और चित्त (मन) में उत्पन्न दोषों को दूर कर देते हैं उन देवनन्दी को नमस्कार है।

इसमें देवनन्दी (पूज्यपाद) के तीन ग्रंथों का उल्लेख सन्निहित है - काय (शरीर) के दोषों को दूर करने वाला वैद्यक शास्त्र, वाग्दोषों (वाणी या वचन के दोषों) को दूर करने वाला व्याकरण ग्रंथ (जैनेन्द्र व्याकरण) और चित्त (मन) के दोषों को दूर करने वाला

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

ग्रंथ - समाधि तंत्र। इनमें प्रथम वैद्यक ग्रंथ उपलब्ध नहीं है, जबकि शेष दोनों विषयों के दोनों ग्रंथ उपलब्ध हैं। अनेक विद्वानों ने इस तथ्य को स्वीकार किया है, कि उपर्युक्त श्लोक में ''काय'' शब्द से यह ध्वनित होता है कि पूज्यपाद स्वामी का कोई चिकित्सा ग्रंथ रहा है।

इसके अतिरिक्त श्री उग्रादित्याचार्य ने अपने ग्रंथ कल्याणकारक की रचना में जिन आचार्यों, मुनिवरों के द्वारा रचित ग्रंथों को आधार बनाया है उनमें श्री पूज्यपाद स्वामी द्वारा रचित शालाक्य तंत्र का भी उल्लेख है।[7] गोम्मट देवमुनि ने भी पूज्यपाद द्वारा वैद्यामृत नामक ग्रंथ की रचना किए जाने का उल्लेख किया है।[8] इसी प्रकार पार्श्व पण्डित ने भी पूज्यपाद स्वामी द्वारा आयुर्वेद के ग्रंथ की रचना किए जाने का संकेत किया है।[9]

इस प्रकार इन उद्धरणों से यह सुस्पष्ट है कि श्री पूज्यपाद स्वामी द्वारा आयुर्वेदाधारित ग्रंथ या ग्रंथों का प्रणयन किया गया था जो उनके उत्तरवर्ती मुनियों के दृष्टिगत थे। आयुर्वेदाधारित ग्रंथ निर्माण की यह परम्परा आगे भी चलती रही और मुनियों आचार्यों ने आयुर्वेद को अधिकृत कर ग्रंथों की रचना की। जिस मुनि प्रवर या आचार्य ने आयुर्वेद के जिस विषय को अधिकृत कर जिस ग्रंथ विशेष का निर्माण किया उसका उल्लेख करते हुए श्री उग्रादित्याचार्य लिखते हैं -

''श्री पूज्यपाद स्वामी ने शालाक्य तंत्र और पात्र केसरी मुनि ने शल्य तंत्र की रचना की। प्रसिद्ध आचार्य सिद्धसेन के द्वारा अगद तंत्र एवं भूत विद्या, दशरथ मुनि के द्वारा काय चिकित्सा, मेघनादाचार्य के द्वारा बालरोगाधारित कौमार भृत्य और सिंह नाद मुनीन्द्र के द्वारा वाजीकरण एवं दिव्यामृत (रसायन) तंत्र का निर्माण किया गया।[10] दुःख का विषय है कि इनमें से कोई भी ग्रंथ आज विद्यमान नहीं है। किन्तु इन ग्रंथों का आधार लेकर जिस ग्रंथ की रचना की गई वह है 'कल्याणकारक' जो लगभग विक्रम एवं ईसा की 9 वीं शताब्दी में लिखा गया। इसके बाद भी जैनाचार्यों द्वारा आयुर्वेद के ग्रंथ निर्माण का कार्य चलता रहा। इस प्रकार प्राणावाय (प्राणावाद) पूर्व की विकास यात्रा सुदीर्घ काल तक हमारे देश में चलती रही।

प्राणावाय पूर्व (जैनायुर्वेद) की यह प्राचीन परम्परा मध्ययुग से पूर्व ही लुप्त हो चुकी थी। क्योंकि प्राणावाय पूर्व परम्परागत शास्त्रों - ग्रंथों के आधार पर अथवा उनके सार रूप में ईसवीय आठवीं शताब्दी के अन्त में दक्षिण भारत के आन्ध्रप्रदेश के प्राचीन चालुक्य राज्य में दिगम्बराचार्य श्री उग्रादित्य ने ''कल्याणकारक'' नामक ग्रंथ की रचना की थी। वर्तमान में यही एक मात्र ऐसा ग्रंथ उपलब्ध होता है जिसमें प्राणावाय पूर्व का अनुसरण करते हुए सम्पूर्ण अष्टांग आयुर्वेद का वर्णन विस्तार से किया गया है। इस ग्रंथ में मुनिप्रवर उग्रादित्याचार्य ने प्राणावाय पूर्व के आधार ग्रंथ की रचना करने वाले पूर्ववर्ती समन्तभद्र, पूज्यपाद स्वामी, प्रभृति आचार्यों और उनके द्वारा लिखित ग्रंथों का उल्लेख किया है। श्री उग्रादित्याचार्य के पश्चात् किसी अन्य आचार्य द्वारा प्राणावाय पूर्व पर आधारित सर्वांग पूर्ण ग्रंथ का विवरण या उल्लेख नहीं मिलता है। यद्यपि चौदहवीं शताब्दी के मुनि यशःकीर्ति द्वारा लिखित 'जगत् सुन्दरी प्रयोग माला' नामक ग्रंथ की जानकारी प्राप्त होती है। यह ग्रंथ अपभ्रंश संस्कृत मिश्रित भाषा में लिखा गया है। इसका उल्लेख स्व. श्री जुगलकिशोर मुख्तार ने अनेकान्त में किया है तथा इस पर कुछ प्रकाश डाला है। इसी प्रकार लगभग ई. सन् की 1360 के आसपास जैन कवि भंगराज के द्वारा लिखित ''खगेन्द्र मणि दर्पण'' नामक ग्रंथ की जानकारी मिलती है। यह ग्रंथ स्थावर विष की चिकित्सा (अगदतंत्र) पर आधारित है। यह ग्रंथ कन्नड़ लिपि में लिखा गया है जिसे मद्रास विश्वविद्यालय द्वारा कन्नड़ सीरीज के अन्तर्गत

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

प्रकाशित किया गया था।

मध्ययुग में प्राणावाय पूर्व की परम्परा समाप्त हो गई थी। इसके कतिपय कारण थे। एक तो यह है कि प्राणावाय या आयुर्वेद का मुख्य विषय चिकित्सा शास्त्र था जिसे दिगम्बर जैन श्रुत परम्परा में लौकिक विद्या के रूप में स्वीकार या मान्य किया गया है। अपरिग्रह महाव्रत का पालन करने वाले दिगम्बर साधुओं के लिए इसे अपनाना या सीखना अभीष्ट नहीं था, क्योंकि उनके लिए लौकिक विद्याएं निष्प्रयोजन मानी जाती थीं। इसके अतिरिक्त भ्रमण शील होने के कारण वे सदैव एक स्थान से दूसरे स्थान पर विचरण करते रहते थे। श्रावक-श्राविकाओं की चिकित्सा करना उनके लिए निषिद्ध था, क्योंकि इसके लिए औषधि तथा अन्य साधन रखना अनिवार्य था जो परिग्रह का कारण बनते। मोह-राग आदि भी इससे उत्पन्न होता और उनकी प्रवृत्ति आत्म हित चिन्तन की अपेक्षा पर हित चिन्तन की ओर उन्मुख हो जाती। अत: सांसारिक गतिविधियों की ओर उन्मुख करने वाली इस प्रकार की प्रवृत्ति उनके लिए हेय थी। संयमशील साधना पूर्ण-तप:पूत साधुओं का जीवन यापन अनुशासित होने से उनका शरीर प्राय: निरोगी होता है और वे दीर्घायु होते हैं जिससे उन्हें औषधोपचार की आवश्यकता प्राय: नहीं होती है, तथापि, दैव वशात् कदाचित् अस्वस्थ होते हैं तो उपवासादि क्रियाओं से वे अनेक रोगों का शमन कर लेते हैं।

ऐसा लगता है कि उत्तर भारत की अपेक्षा दक्षिण भारत विशेषत: कर्नाटक में प्राणावाय पूर्व का प्रचलन अधिक था। क्योंकि दक्षिण भारत में आठवीं शताब्दी के प्राणावाय पूर्व के ग्रंथ अभी भी मिलते हैं, जबकि उत्तर भारत में प्राणावाय प्रतिपादक एक भी ग्रंथ प्राप्त नहीं होता है। इससे प्रतीत होता है कि उत्तर भारत में प्राणावाय पूर्व की परम्परा बहुत पहले ही समाप्त हो गई थी।

आठवीं शताब्दी से तेरहवीं शताब्दी तक एक अन्तराल सा आ गया प्रतीत होता है। क्योंकि इस काल में किसी जैन आचार्य द्वारा प्राणावाय पूर्व अथवा जैनायुर्वेद विषय अथवा चिकित्सा पर आधारित किसी ग्रंथ की रचना किये जाने का कोई संदर्भ या संकेत अथवा प्रमाण नहीं मिलता है। ईसा की तेरहवीं शताब्दी से जैन श्रावकों और यति मुनियों के द्वारा रचित आयुर्वेद के ग्रंथों की जानकारी प्राप्त होती है। कतिपय ग्रंथ भी उपलब्ध होते हैं। किन्तु उन्हें प्राणावाय पूर्व की परम्परा के ग्रंथ कहना युक्ति संगत या समीचीन नहीं होगा, क्योंकि उनमें कहीं भी प्राणावाय के अनुसरण का कोई संकेत या प्रमाण नहीं मिलता है। तेरहवीं शताब्दी और उसके उत्तर काल में जैन श्रावकों और यति-मुनियों द्वारा आयुर्वेद के जो भी ग्रंथ लिखे गये उनमें रोग-निदान, लक्षण चिकित्सा आदि का वर्णन आयुर्वेद के अन्य प्रचलित ग्रंथों की भांति ही है। उनमें से कुछ ग्रंथ मौलिक हैं और कुछ संकलनात्मक। कुछ टीका ग्रंथ भी है जो आयुर्वेद के प्राचीन ग्रंथों की टीका या व्याख्या रूप हैं। ये टीकायें संस्कृत अथवा तत्कालीन प्रचलित हिन्दी या देशी भाषा में हैं। कुछ ग्रंथ पद्यमय भाषानुवाद मात्र हैं। जैन यतियों द्वारा लिखित जो ग्रंथ वर्तमान में उपलब्ध हैं उनमें अधिकांश पद्यमय भाषानुवाद वाले ही हैं।

जैन साधु परम्परा के अन्तर्गत दिगम्बर साधुओं में भट्टारकों और श्वेताम्बर साधुओं में यतियों का आविर्भाव होने के पश्चात् इस प्रकार के लोकोपयोगी साहित्य का सृजन हुआ। यतियों और भट्टारकों ने परम्परात्मक जैन साधुओं की चर्या के विपरीत स्थान विशेष में अपना निवास बना कर जिन्हें उपाश्रय (उपासरे) कहा और वहां निवास करते हुए लोक समाज में चिकित्सा, तन्त्र-मंत्र (झाड़-फूंक) तथा ज्योतिष विद्या के बल पर प्रतिष्ठा प्राप्त की। जैन साधुओं में ऐसी परम्परायें प्रारंभ होने के पीछे तत्कालीन सामाजिक व्यवस्था,

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

परिस्थितियां और कतिपय मान्यतायें कारण भूत थीं। इतर भारतीय समाज में भी नाथो, शाक्तों आदि का प्रभाव लौकिक विद्याओं - चिकित्सा, रसायन जादू टोना, झड़ा - फूंकी, ज्योतिष, तंत्र - मंत्र के कारण विशेष रूप से बढ़ता जा रहा था। ऐसी स्थिति में समाज के सम्मुख अपनी प्रतिष्ठा और सम्मान को बनाये रखने के लिए लौकिक विद्याओं का आश्रय लेना आवश्यक था, ताकि उनका अनुसरण और प्रयोग कर श्रावक वर्ग तथा इतर लोगों में उनका सम्मान जनक स्थान बना रहे। यद्यपि दिगम्बर परम्परानुमायी भट्टारकों ने लौकिक विद्याओं विज्ञान का विशेष आश्रय नहीं लिया, किन्तु श्वेताम्बर परम्परानुयायी यतियों ने लौकिक विद्याओं का आश्रय विशेष रूप से लेकर उनका भरपूर उपयोग किया।

यतियों ने अपने निवास हेतु जो उपासरे बनाये थे वहां श्रावकों के बच्चों को धार्मिक शिक्षा एवं धर्मोपदेश के अतिरिक्त लौकिक विद्याओं की भी शिक्षा दी जाती थी। साथ ही तंत्र - मंत्र, ज्योतिष, चिकित्सा आदि के द्वारा पीड़ित लोगों का उपचार भी किया जाता था जिससे उन उपाश्रयों और वहां रहने वाले यतियों पर लोगों की श्रद्धा एवं विश्वास सुदृढ़ हो जाता था। उन यातियों ने योग, बल और तंत्र - मंत्र की साधना कर अनेक सिद्धियां प्राप्त कर ली थीं तथा चिकित्सा और रसायन के अद्भुत चमत्कारों से जन सामान्य को चमत्कृत कर उन्होंने लोगों को आकर्षित करने और समाज में अपनी प्रतिष्ठा बनाने में भी उन्होंने सफलता प्राप्त की थी।

भट्टारकों का प्रभाव दक्षिण भारत में विशेष रूप से था। उन्होंने आयुर्वेद की विशिष्ट चिकित्सा रसायन में विशेष दक्षता प्राप्त कर उसके माध्यम से समाज में न केवल अपनी प्रतिष्ठा स्थापित की अपितु अपने प्रभुत्व एवं आधिपत्य का भी विस्तार किया। पारद, गन्धक और खनिज द्रव्यों के योग से निर्मित रसौषधियों के द्वारा विशेष रूप से की जाने वाली चिकित्सा के माध्यम से रोगों का रोग दूर करना तथा रोग एवं जरा से जर्जरित शरीर में शक्ति एवं स्फूर्ति का संचार करना रसायन चिकित्सा का मुख्य उद्देश्य है। अत: रसायन चिकित्सा के द्वारा उन्होंने जन सामान्य को प्रभावित एवं आकर्षित किया। रसौषधि, चिकित्सा के चिकित्सीय प्रयोगों को दक्षिण भारत के अन्य चिकित्सकों ने भी अपना कर वहां के जन सामान्य एवं समाज में अपना विशिष्ट स्थान बनाया और अपने वर्ग को सिद्ध सम्प्रदाय के रूप में स्थापित किया। कालान्तर में यह रस चिकित्सा सिद्धों और जैन भट्टारकों के माध्यम से उत्तर भारत में पहुंची। वहां इसका और अधिक विकास, विस्तार एवं प्रसार हुआ जिससे रसौषधि चिकित्सा संबंधी अनेक ग्रंथों की रचना हुई।

इस प्रकार आठवीं शताब्दी तक प्राणावाय पूर्व की परम्परा एवं विकास में दिगम्बर जैन साधुओं एवं आचार्यों का योगदान उल्लेखनीय है तथा तेरहवीं शताब्दी के पश्चात् जैन भट्टारकों, जैन यति और मुनियों के द्वारा आयुर्वेदीय ग्रंथ निर्माण में किया गया योगदान भी उल्लेखनीय है। इनके द्वारा रचित ग्रंथों में से अनेक ग्रंथ आज भी राजस्थान, पंजाब, गुजरात, महाराष्ट्र, कर्नाटक, तमिलनाडु, आन्ध्र के हस्तलिखित ग्रंथागारों में भरे पड़े हैं। दुर्भाग्य से इनमें से अनेक ग्रंथ अप्रकाशित हैं और अनेक अज्ञात हैं तथा और अनेक काल कवलित हो चुके हैं।

सन्दर्भ -

1. प्राग्भोगभूमिषु जना जनितातिरागा: कल्पद्रुमार्पित समस्त महोपभोगा:।
दिव्यं सुखं समनुभूय मनुष्यभावे स्वर्गं ययु: पुनरपीष्टसुखै सुपुण्या:॥

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

अत्रोपपादचरमोत्तम देहिवर्गा: पुण्याधिकास्त्वनप वर्त्य महायुषस्ते।
अन्येऽपवर्त्यपरमायुष एव लोके तेषां महदभय्मभूदिह दोष कोपात्॥

(कल्याणकारक, श्लोक 3 - 4)

2. देव! त्वमेव शरणं शरणागतानामस्माकमाकुलधियामिह कर्म भूमौ।
शीतातिताप हिम वृष्टि निपीडितानां कालक्रमात् कदशनाशनतत्पराणाम्॥
नानाविधामयमेयादति दु:खिताना माहार भेषज निरूक्ति मजानतां न:-।
तत्स्वास्थ्यरक्षणविधानमिहातुराणां का वा क्रिया कथयतामथ लोकनाथ॥

(कल्याणकारक, श्लोक 5 - 6)

3. विज्ञाप्य देवमिति विश्वजगद् हितार्थ तूष्णीं स्थिता गणधर प्रमुखा: प्रधाना:।
तस्मिन् महासदसि दिव्यनिनादयुक्ता वाणी संसार सरसा वरदेव देवी॥
तत्रादित: पुरूषलक्षणमामयानामप्यौष धान्यखिलकाल विशेषणं च।
संक्षेपत: सकलवस्तुचतुष्टयं सा सर्वज्ञसूचकमिन्दं कथयांचकार॥

(कल्याणकारक, श्लोक 7 - 8)

4. दिव्यध्वनिप्रकटितं परमार्थजातं साक्षात्तया, गणधरोऽधिजगे समस्तम्।
पश्चात् गणाधिपनिरूपित वाक्प्रपंचमष्टार्ध निर्मलाधियो मुनयोऽधिजग्मु:॥

(कल्याणकारक, श्लोक 9)

5. एवं जिनान्तर निबन्धन सिद्धमार्गादायात् मनाकुलममर्थगाढम्।
स्वायम्भुषं सकलमेव सन्मतनं तत् साक्षाच्छतं श्रुतदलै: श्रुतकेवलिभ्य:॥

(कल्याणकारक, श्लोक 10)

6. अष्टांगमप्यखिलमत्र समन्तभद्रै: प्रोक्तं सविस्तरवचो विभवैविशेषात्।
संक्षेपतो निगदितं तदिहात्मशक्त्या कल्याणकारकमशेष पदार्थ युक्तम्॥

(कल्याणकारक, परिच्छेद 25, 86)

7. कल्याणकारक, परिच्छेद, 25, श्लोक 84।

8. सिद्धान्तस्य च वेदिनो जिनमते जैनेन्द्र पाणिन्य च।
कल्प व्याकरणाय ते भगवते देव्यालियाराधिंया॥
श्री जैनेन्द्र वचस्सुधारसवरै: वैद्यामृतो धार्यते।
श्री पादास्य सदानमोस्तु गुरूवे श्री पूज्यपादौ मुने:॥

(कल्याणकारक, संपादकीय, पृ. 35)

9. सकलोर्वीनुत पूज्यपादमुनिपं तां पेलद कल्याणकारकदिं देहद दोषमं।
विततवाचादोषमं शद्रुसाधक जैनेन्द्रदिनी जगज्जनदमिथ्यादोषमं।
तत्वबोधकतत्वार्थद वृत्तियिंदे कलेदं कारूण्य दुग्धार्णवं॥

10. शालाक्यं पूज्यपाद प्रकटितमाधिकं शल्यतंत्र च पात्र।
स्वामिप्रोक्तं विषोग्रगहशमनविधि: सिद्धसैनै: प्रसिद्धै:॥
काये या सा चिकित्सा दशरथ गुरूभिर्मेघनादै: शिशूनां
वैद्यं वृष्यं च दिव्यामृतमपि कथितं सिंहनादै मुनीन्द्रै:॥

(कल्याणकारक, परिच्छेद 25, श्लोक 84)

प्राप्त : 08.08.2002

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

वर्ष - 15, अंक - 4, 2003, 49 - 52

अर्हत् वचन
कुन्दकुन्द ज्ञानपीठ, इन्दौर

सुदीर्घ जिन परंपरा में तीर्थंकर महावीर

■ रमेश जैन *

सारांश

प्रस्तुत आलेख में जिन परम्परा (जैन धर्म) की प्राचीनता एवं उसके विश्वव्यापी सन्दर्भों की चर्चा की गई है। **सम्पादक**

भारत, विश्व में, प्राचीनतम सांस्कृतिक विरासत वाला देश माना जाता है। संसार की महानतम सभ्यताओं में भारतीय सभ्यता का अपना विशिष्ट स्थान है। यह विशिष्टता मात्र उसकी प्राचीनता पर आधारित नहीं है और न ही भौगोलिक दृष्टि से एक विशाल भू-भाग पर फैले होने के कारण उसकी विशिष्टता पहचानी गई है बल्कि इस विशिष्टता का श्रेय भारतीयों की अप्रतिम मानवीय दृष्टि और अद्भुत आध्यात्मिक भाव बोध को जाता है। सन्तुलित, व्यावहारिक और विलक्षण सामाजिक समझ और नपा तुला वैज्ञानिक व्यक्ति व्यवहार भारतीय चिन्तना की अलग पहचान को बनाते हैं।

प्रवृत्ति मार्ग एवं निवृत्ति मार्ग की दो स्पष्ट परंपराएं

इस भारतीय जीवन दृष्टि का विकास दो स्पष्ट वैचारिक परंपराओं से गुजरकर समृद्ध हुआ है। इनमें से एक को कहा जाता है, प्रवृत्ति मार्ग, जिसे वैदिक अथवा ब्राह्मण परंपरा के रूप में पहचाना जाता है। दूसरी परंपरा को निवृत्ति मार्ग नाम दिया जाता है। निवृत्ति मार्ग को ही श्रमण परंपरा नाम से भी पहचाना जाता है और यह श्रमण परंपरा ही जैन, बौद्ध और प्राचीन शैव सम्प्रदायों के रूप में फलीभूत होती है। निवृत्ति मार्गी जैन परंपरा जिन नाम से पहचाने जाने वाले व्यक्तियों द्वारा पोषित हुई थी जिन्हें तीर्थंकर नाम से भी सम्बोधित किया जाता है।

जिन परंपरा के इतिहास के विषय में मिथ्या धारणाएँ

जैन साहित्यकारों के मतानुसार कुल 24 जिन अथवा तीर्थंकर वर्तमान अवसर्पिणी काल अथवा चौबीसी में हुए थे और महावीर (वर्द्धमान) उनमें से अंतिम थे। जैन परंपरा के अनुसार महावीर का 2500 वाँ निर्वाण दिवस ईस्वी सन् 1974 में मनाया जा चुका है। अतः कहा जा सकता है कि जैन धर्म की प्राचीनता के विषय में एक अवधारणा हमें खुद जैन साहित्य से प्राप्त होती है और महावीर (वर्द्धमान) उनमें से अंतिम थे। इस अवधारणा के अनुसार मानव समाज का इतिहास करोड़ों वर्षों में फैला हुआ बताया जाता है और महावीर से पहले हुए 23 तीर्थंकर अपनी स्वयं की करोड़ों वर्षों की आयु व्यतीत करते हुए करोड़ों (कोटा कोटी) वर्षों के काल्पनिक विस्तार की ओर इंगित करते हैं।[1] इस मत के विपरीत बहुत से इतिहासकार पश्चिमी इतिहास धारणा का अंधानुकरण करते हुए महावीर को ही जैन धर्म का प्रवर्तक सिद्ध करने लगते हैं।[2]

जिन परंपरा के इतिहास की सच्ची समझ की आवश्यकता

उपरोक्त दो विपरीत धारणाओं से अलग एक तीसरी निष्पक्ष इतिहास प्रवृत्ति भी

* वास्तुकला एवं नियोजन विभाग, मौलाना आजाद प्रौद्योगिकी महाविद्यालय, भोपाल - 462 007 (म.प्र.)

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

अध्येताओं में देखने को मिलती है। इनमें अनेक प्रसिद्ध भारतविदों के नाम गिनाए जा सकते हैं। इनमें से कुछ प्रमुख नाम हैं आर.पी. चंदा[3], एच.एम. जानसन[4], आर.सी. मजूमदार[5], फादर एच. हेरास[6] , फादर ई. पोकॉक[7] , सर्वपल्ली डॉ. राधाकृष्णन[8] , डॉ. अल्ब्रेट बेवर[9] इत्यादि।

सामान्यत: इन विद्वानों द्वारा स्वीकारा जाता है कि जिन परंपरा महावीर के काल से पहले भी विद्यमान थी। उसका विस्तार हड़प्पा संस्कृति से प्राप्त अवशेषों में आसानी से ढूँढा जा सकता है।[10] इस प्रकार उनमे मत में जिन परंपरा संसार की प्राचीनतम धर्म परंपराओं की श्रेणी में स्थापित होती है जो पिछले हजारों वर्षों से अजस्र प्रवाहित हैं।

वर्तमान लेखक ने अपने शोध पत्र - ''हड़प्पा की मोहरों पर जैन पुराण और आचरण के संदर्भ''[11] में स्थापित करने का प्रयास किया था कि हड़प्पा की संस्कृति की कला में यथेष्ट देखने को मिलता है। इसके अतिरिक्त दो विश्वप्रसिद्ध भारतविदों का संदर्भ देते हुए संभावना व्यक्त की थी कि जिन परंपरा भारत की भौगोलिक सीमाओं के पार, पश्चिमी जगत के दो प्रसिद्ध सांस्कृतिक केन्द्रों में उपस्थित दिखती है। सुमेर कालीन मैसोपोटामिया, और पुरातिहासिक यूनान जैसे केन्द्रों में न सिर्फ यह संस्कृति विद्यमान रही होगी बल्कि उन विद्वानों के मतानुसार वहाँ के विकास में उनका मूलगामी सहभाग भी रहा होगा।

जिन परंपरा की विदेशी संस्कृति में उपस्थिति

राजर्षि की मूर्ति

तीर्थकरों द्वारा स्थापित श्रमणिक जीवनधारा के लिए जैन शब्द भारतीय भाषाओं में प्रचलित है। यद्यपि इस शब्द के प्रचलन की ऐतिहासिकता पर व्यक्तिगत स्तर पर काम करना अभी शेष है। जिन शब्द इसी जैन शब्द का मूल स्वरूप है और लम्बे समय से जैन धर्म के साधुओं के लिए प्रयुक्त होता रहा है। इसे क्या मात्र संयोग ही माना जाए कि यह शब्द जिन अथवा जिन्न अरबी भाषा में भी पाया जाता है और एक ऐसे व्यक्तित्व के लिए प्रयुक्त होता है जो एक तैजस योनि, भूत, प्रेत, आसुरी बल पौरूषवाला हो। अत: यदि इसे मात्र संयोग नहीं मानें तो इस शब्द का इतिहास अरबी भाषा में इस्लाम धर्म के प्रादुर्भाव से पूर्व के काल से गुजरते हुए सुमेरी काल के मैसोपोटामियाई इतिहास से जुड़ता दिखता हैं। उस काल में वहाँ दिगम्बरत्व को आदर्श पवित्रता के भाव से जोड़ा जाता था और मंदिरों में ऊँचे पदस्थ पुजारी सभी अनुष्ठानों को संपन्न कराते समय नग्न अवस्था में आ जाते थे। इसी प्रकार वे ऋषभ देव की कुल परंपरा के समान व्यक्तित्व वाली मूर्तियाँ बनाते थे और संभवत: उनकी पूजा भी करते थे। हड़प्पा संस्कृति एवं सुमेर मूलक मैसोपोटामियाई संस्कृति के घनिष्ठ संबंधों का एक अकाट्य प्रमाण वहाँ पाए जाने वाले दो मूर्ति शिल्प हैं। उनमें से एक है मोहन-जोदड़ों से प्राप्त तथा कथित राजर्षि की मूर्ति। बाँए कंधे के ऊपर से शॉल लपेटे इस मूर्ति के माथे पर एक पट्टा बंधा है जिसके अगले हिस्से में ''वृत के बीच में बिन्दु'' उकेरा गया है। और यही चिन्ह उस दूसरी मूर्ति के माथे पर भी उकेरा हुआ पाया जाता है जो सुमेर काल के मैसौपोटामिया के किसी नगर से पुरातात्विक उत्खनन से प्राप्त हुई थी। कहीं यह चिन्ह भी ''अक्ष'' का ही एक प्रतीक तो नहीं है? अर्थात्

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

अक्ष शब्द का एक और अर्थ विस्तार (तीसरी आँख)।

सूर्यवंशी इक्ष्वाकु

वर्तमान लेखक ने अपने हड़प्पा की लिपि से संबंधित शोध कार्य के दौरान इस लिपि के एक चिन्ह को ''अक्ष'' की संज्ञा दी है।[17] और पाया है कि शब्द हड़प्पा की संस्कृति में अत्यंत महत्वपूर्ण स्थान रखता है। यह एक बहुआयामी शब्द है। यद्यपि प्रारंभ में मात्र ऐसा समझा गया था कि इस शब्द का उपयोग एक यंत्र के नाम के रूप में किया जाता था। जो एक स्तम्भनुमा यंत्र है और हड़प्पा की 'एक श्रृंगी जीव' (युनीकार्न) वाली सैकड़ों मोहरों पर उस जीव के चित्र के समक्ष उत्कीर्णित पाया जाता है। एक स्तंभ या छत्र के अतिरिक्त इस ''अक्ष'' शब्द का अर्थ वैदिक भाषा में अश्व भी संभावित दिखता है।[18] अतः उस स्थिति में स्वयं 'एक श्रृंगी जीव' भी ''अक्ष'' हो सकता है। यह एक अत्यंत महत्वपूर्ण संभावना है क्योंकि ऐसी कल्पना की जा सकती है कि इसी शब्द ''अक्ष'' से बाद में इक्ष्वाकु विरूद्ध की संकल्पना की गई होगी। इक्ष्वाकु विरूद्ध भारतीय परंपरा में सूर्यवंशियों के उद्भव से सरोकार रखता है।[19] महाभारत की कथानुसार अश्विनी कुमारों के अंश से उत्पन्न कुंती के दो पुत्रों :- 1. नकुल एवं (2) सहदेव के नामों में सूर्य तथा चन्द्र के नाम पर प्रतिष्ठित राजवंशों के मूलभाव को परखा जा सकता है -

नकुल - नर्कुल (सरकण्ड़) - नर / सर वंश अर्थात इक्ष्वाकु या सूर्यवंश

सहदेव - समदेव अर्थात् सोमदेव या चन्द्रवंश

यहाँ यह उल्लेखनीय हो जाता है कि इक्ष्वाकु वंश की स्थापना प्रथम तीर्थंकर ऋषभदेव से आरंभ हुई मानी जाती है।[20]

प्राचीन अंतर्राष्ट्रीय संस्कृति शिक्षकों की पहचान की आवश्यकता

कितनी अद्भुत बात है कि सभी पाश्चात्य विद्वान मिश्र में ई.पू. 18 वीं शताब्दी में हिक्सास नामक शासकों के रूप में और उनसे भी बहुत पहले मिश्र के प्रारम्भिक काल में विदेशी सभ्य आगंतुकों की बात करते हैं। इसी प्रकार वे मैसोपोटामिया (वर्तमान इराक) में सुमेरी लोगों को, लगभग 3000 ई.पू. में, बाहर से आने वाले संस्कृति शिक्षकों के रूप में पहचानते हैं और इसी क्रम में पश्चिमी एशिया (आधुनिक लेबनान) में फिनीशियनों (= पाणियों?) के बाहर से आगमन को स्वीकारते हैं मगर उनके मूलस्रोत के प्रश्न को लगभग अनछुआ छोड़ देते हैं। रामचंद्र जैन ने इन सभी देशों की संस्कृतियों का अध्ययन करके उनमें जिन धर्म से मेल खाते हुए मूल सांस्कृतिक गुणों की उपस्थिति की ओर इंगित किया है।[21] इस ओर विद्वद् समाज का ध्यान जाने की आवश्यकता है।

जिन परंपरा के अंतिम मार्गदर्शक, महावीर

महावीर निर्विवाद रूप से जैन सम्प्रदाय के अंतिम तीर्थंकर माने जाते हैं। कुछ लोगों द्वारा उन्हें जैन धर्म के पाँच मूल व्रतों (1) अहिंसा (2) अमृषा (3) अचौर्य (4) अपरिग्रह (5) ब्रह्मचर्य में से पांचवें (ब्रह्मचर्य) पर जोर देने वाले जिन कहा जाता है। उन्हें दिगंबरत्व की अनिवार्य शिक्षा, अपने अनुयायी साधुओं के लिये, देने वाला पहला तीर्थंकर भी बताया जाता है।[22] मगर मेसोपोटामिया और हड़प्पा की संस्कृतियों के उपरोक्त उदाहरणों से स्पष्ट होता है कि संभवतः वे दिगंबरत्व की प्राचीन परम्परा के मात्र पोषक थे, आविष्कारक नहीं, प्रणेता नहीं। पाँचों सिद्धान्त एवं दिगम्बरत्व अत्यन्त प्राचीन काल से ही प्रवाहित हैं। उन्होंने तो मात्र उन्हें प्रचारित एवं व्याख्यायित किया है।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

सन्दर्भ ग्रंथों की सूची -

1. जैनेन्द्र सिद्धान्त कोश, जिनेन्द्र वर्णी, भारतीय ज्ञानपीठ, नई दिल्ली, पाँचवा संस्करण 1996
2. डा. आर.एस. शर्मा, एन.सी.ई.आर.टी. द्वारा प्रकाशित इतिहास विषयक पुस्तकों के लेखक।
3. आर.पी. चंद्रा, माडर्न रिव्यू, अगस्त 1932, पृष्ठ 155 - 160
4. हेलेन एम. जोनसन; त्रिषष्ठिशलाकापुरुषचरित्र; 1931; गायकवाड ओरिएण्टल इन्स्टीट्यूट, बड़ोदा, अंक 1, पृष्ठ 138 - 139, 150 - 156
5. आर.सी. मजूमदार; वेदिक एज; हिस्ट्री एण्ड कल्चर ऑफ द इण्डियन प्यूपल, प्रथम भाग, भारतीय विद्याभवन, मुम्बई; 176 - 177
6. फादर एच. हेरास; स्टडीज इन द प्रोटो - इण्डो - मेडीट्रेनियन कल्चर, भाग - 1, 1953, इण्डियन हिस्टोरिकल रिसर्च इन्स्टीट्यूट, मुम्बई, पृ. 224
7. फादर ई. पोकॉक ; इण्डिया इन ग्रीस; 1972; ओरिएण्टल पब्लिशर्स, दिल्ली - 110 006
8. सर्वपल्ली डॉ. राधाकृष्णन, इण्डियन फिलॉसफी, भाग - 1
9. डॉ. अल्ब्रेट बेवर, इण्डिया एन्टीक्वेरी, भाग - 3, पृष्ठ - 177
10. आर. सी. मजूमदार, वेदिक एज; पृ. 176 - 177
11. डॉ. रमेश जैन, हड़प्पा की मोहरों पर जैन पुराण और आचरण के संदर्भ; अर्हत् वचन, वर्ष - 12, अंक - 4, अक्टूबर 2000, पृ. 9 - 16
12. फादर एच. हेरास, 1953 पृ. 224
13. फादर ई. पोकॉक, 1972
14. वृहद् हिन्दी कोश;, भारतीय ज्ञानपीठ प्रकाशन, नई दिल्ली।
15. वही
16. फादर एच. हेरास 1953 पृ. 226
17. डॉ. रमेश जैन, पोलिटी ऑफ द हड़प्पन कंट्री बेस्ड ऑन सील्स रीडिंग्स विद अक्ष; जर्नल ऑफ द एपीग्राफीकल सोसाइटी ऑफ इण्डिया, मैसूर; अंक 25; 1999 पृ. 124
18. वैदिक इण्डैक्स (हिन्दी), मैकडौनेल और कीथ; चौखम्बा विद्यालय, वाराणसी - 1, 1962
19. जैनेन्द्र सिद्धांत कोश, 1996
20. वही
21. रामचन्द्र जैन, द वे फोर्मुलेटर ऑफ प्लैनेटरी स्प्रीचुएलिटी, णाणसायर, ऋषभ अंक, दिसम्बर 1994, अरिहन्त इन्टरनेशनल, नई दिल्ली, पृ. 345 - 363
22. डॉ. आर. एस. शर्मा, प्राचीन भारत, कक्षा 11 वीं की पाठ्य पुस्तक, एन.सी.ई.आर.टी., नई दिल्ली।

प्राप्त : 19.02.02

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

Vol. 15, No. 4, 2003, 53-73

ARHAT VACANA
Kundakunda Jñānapītha, Indore

THEORIES OF INDICES AND LOGARITHMS IN INDIA FROM JAINA SOURCES*

■ Dipak Jadhav **

ABSTRACT

This paper shows that the Jaina school of Indian mathematics developed theory of indices in requisite structure through certain ideas such as square, cube, successive squaring, act of lifting a number to its own power etc. The similar case is with Jain theory of logarithms. The laws of indices had been transformed into the laws of logarithms in India at least six centuries earlier than in abroad.

1. INTRODUCTION

The Jaina school of Indian mathematics attached great importance and took keen interest in the study of indices and logarithms. Amongst its vast literature those that are found as sources from this point of view are the *Uttarādhyayana-sūtra* (300 B.C. or earlier), *Bhagavatī-sūtra* (300 B.C.), *Anuyogadvāra-sūtra* (2-5th century A.D.), *Tiloyapaṇṇati* of *Yativṛsabha* (some date between 473 A.D. and 609 A.D.), *Pāṭīganita* of *Śrīdhara* (c. 799 A.D.), *Dhavalā* commentary of *Virasena* (c. 816 A.D.) on the *Ṣaṭkhaṇḍāgama* of *Puṣpadanta* and *Bhūtabalī* (1-2nd century A.D.), *Gaṇita-sāra-saṁgraha* of *Mahāvīra* (c. 850 A.D.), *Jambū-dīva-paṇṇatti-saṅgaho* of *Padmanandi* (c. 977 A.D.), *Gommaṭasāra-Jīvakāṇḍa* and *Trilokasāra* of *Nemicandra* (c. 981 A.D.) and so forth.

The present paper is aimed at

[a] making a special study on subject in hand,

[b] presenting its critical assessment and

[c] creating an awareness in the mind of young mathematics students that subject in hand is not merely an amalgation of techniques and rules but is a growing organism.

In this connection, the articles of B.B. Datta (pp. 29-30), H.R. Kapadia (pp. 24-25), A.N. Singh (pp. 5-8 and 11-12), L.C. Jain (1958, pp. 22 and 54-62, 1976, pp. 86-92 and 1982, pp. 28-30 and p. 51), C.N. Srinivasiengar (pp. 24-25), T.A. Sarasvathiamma (p. 64), M.B.L. Agrawal (pp. 79-82 and 88), A.K. Bag (pp. 54-56), N.C. Jain Shastri (pp. 364-366), H.B. Jain

* Except for a few minor changes, this paper was presented in International Conference on History of Mathematical Sciences, held during December 20-23, 2001 at Delhi.

** Lecturer in Mathematics, J.N. Govt. Model H.S. (Residential) School, Barwani-451551 India.

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

(pp. 82-84), B.S. Jain (pp. 46-47), Anupam Jain (pp. 218 and 278-279) and so forth are noteworthy.

For modern theories of indices and logarithms, vide Bose, Smith (pp. 513-523), Cajori (pp. 140 and 149-152), Hooper (pp. 169-193) and so forth.

2. ON THEORY OF INDICES

For any real number 'a' and a positive integer 'n', we define the n^{th} power of 'a', notationally a^n, as

$$a^n = a.a.a.....a \text{ (n times)}$$

Then 'a' is called the base and n is called the index of the n^{th} power of 'a'. The word 'index' was used, in 1586 A.D., by Schoner while Michael Stifel (1486?-1567) had used the word 'exponent' for the same purpose.[1]

[2.1] In the first section, we shall show that the principal laws of indices were known to the Jaina school of Indian mathematics.

If m and n are integral or fractional and $m > n$, then for a, $a \neq 0$

$$a^m.a^n = a^{m+n}$$

$$a^m \div a^n = a^{m-n}$$

$$(a^m)^n = a^{mn}$$

and

$$(a^m)^{1/n} = a^{(m \div n)}.$$

About these principal laws of indices, the Jaina school of Indian mathematics does speak but not formally. However, they can be corroborated by means of technical terms, statements and instances that occur in the above mentioned sources.

[2.1.1] Technical Terms

The Jaina school of Indian mathematics began with the two terms : *varga* and *ghana* and went far with them as it is quite clear from the Table-A.

The school expressed powers greater than 3 again in terms of *varga* and *ghana* by employing the multiplication law of indices

$$(a^m)^n = a^{mn},$$

vide Table-A.

Actually, this law is the Jaina mode of indicating power of a number. The mode is capable to indicate all possible even powers but can not indicate all possible odd powers except such as the ninth *(ghana-ghana)*, twenty seventh *(ghana-ghana-ghana)* and so on. This is why we do not find such names

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

for the fifth, seventh, eleventh and other odd powers in any canonical work of the ancient Jainas.

To represent very large numbers by the Jaina mode is very long, slow, tiresome and clumsy. For instance, a^{128} will be expressed as the *varga - varga - varga - varga - varga - varga - varga* of a or notationally

$$((((((a^2)^2)^2)^2)^2)^2)^2.$$

By putting ordinal number of squaring, this was made short thus : the seventh *varga* (square) of a or notationally a^{2^7} ; vide DVL-III, p. 254 where 2^{2^7} is given.

In this connection, A.N. Singh (p.7) followed by L.C. Jain (1982, pp. 29 and 51) opines that

[a] the consideration of the successive squaring was certainly inspired by duplation and

[b] duplation must have been current in India before the advent of the place value numerals.

Here we should turn our mind to the fact that the operation of duplation was considered important when the place value numerals were unknown. We do not find any trace of the operation in India. But it was considered to be very important by the Egyptians and was recognized as such in their works on arithmatic.[2]

By the way, it is still to be investigated in what way the process of the inspiration might have been held.

In a similar manner, the Jaina school of Indian mathematics was also conversant with the fractional indices as it is quite clear from the Table-B wherein the division law,

$$(a^m)^{1/n} = a^{(m \div n)}$$

can be sought.

[2.1.2] Statements

In the AS, we meet statements such as

[a] मणूसाणं ....., अहवणं छट्ठो वग्गो पंचमवग्गपडुप्पणो, अहवणं छण्णउतिछेयणगदाइरासी, ... (v.427, p.349)

the total number of developable human souls is equal to a number obtained by multiplying the sixth square (of 2) by the fifth square (of 2) or to a number that can be divided (by 2) ninety six times ; expressly

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

$$2^{2^6} \cdot 2^{2^5} = 2^{96}$$

or $$2^{64} \cdot 2^{32} = 2^{96}.$$

(cf. also DVL - III, p. 253)

[b] and ..... बितियवग्गमूलं ततियवग्गमूलपडुप्पण्णं, अहवणं ततियवग्गमूलघणप्पमाणमेत्ताओ .....

(v.426, p. 356)

the second square - root multiplied by the third square - root, or the cube of the third square - root ; expressly

$$a^{\left(\frac{1}{2^2}\right)} \cdot a^{\left(\frac{1}{2^3}\right)} = \left(a^{\left(\frac{1}{2^3}\right)}\right)^3$$

or $$a^{1/4} \cdot a^{1/8} = a^{3/8}.$$

The above selected statements are conclusive to show that the Jaina school of Indian mathematics knew the addition law of indices,

$$a^m \cdot a^n = a^{m+n}.$$

Archimedes (287 B.C. - 212 B.C.) made use of this addition law but without its specific mention.[3] (cf. Smith, pp.5 and 518)

[2.1.3] Instances - The instances of the use of the laws of indices are numerous in the Jaina school of Indian mathematics. Here we are interested only to show that the subtraction law :

$$a^m \div a^n = a^{m-n}$$

was known to the school and therefore we select an interesting and popular instance as follows :

छट्ठवग्गेण सत्तमवग्गे भागे हिदे छट्ठवग्गो आगच्छादि।

(DVL - III, p. 254)

The seventh square (of 2) divided by the sixth square (of 2) gives the sixth square (of 2).

Expressly,

$$2^{2^7} \div 2^{2^6} = 2^{2^6}.$$

In particular, the law

$$a^{m^n} \div a^{m^{(n-1)}} = a^{(m-1)m^{(n-1)}}$$

and if m = 2,

$$a^{2^n} \div a^{2^{(n-1)}} = a^{2^{(n-1)}}$$

can be inferred from the above instance.

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

[2.2] In the second section, we shall show that the Jaina school of Indian mathematics had

[a] an idea of evaluation of the n^{th} power of a number and

[b] an exclusive idea of the act of lifting a number to its own power.

[2.2.1] The Method for evaluating a^n

In context of finding the sum of a geometric progression, Mahāvīra (c. 850 A.D.) gives a method[4] for evaluating a^n, when n is any positive integer, as follows :

[a] If n is even, it is divided by 2 and a zero is put is a separate column, and if n is odd, unity is subtracted from it and unity is put in the column. The process is repeated till zero is obtained in the end.

[b] In the column, the lowest term is always unity. It is multiplied by a and we get a. If there is zero above unity, this a is squared and if there is another unity, it is multiplied by a again. The process is continued till the highest term is disposed.

In this way, a^n is evaluated.

If n = 12, we shall have

12 even	0	$(a^6)^2 = a^{12}$
12 ÷ 2 = 6 even	0	$(a^3)^2 = a^6$
6 ÷ 2 = 3 odd	1	$(a^2).a = a^3$
3 - 1 = 2 even	0	$(a)^2 = a^2$
2 ÷ 2 = 1 odd	1	1.a = a
1 - 1 = 0	the end.	

This is what is known as the multiplication-square *(guṇana-vargaja)* process. It was known to *Piṅgala* (c. 200 B.C.) long before *Mahāvīra* (c. 850 A.D.) and *Śrīdhara* (c. 799 A.D.) and had been used by him in his *Chandaḥ-sūtra* (Rules of Meters)[5] for finding 2^n.

[2.2.2] *Vargana-samavargana*

The ancient philosopher Jainas have discussed cosmological system and

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

karmic system in their canonical texts with the help of very gigantic numbers or infinite numbers. In order to treat such numbers and give them compact expression, they developed a powerful operation called *vargana-samavargana*. The process of the operation occurs in the DVL.[6] Some other references are the TP (vv. 4, 310-313, pp. 89-94) and TLS (v. 48, p. 46).

It is composed of the following three operations.

[a] ***Viralana* (Distribution) -** The *viralana* (V) of a number means to distribute the number into its unities.

For instance,

$$V(a) = I \quad I \quad I \quad I \quad \ldots\ldots\ldots \text{ a times}$$

where $a > 1$.

[b] **Deya (Substitution) -** The *deya* (D) of a number means to substitute the number in the place everywhere in the distribution of the number.

For instance,

$$D[V(a)] = a \quad a \quad a \quad a \quad \ldots\ldots\ldots\ldots\text{a times.}$$

[c] ***Guṇana* (Multiplication) -** The *guṇana* (G) means to multiply mutually all the substitutes.

For instance,

$$G[D(V(a))] = a.a.a.a \ldots\ldots\ldots\text{a times.}$$

The result thus obtained is simply called *vargita-samavargita* (abbreviated as VSV) of the number. In a modern style, we can write the same as

$$VSV\ (a) = a^a.$$

a^a is called the first *vargita-samavargita* (or 1 VSV) of the number 'a' when the operation of the *vargita-samavargita* is to be repeated to successive orders. Further, we have

$$2VSV\ (a) = (a^a)^{(a^a)}$$

$$3VSV\ (a) = \left[(a^a)^{(a^a)}\right]^{\left[(a^a)^{(a^a)}\right]}$$

etc.

The operation can be repeated to various orders but the DVL does not contemplate its application more than the order three.

L.C. Jain (1958, pp. 9 and 59 and 1982, p. 30) seems to be the first mathematician to have denoted the *vargita-samavargita* of a number

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

by the symbol ¯1 in a following manner.

$$\overline{a1}^1 = a^a,$$

$$\overline{a1}^2 = \overline{\overline{a1}^1|}^1,$$

$$\overline{a1}^3 = \overline{\overline{a1}^2|}^1 \qquad \text{etc.}$$

It is an exclusive, original and unique contribution of the Jaina school of Indian mathematics to mathematics. Moreover, it is independent of the Jaina mode of indicating powers of a number.

It yields very gigantic numbers in less than no time. Here is the fact that

$$\overline{21}^3 = 256^{256},$$

a number higher than the total number of particles (which is of the order 10^{82}) in the universe.

It leads to form very fastly increasing sequences.

For instance,

$$2, 2^2, 4^4, 256^{256}, \ldots\ldots\ldots\ldots$$

Before the subject of theory of logarithms is taken up, we would like to make a remark that the Jaina school of Indian mathematics advanced theory of indices in requisite structure through the ideas that have been mentioned in the just gone pages.

3. ON THEORY OF LOGARITHMS

If for a positive number a, $a \neq 1$

$$R = a^r$$

then r is called the logarithm of R to the base a, notationally

$$\log_a R = r$$

where log is taken as the abbreviation of the logarithm.

It is called the index definition of logarithm. Only this one is known to today's mathematics students. The nearly same definition, the Jaina school of Indian mathematics speaks but to the particular base.

$$\log P + \log Q = \log PQ$$

$$\log P - \log Q = \log (P \div Q)$$

$$q.\log P = \log P^q$$

These are the principal laws of logarithms. In the late tenth century,

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

the Jaina school of Indian mathemtics brings out the general and formal statements of these laws but to the particular base.

In modern time, John Napier (1550-1617) and Jobst Bürgy (1552-1632) have discovered logarithms, but through an entirely different line of approach. The former's approach was geometric as the latter's was algebric.

[3.1] *ARDHACHHEDA*

Nemicandra defines *'ardhachheda'* as follows -

दलवारा होंति अद्धछिदी।

(TLS, v.76, the last quarter, p.69)

The number of times that (a particular rāśi) is successively halved (to get the number reduced to unity) is the *addhachidi* (*ardhachheda* in Sanskrit) of the number.

That is to say that if

$$R = 2^r$$

then, r is called the *ardhachheda* of R. Denoting the *ardhachheda* by the abbreviation AC, we can write the above as

$$AC(R) = r.$$

For instance,

$$AC(16) = 4.$$

H.R. Kapadia (p. XXV) is the first scholar to have brought to our mind the fact that

$$AC(R) = \log_2 R.$$

A.N. Singh (p.7) followed by L.C. Jain (1958, p.22), A.K. Bag (p.55), H.B. Jain (p.83), Navjyoti Singh (pp. 218-219, 26 and 31-32) and so forth is the first mathematician who have recognized the above fact.

The term *'ardhachheda'* is derived from the two words *'ardha'* (half) and *'chheda'* (division into parts). Sometimes the word *'ardha'* is deleted and we have simply the term *'chheda'*; vide TLS, v.8, p.12 and v.105, p.101. Here it may be interestingly noted that the term 'logarithm' is derived from the two Greek words - *'Logos'* (ratio) and *'arithmos'* (number) (Cf. Smith, p.513).

The concept of the *'ardhachheda'* may be traced back to the period of the AS. In it (v.423, p.349), the total number of developable human souls is stated as a number which can be divided (by two) ninety six times. The term by name occurs first in the TP (v.1.131, p.30) and thereafter in the

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

DVL, JDPS (vv.12.66-67, p.230 and 12.77-78, p.231), TLS, GJK (v.215, p.129 etc.) and so forth.

Here, it should be noted that with the Neo-Pythagoreans the 'even-times even' number is that which has its halves even, the halves of the halves even, and so on till unity is reached; in short, it is a number of the form 2^n (Cf. Heath, Part-1, p.72).

[3.2] A.N. Singh (p.7) followed by L.C. Jain (1982, pp.29 and 51) opines that

[a] the consideration of the *ardhachheda* was certainly inspired by mediation and

[b] mediation must have been current in India before the advent of the place value numerals.

Here we should turn our mind to the fact that the operation of mediation was considered important when the place value numerals were unknown. It was considered to be important by Egyptians and Greeks and was recognized as such in their works on Arithmetic.[7]

By the way, in India the Jaina school traces this operation through the AS (v.423, p.349) wherein the total nu,ber of developable human souls is stated as a number which can be divided (by two) ninety six times.

[3.3] *VARGAŚALĀKĀ*

Nemicandra defines this term as follows :

वग्गिदवारा वग्गसलागा रासिस्स अद्धछेदस्स।

(TLS, v.76, the first two quarters, p.69)

The number of times that (2 is successively) squared (until a particular number is obtained) is the *vaggasalāgā* (*vargaśalākā* in Sanskrit) of the number (*rāsi, rāśi* in Sanskrit).

That is to say that if

$$R = 2^{2^r},$$

then r is called the *vargaśalākā* of R. Denoting the *vargaśalākā* by the abbreviation VS, we can write the above as

$$VS(R) = r.$$

For instance,

$$VS(65536) = 4.$$

अध्दिदवारा वा खलु

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

(TLS, v.76, the third quarter, p.69)

Or the *ardhachheda* of the *ardhachheda* (of a number) is certainly *(khalu)* (the *vargaśalākā* of the number).

i.e. $$AC(AC(R)) = r.$$

On comparing these two definitions of *vargaśalākā*, we have

$$VS(R) = AC(AC(R))$$

or $$VS(R) = \log_2 \log_2 R.$$

A.N. Singh (p.7) is the first mathematician who recognized that

$$VS(R) = \log_2 \log_2 R.$$

The Jaina school of Indian mathematics created a new nomenclature viz. *vargaśalākā* for $\log_2 \log_2$. In addition to $\log_2 \log_2$, the school has used $\log_2 \log_2 \log_2$ and $\log_2 \log_2 \log_2 \log_2$ as operators in context of equations and inequations as well ; vide DVL-III, pp.21-24 and for exposition, consult : A.N. Singh, p.8, L.C. Jain, 1976, pp. 88-92 and Navjyoti Singh, pp.31-32. But the school did not give any new nomenclature to them. The exact reason behind it is that the idea of *varagaśalākā* in Jaina theory of logarithms is the counterpart of that of ordinal successive squaring in Jaina theory of indices.

[3.4] *Mādhavacandra* was an immediate pupil of *Nemicandra* as he himself claimed to be ; vide TLS, p.768. He has written, in Sanskrit, a commentary on the TLS. He gives the following rule -

..... वर्गशलामात्रं द्विकं परस्पराहतं चेत् राशेरर्धच्छेदा: भवति।

..... अर्द्धच्छेदमात्रे द्विके परस्परगुणिते सति राशिर्भवति।

(TLS, below v.75, p.68)

The *ardhachheda* of a number *(rāśi)* is obtained by mutual multiplication of twos that are, in number, equal to the *vargaśalākā* of the number. Similarly the number is obtained by mutual multiplication of twos that are, in number, equal to the *ardhachheda* of the number.

If VS(N) = 4 then N = ?

According to the above definition,

$$AC(N) = 2.2.2.2$$

$$= 16$$

and $$N = 2.2.2.2.2.2.2.2.2.2.2.2.2.2.2.2$$

$$= 65536.$$

Here an important inference that the Jaina shool of Indian mathematics

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

had an idea of the anti-*ardhachheda* and anti-*vargaśalākā* can be easily drawn.

[3.5] *TṚKACHHEDA* AND *CATURTHACHHEDA*

The terms *tṛkachheda* and *caturthachheda* (abbreviated as TC and CC respectively) occur frequently in the *Dhavalā*. (Cf. DVL-III, p.56 and Cf. also Singh, A.N., pp. 7-8)

As *tṛka* means 'tri' and *caturtha* means 'quadri',

$$TC(R) = \log_3 R$$

and

$$CC(R) = \log_4 R.$$

For instance,

$$TC(81) = 4$$

and

$$CC(256) = 4.$$

Their ideas seem to have been certainly inspired by and advanced after the idea of the *ardhachheda*.

[3.6] *Virasena* has been found to have applied the following laws of logarithms :

$$\log_2 PQ = \log_2 P + \log_2 Q$$

$$\log_2 (P \div Q) = \log_2 P - \log_2 Q$$

$$\log_2 P^q = q \log_2 P$$

$$\log_2 2^p = p$$

$$\log_2 (\overline{P1})^2 = 2P\log_2 P$$

$$\log_2 \log_2 (\overline{P1})^2 = \log_2 P + 1 + \log_2 \log_2 P \quad \text{etc.}$$

(Cf. DVL-III, pp.21-24, 55 and 60, vide also Singh, A.N., pp.31-32)

In addition to the first three laws just mentioned above, *Nemicandra* sets forth the law

$$\log_2 \log_2 P^Q = \log_2 Q + \log_2 \log_2 P.$$

The important thing is that he is the first mathematician to have set forth these four laws through general and formal statements.
(Cf. TLS, vv.105-108, pp.101-102 and for their expositions, vide Jadhav(2002)).

[3.7] Whatever we have presented and discussed so far shows that the Jaina school of Indian mathematics conceived of logarithms to the base 2, 3 and 4 but not to the general base.

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

We do not find such idea of logarithms in no school other than the Jaina scchool of Indian mathematis not only in India but also in the rest of the world.It was an exclusive invention of the Jaina school of Indian mathematics and was used only in its canonical texts such as the TP, DVL, JDPS, TLS, GJK etc. but not in its exclusive texts (on mathematics) such as the GPV, PG and TSK of *Śrīdhara* (c.799 A.D.), GSS etc.

Therefore, it is recommended that the above idea of logarithms should be known as Jaina logarithms as $\sqrt{10}$ is known as Jaina value for π (= the ratio between the circumference and diameter of a circle).

[4] THE THEORIES LIE IN THE DOUBLE SERIES

[4.1] Michael Stifel (or Stifelus) (1486?-1567) was the greatest German algebraist of the sixteenthy century. He was born in Esslingen and died in Jena. In 1544 A.D., he published, in Latin, a book titled ***'Arithmatic Integra'.*** The book is divided into three parts dealing respectively with rational numbers, irrational numbers and algebra.

Most writers refer him as the first mathematician who sets forth the laws of indices. At first, he uses the series in which the first one is an arithmetic progression (abbreviated as A.P.) and seond one is a geometric progression (abbreviated as G.P.).

0	1	2	3	4	5	.....
1	2	4	8	16	32	.....

distinctly calling the upper numbers exponents.

In an expressive manner, he lays down four laws, namely,

[a] that addition in A.P. corresponds to multiplication in G.P.,

[b] that subtraction corresonds to division,

[c] multiplication to the finding of powers and

[d] division to the extracting of roots. (Cf. Smith, p.521)

Now a days, we have only to write the series

$$2^0 \quad 2^1 \quad 2^2 \quad 2^3 \quad 2^4 \quad 2^5 \quad .....$$

to see at glance the connection between A.P. and G.P., but in 1600 A.D. this symbolism had yet to be developed. (Cf. Hooper, p.193)

Furthermore, he also saw the great importance of considering the negative exponents of the base which he selected, using the series

.....	-3	-2	-1	0	1	2	3	.....
.....	$\frac{1}{8}$	$\frac{1}{4}$	$\frac{1}{2}$	1	2	4	8	.....

(cf. Smith, p.521)

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

D.E. Smith (pp.519-520), the well known American historian of mathematics, has found that Stifel was by no means the first to set forth the laws of indices. Probably the best of the statements regarding the laws of indices were of Nicolas Chuquet who expressed very clearly the addition and multiplication laws in ***Le Triparty en la Sciences des Nombres*** (1484 A.D.) from which ***Estienne de la Roche*** copied freely in his ***Larismethique*** of 1520 A.D.

Moreover, Rudolff's ***Kunstliche rechnung*** (1526 A.D.) where the double series is given and the multiplication law of indices is very clearly set forth, had great influence on Stifel.

After two decades of the publishment of Stifel's ***Arithmetica Integra,*** Forcadel (1565 A.D.) gave theory of indices with a statement that the idea was due to Archimedes. (Cf. Smith, p.522)

[4.2] John Napier (1550-1617) was born at Merchiston (then near, now in Edinburgh) in Scotland. He became Baron of Merchiston. He was the eldest son of his father, Archibald Napier. It is remarkable that his father was only about 16 years old when he was born.

After working at least twenty years upon theory of logarithms, he published his work, in 1614 A.D., under the title ***Mirifici logarithmorum canonis descriptio*** which is briefly called the ***Descriptio.*** It was mainly aimed at simplifying expressions involving multiplication of sines.

In 1573 A.D., he married Elizabeth Sterling. She died in 1579 A.D. He married again Agnes Chisholm by whom he had 5 sons and 5 daughters. His second son, Robert Napier edited with ability his father's great work and published in 1619 A.D. under the title ***Mirifici logarithmorum canonis constructio*** which is briefly called the ***Constructio.***

It is one of the greatest curisities of History of Mathematics that John Napier discovered logarithms

[a] befor indices were used (Cf. Cajori, pp.149 and 178)

[b] and when the laws of indices laid down by Stifel were, if not completely unknown, at least not formulated or not generally known (Cf. Bose, p.16 and Hooper, p.174).

That a logarithm is simply an index was not observed long after Napier's invention. What, then, was his line of approach to logarithms.? To understand his approach, it should be remembered that

[a] in his time and long afterwards, the sine of an angle (Φ) was not regarded as a ratio but as the length of that semichord of a circle of given radius

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

(r) which substends the angle at the centre.

[b] The radius (r) was called the sinus totus. When r was not unity, the length was r Sin Φ and when r was unity, the length was simply Sin Φ. (Cf. Bose, p.20, Cajori, pp.149 - 150 and Smith, p.515)

He takes the two right lines AB and CD where AB is definite and CD is extending form C indefinitely. AB is taken to be the sine of 90^0 and to be equal to 10^7 units.

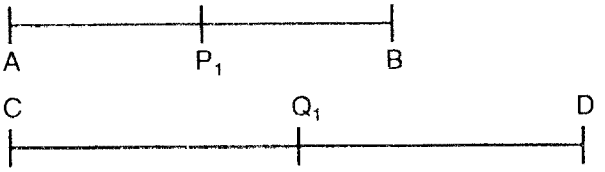

A point P on AB is supposed to move from left to right so that its velocity is at every point proportional to the distance from B. At the same time, he supposes a point Q moving along the line CD with uniform velocity (the same as that of P initially). Let P_1 and Q_1 be the corresponding positions of P and Q respectively. He defined the sine representing CQ_1 as thge logarithm of the sine representing BP_1. (Cf. Bose, pp.27 - 28 and Cajori, pp. 149 - 150)

After giving his kinematical definition of logarithms, Napier deduces

[a] the following laws for sines :

$$\text{If } z = \frac{ab}{r} \quad \text{then } \log z = \log a + \log b$$

and

$$\text{If } \frac{z}{r} = \frac{a}{b} \quad \text{then } \log z = \log a - \log b$$

where r is the radius of the circle for which the sines are measured.

$$\text{If } \frac{a}{b} = \frac{c}{d} \quad \text{then } \log b - \log a = \log d - \log c$$

$$\text{If } \frac{a}{b} = \frac{b}{c} \quad \text{then } 2\log b = \log a + \log c$$

$$\text{If } \frac{a}{b} = \frac{b}{c} = \frac{c}{d} \quad \text{then } 3\log b = 2\log a + \log d$$

$$\text{and } 3\log c = \log a + 2\log d$$

[b] and that as the length CQ_1 increases in A.P., the corresponding length BP_1 decreases in G.P. (Cf. Bose, p.28 and Smith, p.515)

His system of logarithms shows striking difference at the following points :

[a] His logarithms are not the same as the natural logarithms, because his

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

logarithm (of $\sin\Phi$) increases (from zero) as the number (Φ) itself decreases (from 90^0). Moreover, he took $\log \sin 90^0 = 0$ or $\log 10^7 = 0$.

[b] The notion of a 'base' is inapplicable to his system of logarithms.

[c] With his system

$$\log ab \text{ is not } \log a + \log b$$

nor

$$\log (a \div b) \text{ is } \log a - \log b.$$

(cf. Cajori, p.150 and Bose, p.28)

[4.3] Jobst Bürgi (1552-1632) was a Swiss watchmaker and instrument-maker. He independently invented logarithms. His approach was entirely different from Napier's. It was algebraic and was definitely based on the structure of a G.P. (Cf. Hooper, p.192)

He published his work under the title '***Arthmetische and Geometrische Progress Tabulen***' at Prague in 1620 A.D. He neglected to have it published until Napier's logarithms were known and admired throughout Europe. (Cf. Cajori, p.152)

5. DISCUSSION

[5.1] Simon Jacob (1565 A.D.) followed closely Stifel and recognized the latter's four laws. He, in turn, influenced Bürgi. (Cf. Smith, pp.520 and 522)

On the basis of this information, we may draw a line of study as follows :

..... Stifel (1486 ? - 1567) → Jacob (1565) → Bürgi (1552 - 1632) .....

The present author thinks that in Europe through this line

[a] it may have been possible to understand the fact that an index (or exponent) is simply a (natural) logarithm

[b] and a ground may have been prepared to transform the laws of indices into the laws of (natural) logarithms.

On the other hand, the same business had been worked out in India definitely in the time of the DVL (rather the *Ṣaṭkhaṇḍāgama*) and formally in the time of the TLS as we have seen in the gone pages.[8]

From the above discussion, we may easily infer that the laws of indices had been transformed into the laws of logarithms in India at least six centuries earlier than that in abroad.

[5.2] Theory of logarithms to the base 2, 3 and 4 was an exclusive invention of the Jaina school of Indian mathematics. It was not shared by any non-Jaina Indian mathematician like *Āryabhaṭa-I* (born 476 A.D.), *Brāhmagupta* (c. 628 A.D.), *Bhāskara I* (c. 629 A.D.), *Āryabhaṭa-II* (c. 950 A.D.), *Śrīdhara* (c. 1039

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

A.D.), *Bhāskara-II* (c. 1114-1185 A.D.) etc. nor even by famous Jaina mathematician like *Śrīdhara* (c. 799 A.D.), *Mahāvīra* (c. 850 A.D.) etc. If it were not so, the knowledge of Jaina logarithms would be transmitted to Europe via Arab and, then, as a result, time and energy of John Napier and Jobst Bürgy in discovering logarithms would be saved.

6. CONCLUDING REMARKS

The new findings on the present subject are, through this paper, as follows :

[a] The multiplication law of indices is the Jaina mode of indicating power of a number.

[b] The mode with the ordinal succession technique is used to express big numbers.

[c] The mode fails to indicate the odd power such as the fifth, seventh, eleventh etc. but the Jaina school of Indian mathematics was in position to evaluate a^n where n may be any even or odd integral.

[d] The *vargana-samvargana* is independent of the mode.

[e] The ancient scholars of the Jaina school of Indian mathematics advanced theory of indices in requisite structure.

[f] They seem pioneers to apply the multiplication law of indices while Archimedes seems pioneer to apply the addition law.

[g] They were fully conversant with the division law of indices.

[h] They began with the *'varga'* and *'ghana'* to develop theory of indices. Similarly they began with the *ardhachheda*, *vargaśalākā*, *tṛkachheda* and *caturthachheda* to develop the theory of logarithms. On the other hand, modern theories of indices and logarithms lie in the double series.

[i] The difinition of Jaina logarithms is nearly based on index.

[j] The *vargaśalākā* in Jaina theory of logarithms is the counterpart of the ordinal successive squaring in Jaina theory of indices.

[k] The idea of anti-logarithms was in existence in the Jaina school of Indian mathematics.

[l] In the transformation of the laws of indices into the laws of logarithms, India leads Europe by atleast six centuries.

[m] Mediation can be traced in India.

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

TABLE A : SOME SELECTED TECHNICAL TERMS

Terms	Meaning	For a number 'a'	Give in
varga	square	a^2	US, v.30.10, p.529, BS, SS etc.
ghana	cube	a^3	ibid
varga - varga	square - square	$(a^2)^2$ or a^4	US, v.30.10, p.529
ghana - ghana	cube - cube	$(a^3)^3$ or a^9	DVL - III, p.53, US etc.
ghana - varga	cube - square	$(a^3)^2$ or a^6	US, DVL - III etc.
prathama varga	first square	a^2	AS, p.349 etc.
dvitīya varga	second square	a^{2^2} or a^4	ibid
tṛtīya varga	third square	a^{2^3} or a^8	ibid
pañcama - kṛti ghana	fifth square cube	$(a^{2^5})^3$ or a^{96}	GJK, v.157, p.104

TABLE B : SOME SELECTED TECHNICAL TERMS

Terms	Meaning	For a number 'a'	Give in
prathama vargamula	first square - root	$a^{1/2}$	AS, pp.346 - 347, etc.
dvitīya vargamula	second square - root	$a^{\frac{1}{2^2}}$ or $a^{1/4}$	ibid
tṛtīya vargamula	third square - root	$a^{\frac{1}{2^3}}$ or $a^{1/8}$	ibid
tṛtīya vargamula - ghana	third square - root	$\left(a^{\frac{1}{2^3}}\right)^3$ or $a^{3/8}$	US. v.30.11, p.529
ghana prathama vargamula	cube - first square - root	$\left(a^3\right)^{\frac{1}{2}}$ or $a^{3/2}$	DVL - III, p.53
ghana - ghana prathama vargamula	cube - cube - first square - root	$\left([a^3]^3\right)^{\frac{1}{2}}$ or $a^{9/2}$	ibid

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

ACKNOWLEDGEMENTS

The author expresses his sincere gratitude to Prof. L.C. Jain (Jabalpur) and Dr. Anupam Jain (Indore) for making valuable suggestions. He is indebted to Kundakunda Jñānapīṭha, Indore for giving facilities in the preparation of this paper.

BIBLIOGRAPHY

[A] Original Sources

A pair of square brackets just after the titles of the texts indicate the abbreviations of the titles used in this paper.

1. *Anuyogadvāra-sūtra* [AS], Ed. with Hindi commentary by Pt. Shubhachandra Bharil et.al., *Jināgama Granthamālā* Publication No. 28, *Śrī Āgama Prakāśana Samiti* (abbreviated as SAPS), Beawar (Raj.), 1987.

2. *Bhagavatī-sūtra* [BS], Ed. with *Abhayadeva Sūri's* commentary by H.Jacobi, Oxford, 1895.

3. *Dhavalā* [DVL] of *Virasena* (c.816 A.D.), Ed. with a Hindi translation by H.L. Jain et.al., Vol.III, Book-III, Amaraoti, 1940-50, Reprinted by *Jaina Saṁskṛti Saṁrakṣaka Saṅgha* (Abbreviated as JSSS), Sholapur, 1980.

4. *Gommaṭasāra-Jīvakāṇḍa* [GJK] of *Nemicandra* (c.981 A.D.), Ed. with English translation by J.L. Jaini, The Central Jaina Publishing House, *Ajitāśrama*, Lucknow, 1927.

5. *Gaṇita-sāra-saṁgraha* [GSS] of *Mahāvīra* (c.850 A.D.), Ed. and translated into Hindi by L.C. Jain, JSSS, Sholapur, 1963.

6. *Gaṇita-pañca-viṁśī* [GPV] of *Śrīdhara* (c.799 A.D.), Ed. by D. Pingree, Rtma, Ludwik Sternbach Felicitation Volume, 887-909, *Akhil Bhāratīya Saṁskṛta Pariṣada*, Lucknow, 1979.

7. *Jambū-dīva-paṇṇatti-saṅgaho* [JDPS] of *Padmanandi* (c.977 A.D.), Ed. by A.N. Upadhye and H.L. Jain, *Jīvarāja Jaina Granthamālā* No. 7, JSSS, Sholapur, 1958.

8. *Pāṭī-gaṇita* [PG] of *Śrīdhara* (c.799 A.D.), Ed. by K.S. Shukla, Department of Mathematics and Astronomy, Lucknow University, Lucknow, 1959.

9. *Sthānāṅga-sūtra* [SS], Ed. by *Śrī Miśrīmalji Mahārāja 'Madhukar'*, *Jināgama Granthamālā* Publication No. 7, SAPS, Beawar (Raj.), 1992.

10. *Trilokasāra* [TLS] of *Nemicandra* (c.981 A.D.), Ed. with *Mādhavacandra*

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

Traividya's Sanskrit commentary and with *Āryikā Viśuddhamatī's* Hindi commentary by R.C. Jain 'Mukhtar' and C.P. Patni, *Śrī Mahāvīrajī* (Raj.), VNY2501 (=1975 A.D.).

11. *Tiloyapaṇṇatti* [TP] of *Yativṛṣabha* (some date between 473 A.D. and 609 A.D.), Ed. with *Āryikā Viśuddhamatī's* Hindi commentary by C.P. Patni, *Śrī 1008 Candaprabha Digambara Jaina Atiśayakṣetra*, Dehra - Tijara (Raj.), Part - I and II, Second Edition, 1997.

12. *Triśatikā* [TSK] of *Śrīdhara* (c.799 A.D.), Ed. by S. Divedin, Chandraprabha Press, Benares, 1899.

13. *Uttarādhyayana - sūtra* [US], Ed. by *Sri Miśrīmalajī Mahārāja 'Madhukara'*, *Jināgama Granthamālā* Publication No. 19, SAPS, Beawar (Raj.), 1991.

[B] Secondary Sources

1. Agrawal, M.B.L. [1972] Contribution of the *Jainācāryas* to the Development of Mathematics and Astronomy, Doctoral Thesis (in Hindi), Agra University, Agra.

2. Bag, A.K. [1979] Mathematics in Ancient and Medieval India, Chaukhamba Oriental Research Study No. 16, Varanasi - Delhi.

3. Bose, A.C. [1913 - 15] John Napier : His Life and Work, The Bulletin of Calcutta Mathematical Society, Vol.IV, 53 - 60 and Vol.VI, 13 - 31, Calcutta (now Kolkata).

4. Cajori, Florian [1958] A History of Mathematics, The Macmillan Company, New York.

5. Datta, B.B. [1935] Mathematics of *Nemicandra*, The Jaina Antiquary, 1 (2), 25 - 44, Arrah.

6. Heath, Sir Thomas [1921] A History of Greek Mathematics, Vol.I, The Clarendon Press, Oxford. Reprinted in 1981 by Dover Publication, New York.

7. Hooper, Alfred [1948] Makers of Mathematics, Faber and Faber Limited, London. Reprinted in 1949.

8. Hollingdale, Stuart [1989] Makers of Mathematics, Penguin Books, London.

9. Jadhav, Dipak [2002] The Laws of Logarithms in India, *Historia Scientiarum* 11 (3), 261 - 267, **Tokyo (Japan)**.

10. Jain, Anupam [1990] Contribution of the *Jainācāryas* to the Development of Mathematics, Doctoral Thesis (in Hindi), Merrut University, Merrut.

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

11. Jain, B.S. [1987] Contribution of Ancient Jaina Mathematicians, *Ācārya Śrī Deśabhūṣaṇjī Mahārāja* Felicitation Volume, 38-48, Delhi.

12. Jain, H.B. [1991] Mathematical Sciences in *Dhavalā* (in Hindi), Proceedings of International Seminar on Jaina Mathematics and Cosmology (abbreviated as POISOJMAC), 26-28 April, 1985, 81-89, Hastinapur.

13. Jain, L.C. [1958] The Mathematics of the *Tiloyapaṇṇatti* (in Hindi), Published in the *Jambū-dīva-paṇṇatti-saṅgaho*, JSSS, 1-108, Sholapur.

    [1976] On Certain Mathematical Topics of the *Dhavalā* Texts, Indian Journal of History of Science, 2(2), 85-111, Calcutta (now Kolkata).

    [1982] Exact Sciences from Jaina Sources, Vol.-I, Basic Mathematics, Rajasthan Prakrit Bharati Sansthana, Jaipur and Sitaram Bhartiya Institute of Scientific Research, New Delhi.

14. Kapadia, H.R. [1937] Introduction to the *Gaṇita-tilaka*, Gaikwad Oriental Series No. 78, Baroda.

15. Sarasvathiamma, T.A. [1969] Development of Mathematical Ideas in India, Indian Journal of History of Science, 4(1 & 2), 59-78, Calcutta (now from Delhi).

16. Sastri, Asoke Chatterjee [1987] *Piṅgalchhandaḥ-sūtra* : A Study, The Asutosh Sanskrit Series No. VI, University of Calcutta, Kolkata.

17. Shastri, N.C. Jain [1983] Contribution of Jaina Literature to the Development of Indian Culture (in Hindi), *Akhila Bhāratvarṣīya Digambara Jaina Vidvatpariṣada*, Sagar.

18. Singh, A.N. [1942] Mathematics of *Dhavalā*, Published in the *Ṣaṭakhaṇḍāgama*, Book-IV, Amaraoti. Reprinted by JSSS, Sholapur, 1984.

19. Singh, Navjyoti [1991] Jaina Theory of Measurement and Theory of Transfinite Numbers, POISOJMAC, pp.209-238, Hastinapur.

20. Smith, D.E. [1958] History of Mathematics, Vol.-II, Dover Publication, New York.

21. Srinivasiengar, C.N. [1967] The History of Ancient Indian Mathematics, vii+157, World Press, Kolkata.

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

REFERENCES AND NOTES

1. Smith, p.522.
   Did the Jaina school of Indian mathematics use any name for 'index'? To reply this, the present author has found a clue. He proposes to study that clue in his future paper.

2. Singh, A.N., p.7.
   The Egyptians often multiplied by continued doubling. So, to multiply 27 by 13, they would proceed thus -

1	27	←
2	54	
4	108	←
8	216	←
13	351	

   Since 13 = 8 + 4 + 1, the result is obtained by adding the marked numbers in the second column.

   Cf. Heath, pp.52-53, Hollongdale, pp.2-3 and Smith, p.34.

3. This is conceived according to the Sand Reckoner (**Arenarius** or **Psammites**) which is an essay addressed by Archimedes to Gelon, King of Syracuse (now in Italy). In it, he made a plan to express very large numbers. His plan involved the counting by octads (10^8) in which he proceeded as far as 10^{52}.

4. GSS, v.2.94 first half, p.29.
   समदल विषमखरूपो गुणगुणितो वर्ग ताडितो गच्छः।
   vide also : PG, v.94, .134, example 108, p.134 and English Translation, pp.76-77
   विषमे पदे निरेके गुणं समेऽर्धीकृते कृतिं न्यस्य।
   क्रमशो रुपस्योत्क्रमशो गुणकृतिफलमादिना गुणयेत्॥ 94॥
   रूपत्रयं गृहीत्वा लाभार्थं निर्गतो वणिक कश्चित्।
   प्रतिमासं द्विगुणधनं तस्य भवेत् किं त्रिभिर्वर्षैः॥ 108॥

5. Sastri [1987] vv.8.28-32, p.12.
   द्विरर्द्धे॥28॥ रूपे शून्यम्॥29॥
   द्वि शून्ये॥30॥ तावदर्द्धे तदगुणितम्॥31॥
   द्विर्द्धयनं तदन्तानाम्॥32॥

6. DVL-III, pp.19-21.
   जहण्णमणंताणंतं विरलेऊण एक्केक्कस्स रूवस्स जहण्णमणंताणंतं दाऊण वग्गिदसंवग्गिदं काऊणुप्पण्णमहारासिं दुप्पडिरासिं काऊण तत्थेक्करासिं विरलेऊण अवरं महारासिपमाणं रूवं पडि दाऊण वग्गिदसंवग्गिदं काऊण पुणो वि उट्ठिदमहारासिं दुप्पडिरासिं काऊण तत्थेक्करासिपमाणं विरलेऊण अवरमहारासिं विरलणरासिरूवं पडि दाऊण अण्णोण्णब्भासे कदे तिण्णिवारं वग्गिदसंवग्गिदरासीणाम

7. Singh, A.N., p.7, For histroy of 'mediation', vide Smith, pp.34-35.

8. The fact that an index is simply a logarithm was known to the Jaina school of Indian mathematics will be corroborated in the paper mentioned in ref.1.

प्राप्त : 15.11.02

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

कुन्दकुन्द ज्ञानपीठ द्वारा प्रकाशित उपलब्ध साहित्य

क्रमांक	पुस्तक का नाम	लेखक	I.S.B.N.	मूल्य
1.	बालबोध जैनधर्म, पहला भाग संशोधित	पं. दयाचन्द गोयलीय	81 - 86933 - 01 - 8	1.50
2.	बालबोध जैनधर्म, दूसरा भाग	पं. दयाचन्द गोयलीय	81 - 86933 - 02 - 6	1.50
3.	बालबोध जैनधर्म, तीसरा भाग	पं. दयाचन्द गोयलीय	81 - 86933 - 03 - 4	3.00
4.	बालबोध जैनधर्म, चौथा भाग	पं. दयाचन्द गोयलीय	81 - 86933 - 04 - 2	4.00
5.	नैतिक शिक्षा, प्रथम भाग	पं. नाथूलाल शास्त्री	81 - 86933 - 05 - 0	4.00
6.	नैतिक शिक्षा, दूसरा भाग	पं. नाथूलाल शास्त्री	81 - 86933 - 06 - 9	4.00
7.	नैतिक शिक्षा, तीसरा भाग	पं. नाथूलाल शास्त्री	81 - 86933 - 07 - 7	4.00
8.	नैतिक शिक्षा, चौथा भाग	पं. नाथूलाल शास्त्री	81 - 86933 - 08 - 5	6.00
9.	नैतिक शिक्षा, पांचवां भाग	पं. नाथूलाल शास्त्री	81 - 86933 - 09 - 3	6.00
10.	नैतिक शिक्षा, छठा भाग	पं. नाथूलाल शास्त्री	81 - 86933 - 10 - 7	6.00
11.	नैतिक शिक्षा, सातवां भाग	पं. नाथूलाल शास्त्री	81 - 86933 - 11 - 5	6.00
12.	The Jaina Sanctuaries of the Fortress of Gwalior	Dr. T.V.G. Shastri	81 - 86933 - 12 - 3	500.00
13.	जैन धर्म - विश्व धर्म	पं. नाथूराम डोंगरीय जैन	81 - 86933 - 13 - 1	10.00
14.	मूलसंघ और उसका प्राचीन साहित्य	पं. नाथूलाल शास्त्री	81 - 86933 - 14 - X	70.00
15.	Jain Dharma - Vishwa Dharma	Pt. Nathuram Dongariya Jain	81 - 86933 - 15 - 8	20.00
16.	मध्यप्रदेश का जैन शिल्प	श्री नरेशकुमार पाठक	81 - 86933 - 18 - 2	300.00
17.	जैनाचार विज्ञान	मुनि सुनीलसागर	81 - 86933 - 20 - 4	20.00
18.	समीचीन सार्वधर्म सोपान	पं. नाथूराम डोंगरीय जैन	81 - 86933 - 21 - 2	20.00
19.	An Introduction to Jainism & Its Culture	Pt. Balbhadra Jain	81 - 86933 - 22 - 0	100.00
20.	जीवन क्या है?	डॉ. अनिल कुमार जैन	81 - 86933 - 24 - 7	50.00
21.	Mathematical Contents of Digambara Jaina Texts of Karṇānuyoga Group, Vol. - 1 & Vol. - 2	Prof. L.C. Jain	81 - 86933 - 26 - 3 81 - 86933 - 27 - 1	On request

नोट : पूर्व के सभी सूची पत्र रद्द किये जाते हैं। मूल्य परिवर्तनीय हैं।

प्राप्ति सम्पर्क : कुन्दकुन्द ज्ञानपीठ, 584, महात्मा गांधी मार्ग, इन्दौर - 452 001

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

अर्हत् वचन
कुन्दकुन्द ज्ञानपीठ, इन्दौर

जैन तीर्थंकर मूर्तियों में श्रीवत्स

■ जया जैन*

जैन धर्म एवं कला में 'श्रीवत्स' का महत्वपूर्ण स्थान है। जैन धर्म में 'श्रीवत्स' को मांगलिक चिन्ह के साथ महापुरुषों के लांछन के रूप में भी मान्यता दी गई है।[1] 'श्रीवत्स' पुण्यात्माओं का एक शारीरिक लक्षण है। यह तीर्थंकरों के वक्ष स्थल पर रहने वाला चिन्ह है।[2] इसका प्रारम्भिक स्वरूप एक मांगलिक चिन्ह के रूप में था, जो आगे चलकर महापुरुषों के लक्षण के रूप में विकसित हो गया।

श्रीवत्स 'जिन' के हृदय से प्रस्फुटित कैवल्य (ज्ञान) का साक्षात् स्वरूप भी माना गया है।[3]

भाषागत अर्थ की दृष्टि से श्रीवत्स की उद्भावना का प्राथमिक स्वरूप स्पष्ट होता है। 'श्रीवत्स' दो शब्दों से मिलकर बना है 'श्री' तथा 'वत्स'। 'श्री' सुख, सम्पत्ति एवं सृजन का प्रतीक है। 'श्री' की कृपा का पात्र होने के नाते मानव उसकी सन्तान (वत्स) के समान है, अपने पुरुषार्थ, परिश्रम तथा सृजन शक्ति से मनुष्य 'श्री' के गुणों से समन्वित है[4], जिसे 'श्रीवत्स' प्रतिबिम्बित करता है। 'श्री' गुणों के कारण इसे लक्ष्मी का प्रतीक भी माना जाता है।

अत: 'श्रीवत्स' अर्थात् 'श्री' का पुत्र होने के कारण 'श्रीवत्स' भी सुख, समृद्धि व संपन्नता का द्योतक है।[5]

महापुरुष लक्षण के रूप में 'श्रीवत्स' को जैन तीर्थंकरों, बुद्ध मूर्तियों तथा विष्णु आदि विभिन्न देवताओं के वक्ष स्थल पर उत्कीर्ण किया गया है। श्रीवत्स का अंकन भारतवर्ष में लगभग तीन हजार सहस्र वर्षों से पाया गया है।[6] भारतीय कला में 'श्रीवत्स' का सर्वाधिक प्राचीन अंकन जैन मूर्तियों में पाया जाता है।[7] मथुरा के कंकाली टीले से प्राप्त श्रीवत्स चिन्ह के विविध अंकन जैन अवशेषों में पाये गये हैं। वहाँ स्थित प्राचीन जैन स्तूप के वेदिका स्तंभों, आयागपट्टों तथा तीर्थंकरों की मूर्तियों में भी श्रीवत्स के अंकन हैं। उदयगिरि की जैन गुफाओं में श्रीवत्स तथा त्रिरत्न चिन्हों को पूज्य प्रतीकों में उच्च स्थान दिया गया है। रानी गुम्फा के प्रवेश द्वारों पर उत्कीर्ण मेहराब पर 'त्रिरत्न' तथा 'श्रीवत्स' के प्रतीक को उत्कीर्ण किया गया है। खारवेल के हाथी गुम्फा अभिलेख में भी इसका विशिष्ट प्रयोग किया गया है। अभिलेख की पांचवीं पंक्तियों के सीध में ऊपर श्रीवत्स और उसके नीचे स्वस्तिक का एक-एक चिन्ह उत्कीर्ण है। श्री शिवराम मूर्ति के मतानुसार हाथी गुम्फा अभिलेख में 'स्वस्ति' एवं 'श्री' लिखने के स्थान पर स्वस्तिक एवं 'श्रीवत्स' का अंकन कर दिया गया है। मथुरा से प्राप्त आयागपट्ट पर श्री चिन्ह अंकित मिले हैं।[8] कुषाणकाल के पहले की जैन तीर्थंकर की मूर्तियों का अंकन केवल आयागपट्टों के केन्द्र में भी पाया गया है, जिनमें श्रीवत्स प्रतीक का अंकन वक्ष पर नहीं है। कुषाणकालीन मथुरा की जैन मूर्तियों की पहचान मात्र श्रीवत्स प्रतीक से संभव हो सकी है। मथुरा से प्राप्त होने वाली तीर्थंकरों की मूर्तियों के वक्षस्थल पर 'श्रीवत्स' का जो लांछन पाया गया है वह शुंगयुगीन श्रीवत्स का अलंकृत रूप ही है। श्रीवत्स के स्वरूप का विकास कुषाण तथा गुप्तकालीन तीर्थंकर मूर्तियों में देखने को मिलता है।[9]

कालान्तर में 'श्रीवत्स' के प्रतीक में नितान्त रूप भिन्नता और लाक्षणिकता आ गई है। श्रीवत्स का आकार शुंगयुगीन श्रीवत्स के रूप में हमें भारतीय उत्कीर्ण-शिल्प में

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

मिलता है। आकार में कुछ परिवर्तन के साथ श्रीवत्स का स्वरूप गुप्तकाल तक कई जैन तथा वैष्णव प्रतिमाओं पर उकेरा जाता रहा है।

मथुरा से प्राप्त जैन तीर्थंकरों के वक्ष पर प्राय: श्रीवत्स का स्वरूप वहाँ से मिले आयागपट्टों जैसा ही है। अधिकांश मूर्तियों के श्रीवत्स में ऊपर बाण जैसी नोंक तथा नीचे त्रिकोण जैसा आधार जोड़ दिया गया है। महापुरुष लक्षण के रूप में श्रीवत्स के स्वरूप में आगे चलकर जो परिवर्तन हुआ उससे उसका पूर्ण स्वरूप बिल्कुल ही बदल गया। अपने मौलिक स्थान पर श्रीवत्स को लाक्षणिक स्वरूप प्रदान किया जाने लगा। कुछ तीर्थंकर प्रतिमाओं पर ईंट जैसा चतुष्कोणिक आकार प्रदान किया गया। श्रीवत्स का यह स्वरूप चतुर्दलीय पुष्प जैसा हो गया। मध्ययुगीन जैन प्रतिमाओं से इसकी पुष्टि होती है। कुछ प्रतिमाओं पर श्रीवत्स को पुष्पदल के स्थान पर बाहर को नोंक किये हुए चार त्रिकोणों से बना दिया गया।[10] देवगढ़ की तीर्थंकर प्रतिमाओं पर 'श्रीवत्स' चतुष्कोण आकृति के रूप में लक्षित है। श्रीवत्स के विभिन्न स्वरूपों को संलग्न चित्र के माध्यम से स्पष्ट किया गया है।[11]

श्रीवत्स की सहस्रवर्षीय परम्परा में उसके स्वरूप में जो परिवर्तन हुए वह सरलीकरण पद्धति के द्योतक माने जाते हैं। जैन तीर्थंकर प्रतिमाओं में प्राय: सभी मूर्तियों में 'श्रीवत्स' किसी न किसी रूप में देखने को मिलता है।[12] अत: श्रीवत्स एक मांगलिक प्रतीक है जो सभी धर्मों और सम्प्रदायों में समान रूप से समादृत था।[13] प्राचीन जैन ग्रन्थों में मांगलिक लक्षणों की चर्चा में श्रीवत्स का उल्लेख मिलता है। अत: 'श्रीवत्स' एक मांगलिक प्रतीक है।[14]

सन्दर्भ

1. वाजपेयी, मधुलिका, जैन धर्म का विकास, पृ. 248
2. जैन पुराण कोश, पृ. 412 ; दृष्टव्य - महापुराण 73, 17 ; पदमपुराण 3, 191 ; हरिवंश पुराण 9,9.
3. श्रीवास्तव, ए.एल., श्रीवत्स भारतीय कला का एक मांगलिक प्रतीक, 3 (पृ. 4), 4 (पृ. 102)।
4. कादम्बिनी, नवम्बर - 1995, 5 (पृ. 137).
5. जैन भागचन्द्र, देवगढ़ की जैन कला - एक सांस्कृतिक अध्ययन, पृ. 110
6. श्रीवास्तव, ए.एल., श्रीवत्स भारतीय कला का एक मांगलिक प्रतीक, पृ. 1.
7. वही, पृ. 64.
8. वाजपेयी, मधुलिका, जैन धर्म का विकास, पृ. 244, 245.
9. श्रीवास्तव, ए.एल., श्रीवत्स भारतीय कला का एक मांगलिक प्रतीक, पृ. 65
10. वहीं, पृ. 119 - 123.
11. जैन, भागचन्द्र, देवगढ़ की जैन कला - एक सांस्कृतिक अध्ययन, पृ. 110.
12. श्रीवास्तव, ए.एल., श्रीवत्स भारतीय कला का एक मांगलिक प्रतीक, पृ. 123.
13. वही, पृ. 34.
14. वाजपेयी, मधुलिका, जैन धर्म का विकास, पृ. 244.

प्राप्त - 15.07.02

* एफ - 3, शासकीय आवास,
कम्पू, ग्वालियर (म.प्र.)

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

'श्रीवत्स' के विभिन्न स्वरूप

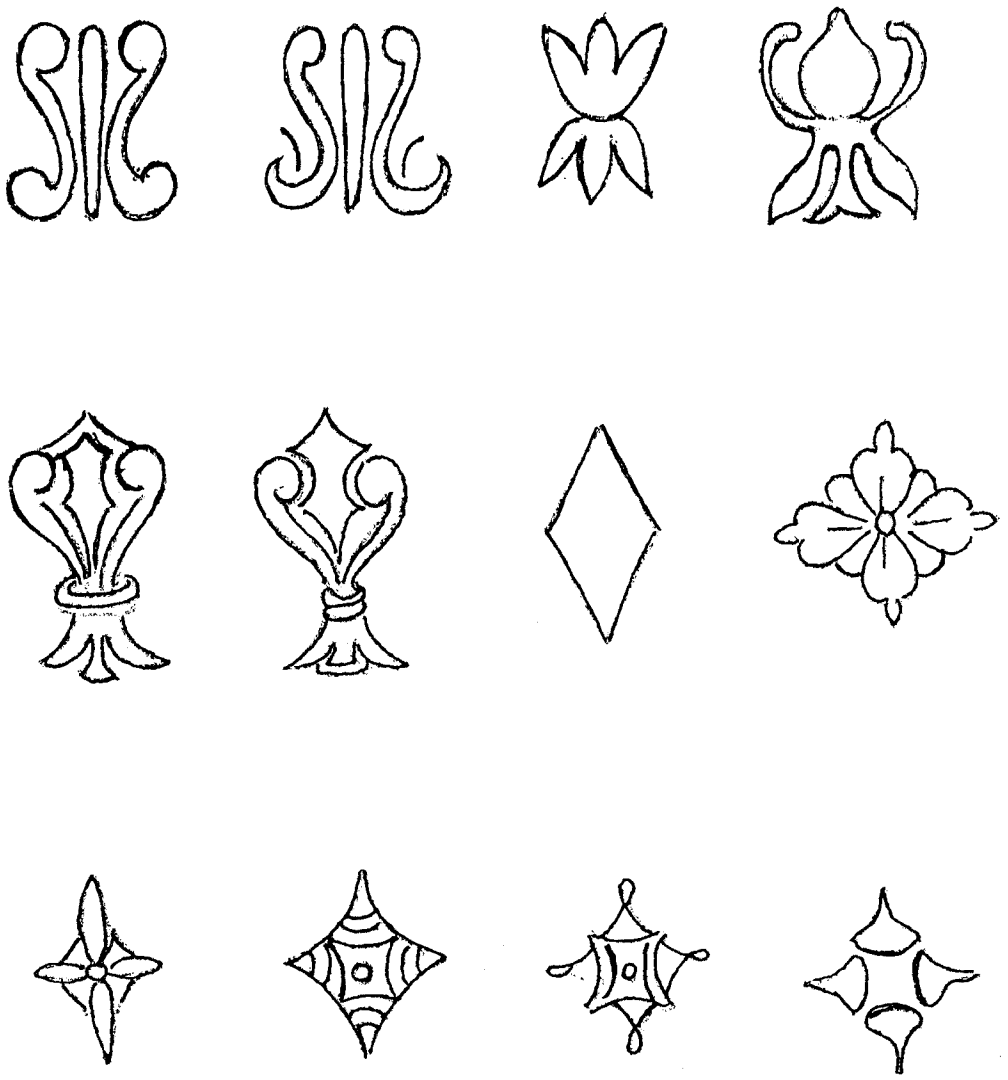

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

General Instructions and Informations for Contributors

1. Arhat Vacana publishes original papers, reviews of books & essays, summaries of Disertations and Ph.D. Thesis, reports of Meetings/Symposiums/Seminars/Conferences, Interviews etc.
2. Papers are published on the understanding that they have been neither published earlier and nor have been offered to any journal for publication.
3. The manuscript (in duplicate) should be sent to the following address -

   Dr. Anupam Jain
   Editor - Arhat Vacana
   D - 14, Sudamanagar,
   INDORE - 452 009
4. The manuscript must be typed on one side of the durable white paper, in double spacing and with wide margin. The title page should contain the title of the paper, name and full address of the author.
5. The author must provide a short abstract in duplicate, not exceeding 250 words, summarising and highlighting the principal findings covered in the paper.
6. Foot - notes should be indicated by superior number running sequentially through the text. All references should be given at the end of the text. The following guidelines should be strictly followed -

   (i) References to books should include author's full name, complete and unabbreviated title of the book (underlined to indicate italics), volume, edition (if necessary), publisher's name, place of publication, year of publication and page number cited. For example - Jain, Laxmi Chandra, Exact Sciences from Jaina Sources, Basic Mathematics, Vol. - 1, Rajasthan Prakrit Bharati Sansthan, Jaipur, 1982, pp. XVI + 6.

   (ii) References to articles in periodicals should mention author's name, title of the article, title of the periodical, underlined volume, issue number (if required), page number and year. For example - Gupta, R.C., Mahāvīrācārya on the Perimeter and Area of Elipse, The Mathematics Education, 8(B), PP. 17 - 20, 1974.

   (iii) In case of similar citations, full reference should be given in the first citation. In the succeeding citation abbreviated version of the title and author's name may be used. For example - Jain, Exact Sciences, PP. 45 etc.
7. Line sketches should be made with black ink on white board of tracing paper. Photographic prints should be glossy with strong contrast.
8. Acknowledgements, if there be, are to be placed at the end of the paper, just before reference.
9. Only ten copies of the reprints will be given free of charge to those authors, who subscribe. Additional copies, on payment, may be ordered as soon as it is accepted for publication.
10. Devanāgarī words, if written in Roman Script, should be underlined and transliteration system should be adopted.

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

अर्हत् वचन
कुन्दकुन्द ज्ञानपीठ, इन्दौर

जैन विज्ञान और दर्शन की जुगलबंदी

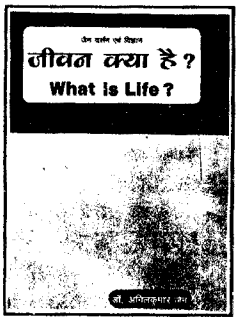

नाम	:	**जीवन क्या है?**
लेखक	:	**डॉ. अनिलकुमार जैन, अहमदाबाद**
प्रकाशक	:	**कुन्दकुन्द ज्ञानपीठ, 584, म. गांधी मार्ग, तुकोगंज, इन्दौर एवं तीर्थंकर ऋषभदेव जैन विद्वत् महासंघ, जम्बूद्वीप - हस्तिनापुर (मेरठ)**
प्रकाशन वर्ष/संस्करण	:	**2003, प्रथम**
पृष्ठ संख्या	:	**100 (आमुख पृष्ठों के अतिरिक्त)**
मूल्य	:	**रु. 50.00**
समीक्षक	:	**प्रो. महेश दुबे, प्राध्यापक - गणित, होलकर स्वशासी विज्ञान महाविद्यालय, इन्दौर - 452 017**

डॉ. अनिल कुमार जैन की पुस्तक का शीर्षक 'जीवन क्या है?' पढ़ते हुए सुप्रसिद्ध भौतिकविद् श्रूडिंजर की 1944 में प्रकाशित पुस्तक 'व्हाट इज लाइफ?' का ध्यान आता है। श्रूडिंजर की पुस्तक का फलक अत्यंत व्यापक था और वह समकालीन जैव रसायन साहित्य में, न पाई जाने वाली गहरी अंतर्दृष्टि से लिखी गई थी। डॉ. अनिलकुमार जैन भी भौतिक शास्त्र के विद्यार्थी हैं और अपनी इस समान शीर्षका पुस्तक में जैव रासायनिक विषयों की चर्चा करते हैं। उनकी पुस्तक का विस्तार सीमित है। लेखक का उद्देश्य आधुनिक वैज्ञानिक अवधारणाओं के संदर्भ में जैन दर्शन की व्यापकता और सक्षमता को प्रस्तुत करना है। उन्होंने अपनी पुस्तक में जैन दर्शन और विज्ञान के संदर्भ में कुछ अनुत्तरित प्रश्नों के उत्तर तलाशने का प्रयास किया है।

हाल के वर्षों में जैव विज्ञान में हुई खोजों ने जेनेटिक इंजीनियरिंग और क्लोनिंग जैसी नई - नई अवधारणाओं और तकनीकों को जन्म दिया है। पर जीवन और मृत्यु से संबंधित अनेक मूलभूत प्रश्नों के उत्तर अभी भी विज्ञान के पास नहीं हैं। ऐसे अनेक प्रश्न, जिनका उत्तर 'नीरज' के शब्दों में **'कुछ भी नहीं बदलता, केवल जिल्द बदलती पोथी'** होता है, अभी भी विज्ञान की भाषा में अनुत्तरित है। इनकी व्याख्या के लिए धर्म, दर्शन और अध्यात्म का सहारा लेना पड़ता है - और तब लगता है कि धर्म और विज्ञान एक दूसरे के पूरक हैं।

लगभग सौ पृष्ठों में फैली इस पुस्तक के 11 अध्यायों में जीवन क्या है? आत्मा का अस्तित्व, जैन दर्शन में सूक्ष्मजीवों की स्थिति, कोशिका, वायरस और निगोदिया जीव तथा कर्म - सिद्धांत के सापेक्ष नई जैव - रसायनिक तकनीकों जैसे विषयों पर जैन धर्म में निहित वैज्ञानिक पक्ष को प्रस्तुत करने का प्रयास किया गया है। लेखक के अनुसार जानने देखने और अनुभव करने की सामर्थ्य ही जीवन को परिभाषित करती है। सजीवों में आनुवांशिक परिवर्तन स्वयंभू और आकस्मिक होते हैं। कोशिका और वायरस को निगोदिया जीव श्रेणी में रखा जा सकता है। पुस्तक में खाद्य पदार्थों का रक्षण, दूध का पास्चीकरण, कोशिका विभाजन, प्रजनन जैसी कई जैव - रसायनिक अवधारणाओं को लेकर जैन दर्शन की व्याख्या प्रस्तुत की गई है। क्लोनिंग एक विवादास्पद विषय है। इसके साथ नैतिकता का प्रश्न भी जुड़ा हुआ है। जैनाचार्यों के अनुसार संक्रमण का सिद्धांत जीव को बदलने का सिद्धांत है। लेखक ने कर्म सिद्धांत की सीमाओं में क्लोनिंग और जेनेटिक इंजीनियरिंग पर महत्वपूर्ण जानकारियाँ दी हैं।

पिछले कुछ वर्षों में आधुनिक विज्ञान को धर्म, दर्शन और अध्यात्म से जोड़ने की प्रवृत्ति बढी है। प्राय: इस प्रवृत्ति में श्रद्धा के अतिरेक तक, इस प्रकार के दावों की बहुलता पाई जाती है कि सारा आधुनिक विज्ञान हमारे पुरातन धार्मिक ग्रंथों में समाया हुआ है और सभी नई वैज्ञानिक अवधारणाओं का पूर्वानुमान हमारे दार्शनिक विचारों में कर लिया गया था। प्रस्तुत पुस्तक इसका अपवाद नहीं है, इसके बावजूद पुस्तक की विषय वस्तु प्रभावी है।

पुस्तक की भाषा में, वैज्ञानिक शब्दावली और जैन दार्शनिकता का संयोजन है। कुछ अध्यायों के अंत में उपयोगी संदर्भ दिए गए हैं। पुस्तक पठनीय और विचारोत्तेजक है।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

अर्हत् वचन
कुन्दकुन्द ज्ञानपीठ, इन्दौर

एक महत्वपूर्ण दस्तावेज

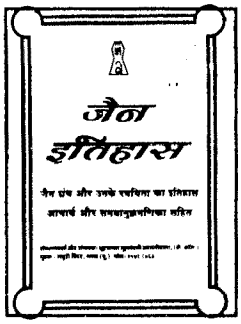

नाम	:	जैन इतिहास
संकलन/सम्पादन	:	श्री सूरजमल मूलचन्द खासगीवाला, भिवंडी
प्रकाशक	:	श्री सूरजमल मूलचन्द खासगीवाला, 320, गोकुल नगर, आदर्श सोसायटी, ए विंग, पहला माला, फ्लैट नं. 7, भिवंडी - 421302 जिला ठाणे फोन : 255884.
प्रकाशन वर्ष/संस्करण	:	2003 ई./प्रथम
पृष्ठ संख्या	:	72
मूल्य	:	रु. 40.00
समीक्षक	:	प्रो. अनुपम जैन, स. प्राध्यापक - गणित, होलकर स्वशासी विज्ञान महाविद्यालय, इन्दौर - 452017

इतिहास एक जीवन्त विषय है। विशेषत: प्राचीनकाल के इतिहास के सन्दर्भ में नित नवीन तथ्य प्राप्त होते रहते हैं। हर नई सूचना तथ्यों के विश्लेषण एवं विश्रृंखलित कड़ियों को जोड़ने में न्यूनाधिक सहायक होती हैं।

श्री सूरजमल मूलचन्दजी खासगीवाला इतिहास एवं तत्वज्ञान के प्रेमी वरिष्ठ अध्येता हैं। जैन तत्वसंग्रह (2000) एवं जैन शब्दार्थ कोश (2002) के बाद यह उनकी तीसरी कृति 2003 में प्रकाश में आई है। इस कृति में जैन ग्रन्थों एवं उनके रचयिता आचार्यों के काल के बारे में कालक्रमानुसार जानकारी संकलित की गई है। यद्यपि यह सत्य है कि अनेक ग्रन्थों एवं उनके रचनाकारों का कालनिर्धारण आज भी शेष है किन्तु वर्तमान में उपलब्ध विभिन्न मतों में से सर्वाधिक युक्तसंगत मत को चयनित कर लेखक ने सरल, सहज एवं बोधगम्य रूप में सुन्दर रीति से प्रस्तुत किया है। लेखक ने इस लघु कृति में जैन इतिहास के क्षेत्र में **गागर में सागर** भरा है।

कालक्रमानुसार प्रत्येक कालावधि में हुए आचार्य एवं उनके ग्रन्थों के संकलन के बाद अनेक प्रकार की वर्गीकृत सूचियों यथा विशिष्ट ग्रन्थों का विवरण, द्वादशांग जिनवाणी का परिचय, जैनदर्शन के बहुचर्चित विषय - 'निश्चय एवं व्यवहार नय' में भेद आदि देकर पुस्तक को पठनीय एवं संग्रहणीय बना दिया है।

लेखक ने ग्रन्थ की प्रस्तावना में लिखा है कि 'बीता हुआ काल इतिहास बनकर भविष्य की पीढ़ी के लिये उन्नत मार्ग प्रशस्त कर दीप स्तम्भ का कार्य करता है। जैनधर्म के अनेकान्त, स्याद्वाद, अहिंसा, सत्य ये शाश्वत मूल्य हैं जो हमेशा प्राणिमात्र को शांति का मार्ग बता रहे हैं और बताते रहेंगे।' इन पंक्तियों में पुस्तक सृजन का उद्देश्य स्पष्टत: परिलक्षित होता है।

इस पुस्तक के सृजन हेतु लेखक बधाई के पात्र हैं। पुस्तक को प्रत्येक जिन मन्दिर, सरस्वती भंडार, पुस्तकालय में रखा जाना चाहिये। मूल्य भी उचित है।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

अर्हत् वचन
कुन्दकुन्द ज्ञानपीठ, इन्दौर

अनेकान्त ज्ञान मन्दिर (शोध संस्थान), बीना

■ ब्र. संदीप 'सरल' *

बुन्देलखण्ड की पावन प्रसूता वसुन्धरा बीना (सागर) म.प्र. में 20 फरवरी 1992 को संत शिरोमणि आचार्य श्री 108 विद्यासागरजी महाराज के सुयोग्य शिष्य मुनि श्री 108 सरलसागरजी महाराज के पुनीत सान्निध्य में **बाल ब्र. संदीपजी 'सरल'** के भागीरथ प्रयासों से इस संस्थान का शुभारम्भ किया गया है। यह संस्थान जैनागम एवं जैन संस्कृति की अमूल्य धरोहर के संरक्षण एवं सम्वर्द्धन व प्रचार-प्रसार के लिये समर्पित है तथा अपने इष्ट उद्देश्यों को मूर्तरूप देने हेतु रचनात्मक कार्यों में जुटा हुआ है। संस्थान के अभ्युदय/उत्थान में समस्त आचार्यों एवं मुनिराजों का आशीर्वाद मिल रहा है।

अनेकान्त ज्ञान मन्दिर (शोध संस्थान) के उद्देश्य

1. जैन दर्शन/धर्म/संस्कृति/साहित्य विषयक प्राचीन हस्तलिखित प्रकाशित/अप्रकाशित ग्रन्थों/पाण्डुलिपियों का अन्वेषण, एकत्रीकरण, सूचीकरण एवं वैज्ञानिक तरीके से संरक्षित करना।
2. अप्रकाशित पाण्डुलिपियों का प्रकाशन करवाना।
3. जैन विद्याओं के अध्येताओं व शोधार्थियों को शोध अध्ययन एवं मुनिसंघों के पठन-पाठन हेतु जैनागम साहित्य सुलभ कराना व अन्य आवश्यक संसाधन जुटाना।
4. सेवानिवृत्त प्रज्ञापुरुषों, श्रावकों एवं त्यागीवृन्दों के लिये स्वाध्याय/शोधाध्ययन सात्विक चर्या के साथ उन्हें संयमाचरण का मार्ग प्रशस्त करने हेतु अनेकान्त प्रज्ञाश्रम/समाधि साधना केन्द्र के अन्तर्गत समस्त सुविधाओं के संसाधन जुटाना।

संस्थान द्वारा संचालित गतिविधियाँ

1. **पाण्डुलिपियों का संग्रहण** – अनेक असुरक्षित स्थलों से प्राचीन हस्तलिखित ग्रन्थों का 'शास्त्रोद्धार शास्त्र सुरक्षा अभियान' के अन्तर्गत संकलन का कार्य द्रुत गति से चल रहा है। 15 प्रान्तों के लगभग 450 स्थलों से 8000 हस्तलिखित ग्रन्थों का संकलन करके सूचीकरण का कार्य किया जा चुका है। इन ग्रन्थों का परिचय अनेकान्त भवन ग्रन्थ रत्नावली 1, 2, 3 के माध्यम से पुस्तकाकार के रूप में संस्थान द्वारा प्रकाशित किया जा चुका है।
2. **पाण्डुलिपियों का कम्प्यूटराइजेशन** – शास्त्र भण्डार के सभी हजारों ग्रन्थों को सूचीबद्ध करना तथा उल्लेखनीय विशिष्ट शास्त्रों की सी.डी. बनाने के कार्य हेतु संस्थान सचेष्ट है, ताकि सभी का एकत्र संकलन होकर संरक्षित हो सकें, इनका उपयोग शोधार्थी भी कर सकें।
3. **शोध ग्रन्थालय** – इसमें अद्यतन धर्म, सिद्धान्त, अध्यात्म, न्याय, व्याकरण, पुराण, बाल साहित्य और दार्शनिक विषयों से संबंधित लगभग 8000 से भी अधिक ग्रन्थों का संकलन किया जा चुका है। ग्रन्थालय में लगभग 90 साप्ताहिक, पाक्षिक, मासिक, त्रैमासिक शोध पत्रिकाएँ नियमित रूप से आती हैं। शोध ग्रन्थालय विशाल 2 हालों में व्यवस्थित रूप से स्थापित किया गया है, ग्रन्थराज लगभग 70 अलमारियों में विराजित हैं। इन ग्रन्थों का उपयोग स्थानीय श्रावकों के अलावा शोधार्थियों, मुनि संघों में भी किया जाता है।
4. **अनेकान्त दर्पण द्विमासिक पत्रिका प्रकाशन** – अनेकान्त ज्ञान मन्दिर की गतिविधियों एवं शोधपरक प्रवृत्तियों को बढ़ावा देने के उद्देश्य से संस्था द्वारा शोध पत्रिका का प्रकाशन किया जाता है।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

5. **अतिथि भोजनालय** - शोध संस्थान में आगत त्यागी व्रतियों, विद्वानों एवं अतिथियों को शुद्ध भोजन उपलब्ध हो, इस दृष्टि से भोजनशाला सुचारू रूप से दानदाताओं के सहयोग से चल रही है।
6. **प्रशिक्षण शिविरों का आयोजन** - शोध संस्थान द्वारा समाज में धार्मिक एवं नैतिक सदाचरण के प्रचार-प्रसार हेतु प्रशिक्षण शिविरों का आयोजन स्थानीय एवं अन्य नगरों में वृहद् स्तर पर किया जाता है। पूजन प्रशिक्षण शिविर एवं प्राकृत भाषा प्रशिक्षण शिविरों के माध्यम से संस्थान की एक अलग पहचान बनती जा रही है।
7. **हस्तलिखित ग्रन्थ प्रदर्शनी** - संस्थान द्वारा देश के प्रमुख शहरों में इस प्रदर्शनी का आयोजन इस उद्देश्य से किया जा चुका है कि युवा पीढ़ी एवं समाज हमारी अमूल्य धरोहर हस्तलिखित ग्रन्थ, ताड़पत्र ग्रन्थों का परिचय प्राप्त कर इसके संरक्षण हेतु आगे आयें।
8. **अनेकान्त पाण्डुलिपि संरक्षण केन्द्र** - संस्थान ने वर्ष 2002 में इस केन्द्र को स्थापित किया है। इसके माध्यम से नष्ट हो रही दुर्लभ पाण्डुलिपियों को विभिन्न प्रकार के रासायनिक पदार्थों एवं वैज्ञानिक तरीके से सुरक्षित किया जाता है।
9. **विभिन्न स्थानों पर अनेकान्त वाचनालयों की स्थापना** - भगवान महावीर स्वामी की 2600 वीं जन्म जयन्ती के पावन प्रसंग पर 26 स्थानों पर अनेकान्त वाचनालयों की स्थापना करने का उपक्रम संस्थान द्वारा किया जा चुका है। अभी तक 17 स्थानों पर ये वाचनालय प्रारम्भ किये जा चुके हैं।

संस्थान का आगामी रूप

श्रुतधाम के रूप में संस्थान का आगामी स्वरूप श्रुतोपासकों के लिये निकट भविष्य में देखने को मिलेगा। वर्ष 2002 में बीना शहर के निकट बीना-खुरई मार्ग पर 9 एकड़ भूमि क्रय कर इसके निर्माण का कार्य प्रारम्भ किया जा चुका है। कुएं का निर्माण एवं समस्त भूमि की कम्पाउण्ड वाल (चारदीवारी) का कार्य पूर्ण किया जा चुका है। वीर शासन जयंती 2003 को नंदनवन का भी शुभारम्भ कर सम्पूर्ण परिसर को हरे-भरे फलदार वृक्षों से समन्वित किया जा रहा है। इस भूमि पर अनेक प्रकार की योजनाएँ उदार दानदाताओं के आर्थिक सहयोग से सम्पन्न की जानी हैं। जिनमें से कतिपय योजनाएँ निम्न प्रकार है -

1. **अनेकान्त प्रज्ञाश्रम/समाधि साधना केन्द्र** - सेवा निवृत्त प्रज्ञापुरुष, त्यागी-व्रती भाई अथवा समाधि पूर्वक मरण के इच्छुक ज्ञान पिपासा शांत करते हुए केन्द्र में रहकर साधना कर सकते हैं। यह केन्द्र शीघ्र ही निकट भविष्य में प्रारम्भ होगा।
2. **अनुयोग मन्दिर** - शोध संस्थान के समस्त ग्रन्थों को विनय पूर्वक विराजमान करने के लिये श्रुतवेदिका के साथ इस मन्दिर का निर्माण होगा। यह मन्दिर भी अपने आप में एक अनूठा मन्दिर होगा।
3. **तीर्थंकर उद्यान** - तीर्थंकरों ने जिन वृक्षों के नीचे केवलज्ञान प्राप्त किया है, उन वृक्षों को इस उद्यान के अन्तर्गत विकसित किया जायेगा। प्रत्येक वृक्ष के नीचे ध्यान कुटी रहेगी, साथ ही प्रत्येक तीर्थंकर के चरण चिन्ह एवं तीर्थंकर का परिचय भी रहेगा।
4. **वर्णी संग्रहालय/दुर्लभ पाण्डुलिपि प्रदर्शनी कक्ष**
5. **जिनालय**
6. **देशना मण्डप**
7. **छात्रावास**
8. **धर्मशाला आदि**

* संस्थापक - अनेकान्त ज्ञान मन्दिर,
बीना (सागर) म.प्र.

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

अर्हत् वचन
कुन्दकुन्द ज्ञानपीठ, इन्दौर

जैन पाण्डुलिपि सूचीकरण प्रशिक्षण शिविर

इन्दौर, 19 से 21 सितम्बर 2003

■ अनुपम जैन *

भगवान महावीर 2600 वाँ जन्म जयन्ती महोत्सव कार्यक्रमों की श्रृंखला में संस्कृति मंत्रालय - भारत सरकार द्वारा राष्ट्रीय अभिलेखागार, नई दिल्ली के मार्गदर्शन में जैन पाण्डुलिपियों की राष्ट्रीय पंजी **(National Register of Jaina Manuscripts)** के निर्माण का निश्चय किया गया है। इस क्रम में राष्ट्रीय अभिलेखागार **(National Archives of India)** द्वारा चयनित नोडल एजेन्सी कुन्दकुन्द ज्ञानपीठ, इन्दौर द्वारा मध्यप्रदेश, महाराष्ट्र, छत्तीसगढ़ एवं उत्तरप्रदेश के चुनिन्दा जिलों में जैन पाण्डुलिपियों के सूचीकरण का कार्य गतिमान है। इस सूचीकरण के अन्तर्गत संकलित जानकारी के आधार पर **e-catalogue** तैयार किया जा रहा है। यह कार्य भी प्रगति पर है।

शिविर को सम्बोधित करते हुए अनेकान्त ज्ञान मन्दिर बीना के संस्थापक ब्र. संदीप जैन 'सरल'

कुन्दकुन्द ज्ञानपीठ को आबंटित क्षेत्र में गाँव - गाँव में विकीर्ण लक्षाधिक पाण्डुलिपियों के सर्वेक्षण, सूचीकरण एवं प्रारम्भिक संरक्षण हेतु प्रशिक्षित मानवशक्ति प्राथमिक आवश्यकता है। इस कार्य हेतु कुन्दकुन्द ज्ञानपीठ, इन्दौर द्वारा अब तक ज्ञानपीठ में 3 प्रशिक्षण शिविर आयोजित किये जा चुके हैं -

1. **16 - 18 मई 2003**
2. **22 - 24 जुलाई 2003**
3. **19 - 21 सितम्बर 2003**

इनमें से यह तृतीय शिविर अत्यन्त महत्वपूर्ण एवं व्यापक था। इस शिविर में संलग्न सूची के अनुसार 40 प्रशिक्षणार्थियों ने प्रशिक्षण प्राप्त किया। इस प्रशिक्षण में प्रशिक्षक के रूप में निम्नांकित 5 विद्वानों ने सक्रिय भूमिका का निर्वाह किया -

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

1. **डॉ. प्रमोद मेहरा**, उपनिदेशक, राष्ट्रीय अभिलेखागार, **नई दिल्ली**
2. **ब्र. संदीप जैन 'सरल'**, अध्यक्ष, अनेकान्त ज्ञान मन्दिर (शोध संस्थान), **बीना**
3. **डॉ. संजीव सराफ**, पुस्तकालयाध्यक्ष, शासकीय महाविद्यालय, **पथरिया** जिला सागर
4. **डॉ. महेन्द्रकुमार जैन 'मनुज'**, शोधाधिकारी, सिरिभूवलय परियोजना, कुन्दकुन्द ज्ञानपीठ, **इन्दौर**
5. **ब्र. रजनी जैन**, शोध छात्रा, कुन्दकुन्द ज्ञानपीठ, **इन्दौर**

19 सितम्बर 2003 को शिविर का उद्घाटन पूर्व राजदूत डॉ. एन. पी. जैन, इन्दौर की अध्यक्षता में तथा देवी अहिल्या वि.वि., इन्दौर की मानविकी संकाय की संकायाध्यक्ष प्रो. ललिताम्बा के मुख्य आतिथ्य में सम्पन्न हुआ। सत्र का संयोजन ब्र. रजनी जैन, इन्दौर ने किया। शिविर के अन्य सत्र 19 सितम्बर 2003 को अपरान्ह 4.00 बजे, रात्रि 8.00 बजे, 20 सितम्बर 2003 को प्रात: 9.00 बजे, 11.00 बजे, मध्यान्ह 2.30 बजे, सायंकाल 4.00 बजे एवं रात्रि 8.00 बजे सम्पन्न हुए। 20 सितम्बर को ग्रन्थ भंडार के व्यवस्थापन पर डॉ. अनुपम जैन ने व्यावहारिक मार्गदर्शन दिया। 21 सितम्बर को प्रात: पांडुलिपि संरक्षण पर डॉ. प्रमोद मेहरा का विशेष व्याख्यान हुआ।

भंडार के व्यवस्थापन पर अनुदेश देते डॉ. अनुपम जैन (इन्दौर)

इन सत्रों में दृश्य-श्रृव्य उपकरणों की मदद से तथा विशेष पाण्डुलिपियों के माध्यम से सूचीकरण का प्रशिक्षण सूक्ष्मता से दिया गया। प्रशिक्षणार्थियों ने प्रायोगिक सत्रों के माध्यम से सूचीकरण का गहन प्रशिक्षण तो लिया ही, गत 6 माहों में प्राप्त ज्ञान को परस्पर वितरित करते हुए आगत समस्याओं का विशेषज्ञों से समाधान भी प्राप्त किया। राष्ट्रीय अभिलेखागार के उपनिदेशक तथा पाण्डुलिपियों के संरक्षण एवं सूचीकरण में अनेक वर्षों से जुड़े समर्पित विद्वान **डॉ. प्रमोद मेहरा** की उपस्थिति में प्रशिक्षणार्थियों द्वारा व्यक्त विचारों में उनके समर्पण को देखकर अनेक श्रावकों की तो अश्रुधारा बह निकली। चि. सचिन जैन ने जब भाव विभोर होकर कहा कि मैं अपने चार साथियों के साथ बुन्देलखण्ड के कई स्थानों पर गया। बंडा जाने में वर्षा के बीच हमें 8 कि.मी. पैदल चलना पड़ा। जब वहाँ हमें एक पाण्डुलिपि मिली तो हम सबको बहुत प्रसन्नता हुई। प्रश्न संख्या का नहीं

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

है, खुशी इस बात की हुई कि उस सुदूर स्थल पर रखी हुई यह पाण्डुलिपि, जो पता नहीं कब दीमकों का आहार बन जाती और किसी को पता भी नहीं चलता, उसे बचाया जा सका। वहीं से सुदूर अंचल में स्थित एक और ग्राम सुनवाहा पहुँचने पर हमें 16 पाण्डुलिपियाँ प्राप्त हुई। इन प्रशिक्षणार्थियों के समर्पण, लगन, निष्ठा की सभी ने भूरि-भूरि प्रशंसा की। डॉ. मेहरा ने इन प्रशिक्षुओं को अपना आशीर्वाद देते हुए कहा कि पाण्डुलिपि सूचीकरण का कार्य इन सदृश युवाओं के समर्पण से ही सम्पन्न हो सकता है। उन्होंने कहा कि मैं शासन के प्रतिनिधि के रूप में यहाँ उपस्थित हूँ और इस काम में किसी भी प्रकार की बाधा नहीं आने दूंगा। कुन्दकुन्द ज्ञानपीठ द्वारा इस परियोजना के अन्तर्गत किये जाने वाले कार्य प्रशंसनीय एवं अनुकरणीय हैं। डॉ. प्रमोद मेहरा ने कहा कि - ''डॉ. अनुपम जैन की ही योग्यता का ही परिणाम है कि वे हमारे अधिकारियों को अपनी क्षमता से प्रभावित कर सके और इतने अच्छे ढंग से बात रखी कि यह प्रोजेक्ट आपको मिल गया। अन्यथा देश में जैन परियोजनाओं पर चर्चा तो अवश्य हुई किन्तु परिणाम प्राप्त नहीं हुआ।'' 21 सितम्बर 2003 को भी प्रशिक्षणार्थियों ने अपनी शंकाओं का समाधान प्राप्त किया।

प्रो. ए. ए. अब्बासी (पूर्व कुलपति - देवी अहिल्या वि.वि., इन्दौर), प्रो. नलिन के. शास्त्री (कुलसचिव - इन्द्रप्रस्थ वि.वि., नई दिल्ली), प्रो. सुरेशचन्द्र अग्रवाल (प्राध्यापक - गणित, चौधरी चरणसिंह वि.वि., मेरठ), डॉ. एन. पी. जैन (पूर्व राजदूत), डॉ. प्रकाशचन्द जैन, श्री सूरजमल बोबरा (निदेशक - ज्ञानोदय फाउण्डेशन, इन्दौर), डॉ. जे. पी. विद्यालंकार (निदेशक - भोगीलाल लहेरचन्द जैन इन्स्टीट्यूट ऑफ इण्डोलॉजी, दिल्ली), श्री हीरालाल जैन (अध्यक्ष - सत्श्रुत प्रभावना ट्रस्ट, भावनगर), श्री प्रशान्त जैन (श्री देवकुमार जैन प्राच्य विद्या शोध संस्थान, आरा), प्रो. ललिताम्बा (संकायाध्यक्ष - मानविकी संकाय), प्रो. पी. एन. मिश्र (निदेशक - आई.एम.एस.), श्री प्रदीप कासलीवाल (अध्यक्ष - दि. जैन महासमिति ट्रस्ट), श्री माणिकचन्द पाटनी (महामंत्री - दि. जैन महासमिति ट्रस्ट), श्रीमती विमला कासलीवाल (मंत्री - कुन्दकुन्द ज्ञानपीठ परीक्षा संस्थान), श्री अशोक बड़जात्या (राष्ट्रीय अध्यक्ष - दिग. जैन महासमिति), श्री हसमुख गांधी (राष्ट्रीय संयुक्त महामंत्री - दि. जैन महासमिति), श्री रमेश कासलीवाल (सम्पादक - वीर निकलंक), प्रो. राजमल जैन (अन्तरिक्ष वैज्ञानिक - अहमदाबाद), डॉ. एस. ए. भुवनेन्द्रकुमार - कनाड़ा (सम्पादक - जिनमंजरी), श्रीमती मीना जैन (पुस्तकालयाध्यक्ष - शासकीय महाविद्यालय, सिहोरा) आदि विभिन्न सत्रों में उपस्थित रहे तथा इन्होंने सक्रिय मार्गदर्शन उपलब्ध कराया। यह शिविर सभी दृष्टियों में अत्यन्त सफल रहा। संयोजन में श्री जयसेन जैन, श्री अरविन्दकुमार जैन एवं डॉ. सुशीला सालगिया का सहयोग प्रशंसनीय रहा।

इन प्रशिक्षण शिविरों में निम्न प्रतिभागियों ने प्रशिक्षण प्राप्त किया -

1. श्रीमती ललिता सेठी, इन्दौर
2. ब्र. आरती जैन, फिरोजाबाद
3. श्री राकेश जैन, इन्दौर
4. श्री चक्रेश जैन
5. पं. राजेन्द्र जैन, उज्जैन
6. श्री सतीश जैन, इन्दौर
7. श्री धीरेन्द्रकुमार जैन, इन्दौर
8. श्री सचिनकुमार जैन, इन्दौर
9. श्री सन्देश जैन, इन्दौर
10. श्री नवीनकुमार वर्मा, इन्दौर
11. कु. वन्दना शर्मा, इन्दौर
12. श्री मुकेश जैन, इन्दौर
13. श्रीमती मनीषा जैन, इन्दौर
14. कु. रूचि जैन, इन्दौर
15. कु. दीपिका जैन, इन्दौर
16. कु. नूपुर श्रीमाल, इन्दौर
17. कु. पायल श्रीमाल, इन्दौर
18. श्री विजयकुमार जैन, इन्दौर

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

19. श्री पुष्पेन्द्रकुमार जैन, इन्दौर
20. श्री कपिल तिवारी, इन्दौर
21. श्री विजय गुजरिया, इन्दौर
22. श्री विशालकुमार जैन, इन्दौर
23. श्री संजय जैन, इन्दौर
24. श्री रुपेशकुमार जैन, खण्डवा
25. श्री नेमीचन्द्र जैन, इन्दौर
26. श्री अनिमेष रावंका, इन्दौर
27. श्री नरेन्द्रकुमार जैन, उज्जैन
28. श्री भाऊराव बदनोरे, उज्जैन
29. श्री नागेन्द्रकुमार जैन, टीकमगढ़
30. ब्र. रेखा जैन, टीकमगढ़
31. श्री अखिलेश जैन, छतरपुर
32. श्री शैलेन्द्र मिश्रा, इन्दौर
33. श्री मनीष जैन, नेमीनगर - इन्दौर
34. श्री मनीषकुमार जैन, इन्दौर
35. श्री वीरेन्द्रकुमार जैन, इन्दौर
36. श्रीमती आशा जैन, इन्दौर
37. श्रीमती अनुपमा जैन, इन्दौर
38. श्री चन्द्रप्रकाश जैन 'चन्दर', सोनागिर
39. श्री धीरजकुमार जैन, इन्दौर
40. कु. मेघा श्रीवास्तव, इन्दौर
41. श्री मोहन जैन, भिण्ड
42. ब्र. महेन्द्र जैन, जबलपुर
43. श्री नरेन्द्रकुमार दीक्षित, इन्दौर
44. कु. रूपाली लुहाड़िया, उज्जैन
45. श्री राजेशकुमार जैन, इन्दौर
46. श्री राकेशकुमार जैन, पवई
47. श्री सुनीलकुमार पटेल, इन्दौर
48. श्री विवेक जैन, रायपुर
49. श्रीमती वीणा जैन, सिहोरा
50. श्री ब्रह्मप्रकाश शर्मा, तिजारा
51. श्री अनुराग जैन, जयपुर
52. श्री आशीष नाहटा, इन्दौर
53. श्री अनुभवकुमार जैन, इन्दौर
54. श्री अरविन्द दुबे, इन्दौर
55. श्री धीरजकुमार जैन, इन्दौर
56. श्री दिपक जाधव, बड़वानी
57. श्री हेमराज जैन, इन्दौर
58. श्री जीवनप्रकाश जैन, इन्दौर
59. श्री कोमलचन्द्र जैन, इन्दौर
60. श्री नीरज जैन, इन्दौर
61. श्री प्रकाशचन्द्र जैन, इन्दौर
62. श्री रविकान्त वत्स, मुस्तफापुर (बिहार)
63. कु. सीमा जैन, उज्जैन
64. श्री सतीश जैन, उज्जैन
65. श्री विजय जैन, इन्दौर

* मानद सचिव - कुन्दकुन्द ज्ञानपीठ
584, म.गांधी मार्ग, तुकोगंज, **इन्दौर** - 452 001

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

'पांडुलिपि सूचीकरण प्रशिक्षण शिविर' के दृश्य

शिविर के उद्घाटन सत्र के मंच का एक दृश्य– क्रमशः
डॉ. महेन्द्रकुमार जैन 'मनुज' (प्रशिक्षक), डॉ. एन.पी. जैन (पूर्व राजदूत), प्रो. ललिताम्बा (डीन–देवी अहिल्या वि.वि.), ब्र. रजनी जैन एवं डॉ. प्रकाशचन्द्र जैन

प्रशिक्षण प्राप्त कर रहे शिविरार्थियों का एक दल

शिविर के एक सत्र का दीप प्रज्ज्वलित कर शुभारम्भ करते प्रो. एस.सी. अग्रवाल (मेरठ)। समीप हैं श्री हीरालाल जैन (भावनगर), प्रो. जे.पी. विद्यालंकार (दिल्ली), डॉ. (श्रीमती) सुशीला सालगिया, डॉ. अनुपम जैन (इंदौर), श्री प्रशान्त जैन (आरा), श्री माणिकचन्द पाटनी (इन्दौर), डॉ. नलिन के. शास्त्री, डॉ. संजीव सराफ(सागर) एवं श्री अजितकुमारसिंह कासलीवाल (इंदौर)

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

'पांडुलिपि सूचीकरण प्रशिक्षण शिविर' के दृश्य

रात्रिकालीन सत्र को सम्बोधित करते हुए डॉ. प्रमोद मेहरा, उपनिदेशक – राष्ट्रीय अभिलेखागार, नई दिल्ली।

सत्र की अध्यक्षता करते हुए प्रो. पी.एन. मिश्र (बायें से चौथे), मंचासीन (बायें से) ब्र. संदीप 'सरल' (बीना), डॉ. मेहरा (दिल्ली), श्री हीरालाल जैन (भावनागर), प्रो. विद्यालंकार (दिल्ली) एवं श्री प्रशांत जैन (आरा)

एक सत्र को सम्बोधित करते हुए डॉ. संजीव सराफ (सागर)

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

अर्हत् वचन
कुन्दकुन्द ज्ञानपीठ, इन्दौर

अर्हत् वचन पुरस्कार समर्पण समारोह एवं कुन्दकुन्द व्याख्यान

इन्दौर, 21.09.03

■ अनुपम जैन *

कुन्दकुन्द ज्ञानपीठ, इन्दौर द्वारा वर्ष 1988 से अनवरत रूप से प्रकाशित शोध त्रैमासिकी अर्हत् वचन में एक वर्ष के 4 अंकों में प्रकाशित होने वाले आलेखों में से 3 सर्वश्रेष्ठ आलेखों का चयन कर उन्हें अर्हत् वचन पुरस्कार से प्रति वर्ष सम्मानित किया जाता है। 1990 से प्रारम्भ किये गये इस पुरस्कार के अन्तर्गत प्रथम, द्वितीय एवं तृतीय स्थान प्राप्त लेख के लेखकों को क्रमशः रु. 5,000/-, 3,000/- एवं 2,000/- की राशि, शाल, श्रीफल एवं प्रशस्ति प्रदान की जाती है। लेखों का चयन विशिष्ट विद्वानों के निर्णायक मंडल द्वारा किया जाता है।

वर्ष - 13 (2001) हेतु प्रो. ए. ए. अब्बासी, प्रो. गणेश कावड़िया तथा श्री सूरजमल बोबरा के त्रिसदस्यीय निर्णायक मंडल की अनुशंसा के आधार पर निम्नलिखित 3 लेखकों को पुरस्कृत करने का निर्णय लिया गया -

1. **Prof. Rajmal Jain, Ahmedabad,** *'The Solar System in Jainism and Modern Astronomy'.*
2. **Shri Satish Kumar Jain, Delhi,** *'Jainism Abroad'.*
3. **डॉ. मुकुलराज मेहता, वाराणसी,** *'जैन दर्शन में आस्रव तत्व का स्वरूप'।*

वर्ष - 14 (2002) हेतु डॉ. प्रकाशचन्द्र जैन, प्रो. श्रेणिक बंडी तथा प्रो. सी. के. तिवारी के त्रिसदस्यीय निर्णायक मंडल की अनुशंसा के आधार पर निम्न तीन लेखकों को पुरस्कृत करने का निर्णय लिया गया -

1. **Dr. S.A. Bhuvanendra Kumar, Canada,** *'The Jaina Hagiography and the Satkhandāgama'.*
2. **Smt. Pragati Jain, Indore,** *'Ācārya Vīrasena and his Mathematical Contribution'.*
3. **डॉ. स्नेहरानी जैन, सागर,** *'काल विषयक दृष्टिकोण'।*

इन दोनों वर्षों का संयुक्त पुरस्कार समर्पण समारोह राष्ट्रीय अभिलेखागार, नई दिल्ली के उपनिदेशक **डॉ. प्रमोद मेहरा** के मुख्य आतिथ्य तथा **श्री देवकुमारसिंह कासलीवाल** की अध्यक्षता में सम्पन्न हुआ। सभा में प्रो. जे. पी. विद्यालंकार (निदेशक - भोगीलाल लहेरचन्द प्राच्य विद्या संस्थान, नई दिल्ली), ब्र. संदीप जैन 'सरल' (अध्यक्ष - अनेकान्त ज्ञान मन्दिर, बीना), श्री हीरालाल जैन (अध्यक्ष - सत्श्रुत प्रभावना ट्रस्ट, भावनगर), श्री प्रशान्त जैन (देवकुमार जैन प्राच्यविद्या शोधकेन्द्र, आरा) विशिष्ट अतिथि के रूप में उपस्थित थे। सभा में पूर्व कुलपति प्रो. ए. ए. अब्बासी (मानद निदेशक - कुन्दकुन्द ज्ञानपीठ, इन्दौर), प्रो. नलिन के. शास्त्री (कुलसचिव - गुरु गोविन्दसिंह इन्द्रप्रस्थ वि.वि., नई दिल्ली), प्रो. सुरेशचन्द्र अग्रवाल (प्राध्यापक - गणित विभाग, चौधरी चरणसिंह वि.वि., मेरठ) तथा श्री अजितकुमारसिंह कासलीवाल (कोषाध्यक्ष - ज्ञानपीठ) ने अपने विचार व्यक्त किये।

निर्णायक मंडल के प्रतिनिधि के रूप में प्रो. श्रेणिक बंडी (विभागाध्यक्ष - गणित, होलकर विज्ञान महाविद्यालय, इन्दौर) ने निर्णय की घोषणा की। इस अवसर पर प्रो. राजमल जैन

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

(अंतरिक्ष वैज्ञानिक, राष्ट्रीय भौतिकी प्रयोगशाला, अहमदाबाद) का **'सूर्य एवं पृथ्वी के पर्यावरण'** पर अत्यन्त रोचक एवं ज्ञानवर्द्धक व्याख्यान हुआ जिसमें उन्होंने प्रतिपादित किया कि सूर्य और पृथ्वी के संबंध में नवीनतम शोध जैन दर्शन के निष्कर्षों को पुष्ट कर रही हैं। अनेक ऐसे रहस्य भी ज्ञात हो रहे हैं जो जैनाचार्यों को तो सहस्रों वर्ष पूर्व ज्ञात थे। किन्तु आधुनिक विज्ञान आज भी असमंजस की स्थिति में है। स्लाइड की मदद से दिया गया उनका यह व्याख्यान बहुत सराहा गया। श्रोताओं ने आपका एक व्याख्यान निकट भविष्य में पुनः आयोजित करने का आग्रह किया। कनाडा से पधारे ब्राह्मी सोसायटी के अध्यक्ष **डॉ. एस. ए. भुवनेन्द्रकुमार** ने विदेशों, विशेषतः अमेरिका एवं कनाड़ा, में जैन विद्याओं के अध्ययन की स्थिति पर विशेष रूप से प्रकाश डाला।

प्रो. ललिताम्बा (डीन - देवी अहिल्या वि.वि.) का सम्मान करते हुए प्रो. कल्पना मेधावत (होलकर विज्ञान महाविद्यालय, इन्दौर) तथा प्रो. संगीता मेहता (शास. कला एवं वाणिज्य महाविद्यालय, इन्दौर)

मुख्य अतिथि डॉ. प्रमोद मेहरा, दिल्ली ने कागज, ताड़पत्र, भोजपत्र आदि पर लिखित पाण्डुलिपियों के संरक्षण की पारम्परिक एवं आधुनिक विधियों पर प्रकाश डालते हुए राष्ट्रीय अभिलेखागार की इस सन्दर्भ में भूमिका और कार्य पद्धति को सरल और सहज रूप में प्रस्तुत किया। प्रोजेक्टर के माध्यम से आपने सम्पूर्ण कार्य विधि को सूक्ष्मता से स्पष्ट किया जिसे उपस्थित विद्वानों ने बहुत सराहा। निकट भविष्य में इन व्याख्यानों के पूर्ण पाठ प्राप्त होने पर उन्हें प्रकाशित किया जा सकेगा। पुरस्कार समर्पण समारोह एवं कुन्दकुन्द व्याख्यान के कतिपय दृश्य आगामी पृष्ठों पर दृष्टव्य हैं।

इस अवसर पर देवी अहिल्या वि.वि. के मानविकी संकाय की अध्यक्ष **प्रो. ललिताम्बाजी** तथा कुन्दकुन्द ज्ञानपीठ की शोध छात्रा डॉ. अनुपमा छाजेड़ के शोध निदेशक **डॉ. पुरुषोत्तम दुबे** का भी उनके निस्पृह अकादमिक योगदान हेतु सम्मान किया गया। कार्यक्रम के संयोजन में श्री जयसेन जैन एवं श्री अरविन्दकुमार जैन की उल्लेखनीय भूमिका रही। डॉ. प्रकाशचन्द जैन, श्रीमती विमला कासलीवाल, श्री रमेश कासलीवाल, डॉ. संगीता मेहता, डॉ. सुशीला सालगिया, डॉ. महेन्द्रकुमार जैन 'मनुज', प्रो. कल्पना मेधावत तथा नगर के अनेकों प्राध्यापकों ने उपस्थित रहकर कार्यक्रम की गरिमा में अभिवृद्धि की। ज्ञानपीठ की ओर से सचिव डॉ. अनुपम जैन ने पुरस्कृत विद्वानों को बधाई देते हुए सभी उपस्थित विद्वत्जनों एवं कार्यकर्ताओं का आभार माना।

* मानद सचिव - कुन्दकुन्द ज्ञानपीठ
584, म.गांधी मार्ग, तुकोगंज, **इन्दौर** - 452 001

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

'अर्हत् वचन पुरस्कार समर्पण समारोह' के दृश्य

पुरस्कार समर्पण समारोह को सम्बोधित करते हुए संस्था के मानद निदेशक प्रो. ए.ए. अब्बासी (पूर्व कुलपति)

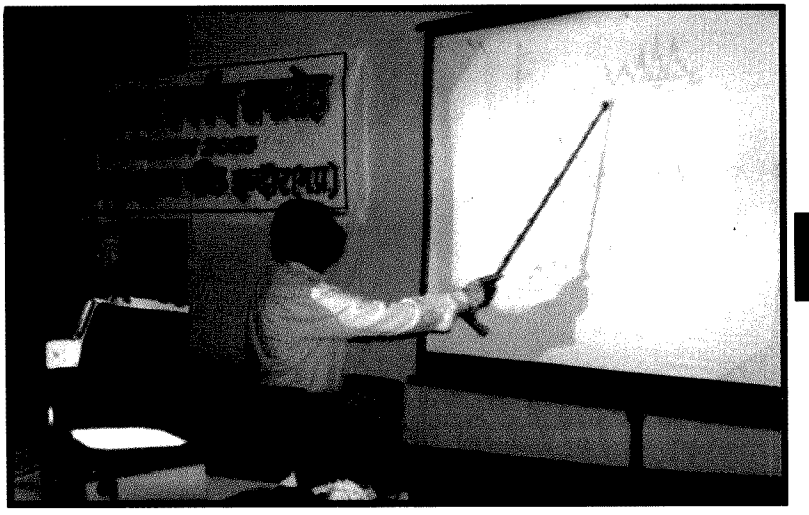

प्रो. राजमल जैन, अहमदाबाद सम्बोधित करते हुए

पुरस्कार समर्पण समारोह के अवसर पर आयोजित व्याख्यान सभा को सम्बोधित करते हुए डॉ. प्रमोद मेहरा, उपनिदेशक– राष्ट्रीय अभिलेखागार, दिली

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

'अर्हत् वचन पुरस्कार समर्पण समारोह' के दृश्य

प्रो. राजमल जैन, अहमदाबाद को प्रथम अर्हत् वचन पुरस्कार – 2001 से सम्मानित करते हुए प्रो. नलिन के. शास्त्री (कुलसचिव)। समीप हैं प्रो. एस. के. बंडी (विभागाध्यक्ष – गणित)

डॉ. एस. ए. भुवनेन्द्रकुमार, कनाडा, को प्रथम अर्हत् वचन पुरस्कार– 2002 से सम्मानित करते हुए डॉ. प्रमोद मेहरा। समीप खडे हैं डॉ. अनुपम जैन, प्रो. एस.के. बंडी, प्रो. नलिन के. शास्त्री एवं प्रो. ए.ए. अब्बासी

श्रीमती प्रगति जैन, इन्दौर को द्वितीय अर्हत् वचन पुरस्कार – 2002 से सम्मानित करते हुए डॉ. मेहरा।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

अर्हत् वचन
कुन्दकुन्द ज्ञानपीठ, इन्दौर

जैन पुस्तकालय एवं शोध संस्थान

राष्ट्रीय संगोष्ठी, सोनागिर, 13 - 14 सितम्बर 2003

■ डॉ. अनुपम जैन *

जैन धर्म के इतिहास में पहली बार सराकोद्धारक, राष्ट्र संत, शाकाहार प्रवर्तक, उपाध्यायरत्न, **परमपूज्य 108 श्री ज्ञानसागरजी महाराज** के सान्निध्य में श्रुत संवर्द्धन संस्थान, मेरठ तथा संस्कृति संरक्षण संस्थान, दिल्ली के संयुक्त तत्वावधान तथा **डॉ. संजीव सराफ, सागर** के संयोजकत्व में 'जैन पुस्तकालय एवं शोध संस्थान' विषय पर राष्ट्रीय संगोष्ठी श्री सोनागिर दिगम्बर जैन सिद्धक्षेत्र संरक्षिणी कमेटी के सहयोग से 13 - 14 सितम्बर 2003 को सम्पन्न हुई। इसमें देश - विदेश के लगभग 60 प्रतिभागियों ने पाँच सत्रों में भाग लिया। विभिन्न सत्रों का संक्षिप्त विवरण निम्नवत् है -

दि. 13.9.03, मध्यान्ह 2.00 बजे, उद्घाटन एवं प्रथम सत्र

अध्यक्षता : श्री डालचन्द जैन
पूर्व सांसद व अध्यक्ष सोनागिर सिद्ध क्षेत्र संरक्षिणी कमेटी

मुख्य अतिथि : श्री राजेन्द्र भारती, विधायक, दतिया

विशिष्ट अतिथि : डॉ. अनुपम जैन, मानद सचिव - कुन्दकुन्द ज्ञानपीठ, इन्दौर एवं श्री प्रमोद जैन, अध्यक्ष - सोसायटी फार सराक वेलफेअर एण्ड डेवलपमेन्ट, सरधना

मंगलाचरण : ब्र. अनीता दीदी व ब्र. मंजुला दीदी संघस्थ

वक्ता एवं विषय

1. **डॉ. अनुपम जैन, इन्दौर** *जैन शोध संस्थानों की भूमिका*
2. **प्रो. शुभचन्द्र, मैसूर,** *कर्नाटक में जैन पुस्तकालय/शोध संस्थान*
3. **प्रो. एस. ए. भुवनेन्द्रकुमार, कनाड़ा,** *नार्थ अमेरिका में जैन शोध संस्थान*
4. **श्री गोपीनाथ कालमोर, खण्डवा,** *जैन पुस्तकालय/शोध संस्थान की भूमिका*
5. **श्री के. कृष्णराव, सागर (वि.वि.),** *इन्टरनेट पर जैन समाज*
6. **श्री नरेश पाठक, पन्ना,** *म. प्र. में जैन धर्म का विकास*
7. **श्री गुलाबचन्द जैन (पटना वाले), सागर,** *मूर्ति एवं शास्त्र संरक्षण*

संगोष्ठी का शुभारम्भ ब्र. अनीता दीदी व ब्र. मंजुला दीदी के मंगलाचरण के साथ श्री डालचन्द जैन (पूर्व सांसद व कोषाध्यक्ष - म. प्र. कांग्रेस कमेटी) के दीप प्रज्ज्वलन से हुआ। उन्होंने चन्द्रप्रभु भगवान के चित्र का अनावरण भी किया। इस अवसर पर वीर निकलंक के सम्पादक श्री रमेश कासलीवाल ने भजन प्रस्तुत किया। श्री डालचन्द जैन ने कहा कि जैन ग्रन्थों को पूजने की परम्परा प्राचीन समय से चली आ रही है। जरूरत है इसे जन - जन तक पहुँचाने की। उन्होंने विद्वानों से निवेदन किया कि वर्तमान में हमारे जितने भी ग्रन्थ हैं उनका सूचीकरण किया जाये। कुन्दकुन्द ज्ञानपीठ द्वारा पूरे मध्यप्रदेश, महाराष्ट्र एवं अन्य प्रान्तों में जो शास्त्रों का सूचीकरण किया जा रहा है वह प्रशंसनीय है।

मुख्य अतिथि के रूप में दतिया के विधायक श्री राजेन्द्र भारती ने कहा कि जैन धर्म के सबसे बड़े सूत्र अहिंसा के बल पर भारत को आजादी मिली। यह अहिंसा की सबसे बड़ी विजय है। ऐसा विश्व इतिहास में और कहीं देखने को नहीं मिलता है।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

उपाध्याय श्री ज्ञानसागरजी महाराज ने अपने विशेष प्रवचनों में कहा कि जैन पुस्तकालय एवं शोध संस्थान को लेकर अखिल भारतीय संगोष्ठी सामान्य रूप से शायद होती रही होगी किन्तु दिगम्बर जैन समाज में विशेष रूप से इस प्रकार के आयोजन के प्रति अतीत में कोई जानकारी नहीं रही है। जैन दर्शन अपनी अनेक विशेषताओं को लिये हुए है। आज जरूरत है संस्कृति के प्रति जागरूकता की है। हम लायब्रेरी के प्रति ध्यान दें तथा आधुनिक तकनीकों को अपनायें।

विशिष्ट अतिथि कुन्दकुन्द ज्ञानपीठ के मानद सचिव व अर्हत् वचन के सम्पादक डॉ. अनुपम जैन, इन्दौर तथा सोसायटी फार सराक वेलफेअर एण्ड डेवलपमेन्ट के अध्यक्ष श्री प्रमोद जैन, सरधना थे। डॉ. अनुपम जैन ने संगोष्ठी का विषय प्रवर्तन करते हुए विस्तार से शोध संस्थाओं की स्थापना के पीछे मनोवृत्ति, आवश्यकता, उपादेयता, वर्तमान स्थिति, समस्याओं एवं समाधान की दिशा प्रस्तुत की।

दि. 13.9.03, रात्रि 7.30 बजे, द्वितीय सत्र

अध्यक्षता : प्रो. एस. ए. सीमन्धरकुमार, बैंगलोर
मुख्य अतिथि : श्री एस. सी. जैन, दिल्ली
वक्ता एवं विषय

1. **श्री सुनील जैन, सागर,** *जैन ज्योतिष*
2. **श्री अजित जैन 'जलज', ककरवाहा,**
   अहिंसा और अनेकान्त के वैश्वीकरण में जैन संस्थान
3. **डॉ. मुकेश जैन, जबलपुर,** *जैन कर्म सिद्धान्त सूचना केन्द्र की आवश्यकता*
4. **ब्र. राकेश** जैन (सर्वोदय **विद्यापीठ, भाग्योदय), सागर,**
   जैन पुस्तकालय नेट वर्किंग
5. **श्री सुनील जैन मालथौन, सागर,** *जैन साहित्य के प्रसार में मीडिया*
6. **एड. दिनेश जैन, सागर,** *आचार्य तारण स्वामी/तारण पंथ द्वारा शास्त्र संरक्षण*
7. **एड. वीरेन्द्र जैन, सागर,** *भारतीय संविधान में अल्पसंख्यकों के अधिकार*
8. **डॉ. सुरेन्द्रकुमार जैन, भगवां,** *जैन पाण्डुलिपियों में चित्रांकन*
9. **श्री सुनील जैन, कुरवाई,** *जैन पुस्तकालय व्यवस्थापन*
10. **पं. लालचन्द्र 'राकेश', गंजबासोदा,** *श्रुतपंचमी बनाम जैन ग्रन्थों का संरक्षण*

मुख्य अतिथि ने *Some Thoughts on Jain Libraries* तथा अध्यक्ष ने *जैन शोध के स्वरूप* पर अपने विचार प्रस्तुत किये।

दि. 14.9.03, प्रात: 9.00 बजे, तृतीय सत्र

अध्यक्षता : प्रो. बी. के. जैन, अध्यक्ष - वाणिज्य संकाय, डॉ. हरिसिंह गौर वि.वि., सागर
मुख्य अतिथि : श्री मुकेश दांगी, मजिस्ट्रेट, डबरा
वक्ता एवं विषय

1. **प्रो. हनुमानप्रसाद वार्डिया, उदयपुर,** *राजस्थान में जैन पुस्तकालय*
2. **डॉ. (कु.) सीमा जैन, जबलपुर,** *म. प्र. की जैन मूर्ति कला*
3. **डॉ. (श्रीमती) कृष्णा जैन, ग्वालियर,**
   जैन पुस्तकालय में कम्प्यूटर व इन्टरनेट का प्रयोग

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

4. डॉ. विश्वनाथ स्वाई, पुरी (उड़ीसा)
जैन ग्रन्थ भंडार योग शास्त्रम् धर्म शास्त्रीय समीक्षणम्
5. डॉ. डी. के. अग्रवाल, सागर, *जैन पुस्तकालयों की भूमिका*
6. श्रीमती वीणा जैन, पुस्तकालयाध्यक्ष, सिहोरा, *जैन पुस्तकालय सूचना तंत्र*
7. डॉ. अजित जैन, सागर, *जैन पुस्तकालय में कम्प्यूटर अनुप्रयोग*
8. कु. प्रतिभा जैन, जबलपुर, *जैन पुस्तकालयों की समस्याएँ*
9. पं. खेमचन्द जैन, जबलपुर, *अहिंसा और शाकाहार प्रचार*
10. डॉ. (कु.) मालती जैन, मैनपुरी, *शाकाहार प्रचार में जैन पुस्तकालय*

दि. 14.9.03, पूर्वान्ह 11.00 बजे, चतुर्थ सत्र

अध्यक्षता : श्री रामगोपाल गर्ग, ग्वालियर वि.वि, ग्वालियर
मुख्य अतिथि : श्री मणीकान्त सोनी, ग्वालियर (ब्यूरो चीफ - युनीवार्ता)
वक्ता एवं विषय

1. कु. अभिलाषा जैन, रायपुर, *जैन साहित्य के प्रचार में मीडिया*
2. डॉ. नरेन्द्रसिंह, पथरिया, *जैन साहित्य और धर्म का हिन्दी पर प्रभाव*
3. डॉ. (श्रीमती) संगीता मेहता, इन्दौर,
पाण्डुलिपि संरक्षण में महिलाओं की भूमिका
4. कु. अंतिम जैन, पथरिया, *जैन ग्रन्थों के प्रसार में मीडिया*
5. डॉ. प्रभात जैन, बनारस हिन्दू वि.वि,, वाराणसी,
जैन साहित्य के प्रसार में मीडिया
6. डॉ. (श्रीमती) जयन्ती जैन, सागर, *महिला बनाम महिला*
7. श्री मणिकान्त सोनी, ग्वालियर, *जैन धर्म और मीडिया*
8. कु. सुधि अग्रवाल, भोपाल, *जैन साहित्य के प्रसार में मीडिया*
9. ब्र. अनीताजी, संघस्थ, *उपाध्याय ज्ञानसागर और सराक*

दि. 14.9.03, मध्यान्ह 2.00 बजे, पंचम सत्र

अध्यक्षता : प्रो. नलिन के. शास्त्री, कुलसचिव - गुरु गोविन्दसिंह इन्द्रप्रस्थ वि.वि., दिल्ली
मुख्य अतिथि : माननीय श्री इब्राहीम कुरैशी, अध्यक्ष - म. प्र. अल्पसंख्यक आयोग, भोपाल
विशिष्ट अतिथि : डॉ. अनुपम जैन, होल्कर स्वशासी विज्ञान महाविद्यालय, इन्दौर
प्रो. एस. ए. भुवनेन्द्रकुमार (सम्पादक - जिनमंजरी), कनाड़ा
वक्ता एवं विषय

1. डॉ. विवेकानन्द जैन, बनारस हिन्दू वि.वि., वाराणसी,
जैन पुस्तकालयों की नेटवर्किंग
2. डॉ. अशोक जैन, ग्वालियर वि.वि, *जैन पाण्डुलिपियों का संरक्षण/रखरखाव*
3. डॉ. रामगोपाल गर्ग, ग्वालियर वि.वि, *जैन पुस्तकालय नेटवर्किंग*
4. श्री अरिणेन्द्रम भट्टाचार्य, कोलकाता, *विद्या की देवी सरस्वती की जैन प्रतिमाएँ*
5. श्री आशीष द्विवेदी, पत्रकारिता विभाग, ग्वालियर वि.वि.,
जैन साहित्य प्रसार में मीडिया

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

6. **श्री फरहत कुरैशी, भोपाल,** *जैनोलॉजी - जैन सूचना तंत्र की आवश्यकता*
7. **कु. सुधि अग्रवाल, भोपाल,** *जैन साहित्य के प्रसार में मीडिया*
8. **कु. दीपा दास, कोलकाता,** *जैन धर्म की ऐतिहासिकता*
9. **कु. कृष्णाराय (बंगला देश मूल की शोध छात्रा), कोलकाता एवं संचयिका मुखर्जी, कोलकाता,** *जैन पाण्डुलिपियों में कम्प्यूटर अनुप्रयोग*

समापन समारोह के मुख्य अतिथि अल्पसंख्यक आयोग के अध्यक्ष माननीय श्री इब्राहीम कुरैशी ने कहा कि जैन साहित्य के धर्मग्रन्थों में विश्व दर्शन का सार समाया हुआ है। आपने कहा कि जैन धर्म की बागडोर सियासी हाथों में नहीं पहुँची है। जैन मुनि ही इसको सहेजे हुए हैं। इसलिये इसकी करनी कथनी में कोई फर्क नहीं है।

समापन सत्र की अध्यक्षता करते हुए इन्द्रप्रस्थ वि.वि., दिल्ली के कुलसचिव प्रो. नलिन के. शास्त्री ने कहा कि संस्थाओं को समर्पण भाव से पुनर्जागरण की ओर ले जाना होगा क्योंकि संस्थाएँ इमारत बनाने से नहीं चलती है वरन मनुष्यों के समर्पण से चलती है। विशिष्ट अतिथि प्रो. बी. के. जैन (सागर वि.वि.), सेल्सटेक्स कमिश्नर श्री चौहान (मेरठ), मजिस्ट्रेट श्री मुकेश डांगी (डबरा) थे। इस अवसर पर सोनागिर कमेटी के मंत्री श्री ज्ञानचन्द जैन, संस्कृति संरक्षण संस्थान, दिल्ली के कार्यकर्ताओं सहित संगोष्ठी संयोजक **डॉ. संजीव सराफ** को सम्मानित किया गया। डॉ. सराफ ने इस सम्मान का श्रेय जैनोलॉजी के क्षेत्र में लाने वाले अपने गुरु डॉ. अनुपम जैन को दिया, जिनकी प्रेरणा, सहयोग से ही वे इस ओर मुड़े हैं। संगोष्ठी में पधारे विद्वानों के मध्य विचार - विमर्श से निम्न निष्कर्ष प्राप्त हुए -

1. संगोष्ठी में पधारे समस्त विद्वानों के नाम - पते, पठित शोध पत्र के शीर्षक सहित एक विस्तृत रिपोर्ट यथाशीघ्र तैयार कर सभी सहभागियों को उपलब्ध कराई जाये जिससे वे परस्पर सम्पर्क कर इस रूचि को बढ़ा सकें।
2. समस्त पठित शोधपत्रों को सम्पादित कर आगामी 3 - 4 माह में प्रोसीडिंग्स प्रकाशित कर दी जाये। डॉ. संजीव सराफ को यह दायित्व सौंपा गया।
3. इस संगोष्ठी में सम्मिलित विद्वानों में से अधिकांश जैन विद्या के अध्ययन के क्षेत्र में बहुश्रुत नहीं हैं। इनकी रूचि को वृद्धिंगत करने हेतु प्रति वर्ष जैन पुस्तकालयों एवं शोध संस्थानों पर संगोष्ठी आयोजित की जाये। इससे जैन धर्म/दर्शन के प्रचार हेतु प्रतिभा सम्पन्न विद्वानों का सहयोग मिल सके।
4. मीडिया से सतत सम्पर्क रखकर उसका उपयोग करने की दृष्टि से एक कार्य दल गठित करने का भी निर्णय किया गया।।

श्रुत संवर्द्धन संस्थान की ओर से आख्या के प्रकाशन एवं प्रतिवर्ष संगोष्ठी के आयोजन की घोषणा की गई। अन्य निष्कर्षों पर भी सहमति व्यक्त की गई।

संगोष्ठी से सम्बद्ध कतिपय चित्र आगामी पृष्ठों पर दृष्टव्य हैं।

*मानद सचिव, कुन्दकुन्द ज्ञानपीठ (शोध संस्थान)
584, महात्मा गांधी मार्ग, तुकोगंज,
इन्दौर - 452 001

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

'जैन पुस्तकालय एवं शोध संस्थान' अ. भा. संगोष्ठी के दृश्य

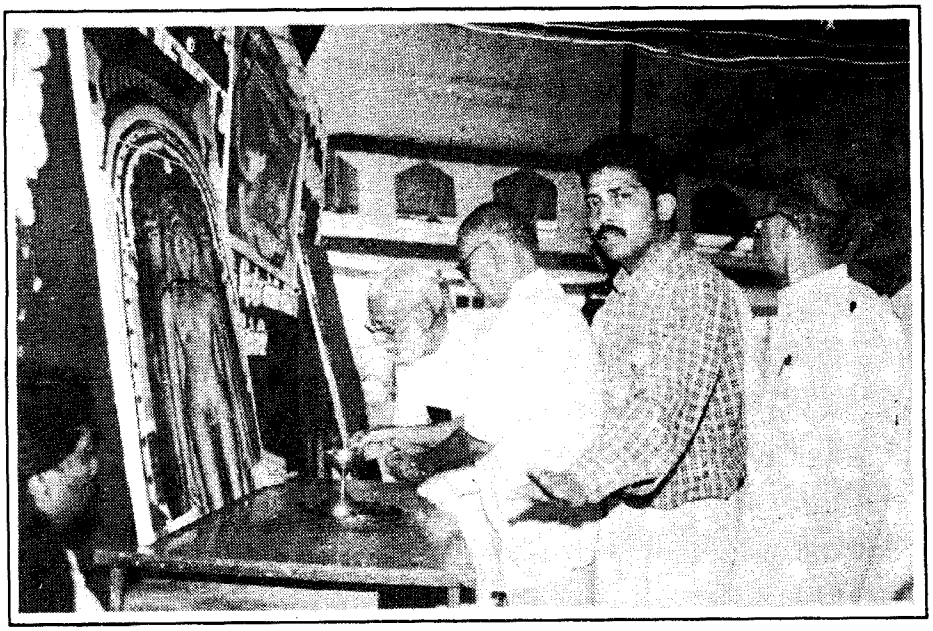

दीप प्रज्ज्वलित कर संगोष्ठी का शुभारम्भ करते पूर्व सांसद श्री डालचन्दजी जैन, डॉ. संजीव सराफ, श्री ज्ञानचन्द जैन एवं डॉ. भुवनेन्द्रकुमार (कनाड़ा) आदि।

पूज्य उपाध्याय श्री ज्ञानसागरजी महाराज के ससंघ सान्निध्य में शोध पत्र प्रस्तुत करते हुए डॉ. शुभचन्द्र (मैसूर)। मंचासीन श्री डालचन्द जैन, विषय विशेषज्ञ डॉ. अनुपम जैन (इन्दौर)आदि।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

'जैन पुस्तकालय एवं शोध संस्थान' अ. भा. संगोष्ठी के दृश्य

समापन सत्र को संबोधित करते हुए श्री इब्राहीम कुरैशी (अध्यक्ष - म.प्र. अल्पसंख्यक आयोग), डॉ. विमलकुमार जैन (अध्यक्ष - वाणिज्य संकाय, डॉ. हरिसिंह गौर वि.वि., सागर), प्रो. नलिन के. शास्त्री (कुलसचिव - इन्द्रप्रस्थ वि.वि, दिल्ली) एवं डॉ. अनुपम जैन (सचिव - कुन्दकुन्द ज्ञानपीठ, इन्दौर)

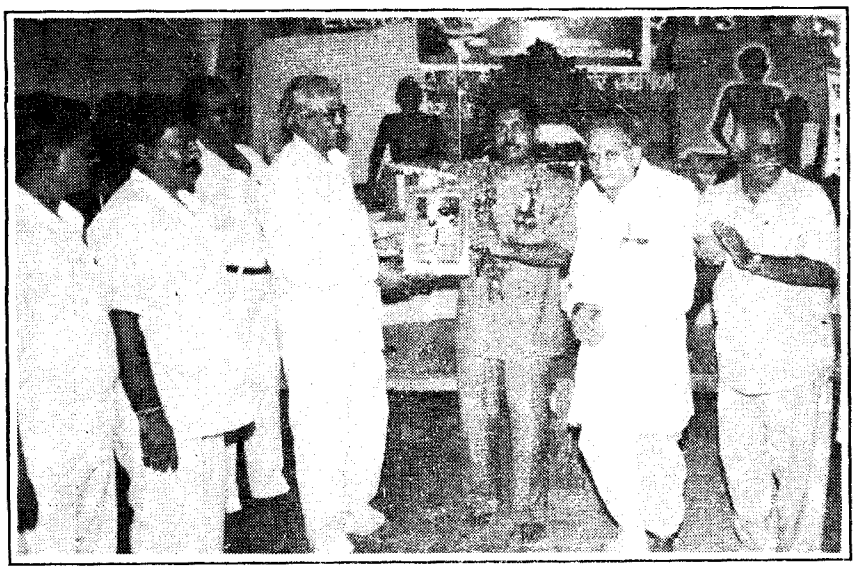

संगोष्ठी संयोजक डॉ. संजीव सराफ (सागर) का पूज्य उपाध्यायश्री
के सान्निध्य में सम्मान करते हुए श्री कुरैशी

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

अर्हत् वचन
कुन्दकुन्द ज्ञानपीठ, इन्दौर

प्रथम दि. जैन युवा विद्वत् संगोष्ठी

सोनागिर, 13 से 15 अक्टूबर 2003

■ सुनील जैन 'संचय' *

परम पूज्य, सराकोद्धारक संत, **उपाध्याय श्री ज्ञानसागरजी महाराज** के ससंघ मंगल सान्निध्य तथा उन्हीं की मंगल प्रेरणा से संस्कृति संरक्षण संस्थान, दिल्ली तथा तीर्थक्षेत्र संरक्षिणी कमेटी, सोनागिर (दतिया) के संयुक्त तत्वावधान में देश में प्रथम बार **दिगम्बर जैन युवा विद्वत् संगोष्ठी** सम्पन्न हुई। संगोष्ठी में 40 युवा जैन विद्वान पारम्परिक वेशभूषा (धोती, कुर्ता, टोपी) में सम्मिलित हुए। संयोजक **श्री सुनील जैन 'संचय', वाराणसी** रहे।

13.10.03 को प्रात: उद्घाटन सत्र श्री राजचन्द्र जैन शास्त्री, भोपाल के मंगलाचरण तथा क्षेत्र कमेटी के मंत्री श्री ज्ञानचन्द्रजी जैन के दीप प्रज्ज्वलन से सम्पन्न हुआ।

संगोष्ठी में समागत विद्वानों ने निम्नांकित तीन विषयों पर आलेखों का वाचन किया -

1. **श्रावकाचार और उसकी उपयोगिता**
2. **वर्तमान परिप्रेक्ष्य में युवा विद्वानों का दायित्व**
3. **शिक्षण शिविर एवं तत्संबंधी समस्याएँ एवं निदान**

कुछ विद्वानों ने युवा विद्वानों को रोजगार उपलब्ध न होने की समस्या पर भी विचार रखे।

संगोष्ठी में उद्घाटन सत्र के अतिरिक्त 13 अक्टूबर को दोपहर 2.00 बजे, रात्रि 7.30 बजे, 14 अक्टूबर को प्रात: 8.00 बजे, दोपहर 2.00 बजे, रात्रि 7.30 बजे तथा 15 अक्टूबर को प्रात: 8.00 बजे आलेख वाचन से सम्बन्धित सत्र हुए। सभी सत्रों की अध्यक्षता वरिष्ठ जैन विद्वान एवं दिग. जैन आचार्य संस्कृत महाविद्यालय के प्राचार्य **डॉ. शीतलचन्द्र जैन, जयपुर** ने की एवं आलेखों में व्यक्त विचारों की समीक्षा की।

सारस्वत अतिथि **पं. ज्ञानचन्द्रजी जैन, विदिशा** की उपस्थिति भी उल्लेखनीय रही। पूज्य उपाध्याय श्री ज्ञानसागरजी महाराज के ससंघ सान्निध्य के अतिरिक्त विभिन्न सत्रों में मुनि श्री कीर्तिसागरजी, ऐलक पवित्रसागरजी, क्षु. सम्यक्त्वसागरजी, ब्र. अनीता दीदी, ब्र. मंजूला दीदी का भी सान्निध्य प्राप्त हुआ। संगोष्ठी में समागत विद्वानों में निम्न नाम सम्मिलित हैं -

श्री ऋषभकुमार जैन शास्त्री, अहारजी
श्री अविनाश जैन, अहारजी
श्री अभिषेक जैन, अहारजी
श्री चन्द्रेशकुमार जैन
श्री संजीव जैन शास्त्री, वाराणसी
श्री वैद्य ऋषभकुमार जैन, बड़ागाँव
श्री राजचन्द्र शास्त्री, भोपाल
श्री मनोज शास्त्री, बगरोही
श्री निर्मलकुमार जैन शास्त्री, सुजानगढ़
श्री मनोज शास्त्री, महार
श्री सुरेन्द्र शास्त्री, शिक्षक, अशोकनगर
श्री वृजेश शास्त्री, महुआ
श्री सोमचन्द शास्त्री, मैनवार
श्री शैलेन्द्र शास्त्री, जयपुर

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

श्री मनोज शास्त्री, शिक्षक, सांगानेर
श्री सुबोध जैन
श्री जिनेन्द्र शास्त्री, मथुरा
पं. कमलकुमार कमलांकुर, भोपाल
श्री सन्मति शास्त्री, दिल्ली
श्री आशीष जैन, बण्डा
श्री अखिलेश शास्त्री, रामटोरिया
श्री मनीष शास्त्री, शाहगढ़
श्री वीरेन्द्र शास्त्री, हीरापुर
श्री अनुराग जैन, मडावरा
श्री आशीष शास्त्री, शाहगढ़
श्री मुन्नालाल जैन, ग्वालियर
श्री सुरेन्द्र जैन, जैन दर्शनाचार्य, वाराणसी
श्री विनोदकुमार शास्त्री, कांकरिया तलाई
श्री पंकजकुमार जैन शास्त्री, रांची
श्री जिनेन्द्र जैन शास्त्री, मंगवा
श्री विकास शास्त्री, सांगानेर
श्री अशोक जैन शास्त्री

पूज्य उपाध्यायश्री ने युवा विद्वानों को सम्बोधित करते हुए समापन सत्र में कहा कि युवा विद्वान ही समाज का भविष्य है। उन्होंने अनेक ऐतिहासिक विद्वानों का उदाहरण देकर समाज, संस्कृति, सभ्यता, कला, इतिहास, दर्शन, धर्म के प्रति युवा विद्वानों को समर्पित होने की भावना व्यक्त की तथा आचरण के प्रति सजग रहने पर बल दिया। आपने युवा विद्वानों को प्रेरणा दी कि वे नियमित स्वाध्याय कर अपने ज्ञान का परिष्कार करें।

इस अवसर पर **'सविनय नमोस्तु'** पुस्तक का विमोचन भी सम्पन्न हुआ। संगोष्टी अत्यन्त सफल रही।

* श्रुत संवर्द्धन संस्थान
247, प्रथम तल, दिल्ली रोड़,
मेरठ – 250 002

जैन धर्म एवं विज्ञान संगोष्ठी

परमपूज्य उपाध्याय श्री ज्ञानसागरजी महाराज के ससंघ सान्निध्य में सोनागिरि में 2-3 अक्टूबर 2003 को जैन धर्म एवं विज्ञान संगोष्ठी सम्पन्न हुई। प्राप्त सूचनानुसार संगोष्ठी में अनेक शोध पत्रों का वाचन किया गया।

विस्तृत विवरण की प्रतीक्षा है। प्राप्त होने पर प्रकाशित किया जा सकेगा।

सम्पादक

जैन विद्या का पठनीय षट्मासिक

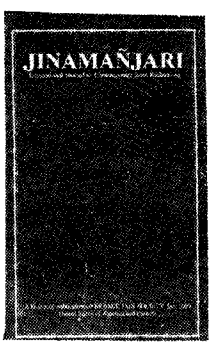

JINAMANJARI

Editor - Dr. S.A. Bhuvanendra Kumar
Periodicity - Bi-annual (April & October)
Publisher - **Brahmi Society, Canada-U.S.A.**
Contact - Dr. S. A. Bhuvanendra Kumar
4665, Moccasin Trail,
MISSISSAUGA, ONTARIO,
CANADA 14Z 2W5

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

अर्हत् वचन
कुन्दकुन्द ज्ञानपीठ, इन्दौर

चतुर्थ जैन ज्योतिष प्रशिक्षण शिविर

सोनागिर, 16 - 22 अक्टूबर 2003

■ मुकेश कुमार जैन *

दिनांक 16 से 22 अक्टूबर 2003 तक आयोजित चतुर्थ जैन ज्योतिष प्रशिक्षण शिविर का आयोजन श्री सोनागिर सिद्धक्षेत्र की पावन धरा पर सराकोद्धारक उपाध्याय श्री ज्ञानसागरजी महाराज के पावन सान्निध्य में हुआ। दीप प्रज्ज्वलन डॉ. विजेन्द्रजी गोयल (देवबन्द) के करकमलों द्वारा हुआ। मंच संचालन पं. श्री जयन्तजी जैन (सीकर) ने किया। मंगलाचरण श्री जिनेन्द्र शास्त्री ने किया। ज्योतिष शिविर में पढ़ाने वाले प्रो. श्री कुलभूषणजी (देवबन्द), श्री गजेन्द्रकुमारजी (फरूखनगर) को सम्मानित किया गया।

प्रो. कुलभूषणजी ने ज्योतिष विद्या का महत्व बताते हुए कहा कि समय पर किया गया कार्य अपना प्रभाव डालता है। कभी-कभी जीवन में ऐसी घटनाएँ घट जाती हैं जिनसे व्यक्ति को आघात पहुँचता है। उन दुर्घटनाओं से व्यक्ति बच सकता है अगर वह सावधानी रखे तो इस हेतु ज्योतिष विद्या निमित्त बनती है। मुख्यता पुण्य-पाप के उदय की रहती है फिर भी पुरुषार्थ के बल पर व्यक्ति अपना भाग्य बदल सकता है। पूज्य श्री की महती कृपा है कि उस ज्योतिष विद्या का पठन-पाठन छात्रों को कराया जा रहा है। अगर इन छात्रों में से 2-4 छात्र भी इस विद्या में निष्णात हो जायेंगे तो यह शिविर सफल/सार्थक हो जायेगा।

पं. गजेन्द्रजी ने अपने विचार व्यक्त करते हुए कहा कि ज्योतिष वह विद्या है, जिसके द्वारा काल का ज्ञान होता है। आप सभी बड़ी तत्परता, लगन तथा अनुशासन के साथ इस विद्या का अर्जन करें। डॉ. रमाजी ने इस कड़ी में अपने विचार व्यक्त करते हुए कहा कि मुझे इन छात्रों को देखकर बड़ी प्रसन्नता हो रही है, जो इस शिविर में ज्योतिष विद्या का ज्ञान प्राप्त करेंगे, यह सारी की सारी कृपा पूज्यश्री की है, जो इन जिनवाणी के लालों को संस्कार दिलाने में माध्यम बन रहे हैं।

तत्पश्चात पूज्य उपाध्याय श्री ज्ञानसागरजी महाराज ने अपनी पीयूष वाणी द्वारा कहा कि जिनवाणी बहुत अगाध है, जिसमें सभी तरह की विधाओं की चर्चा आती है। समय का महत्व समझने वाले वास्तव में एक दिन समयसार को प्राप्त कर लेते हैं। आज जब भी कोई कार्य आप शुरु करते हैं तो समय अच्छा है या नहीं, यह देखकर करते हैं, उसका समीचीन ज्ञान हो सके, इस हेतु ही बराबर 4 वर्षों से जैन ज्योतिष विद्या का शिविर चल रहा है। भाग्य और पुरुषार्थ की परस्पर मैत्री है, अकेला भाग्य ही सब कुछ हो ऐसा भी नहीं है, अकेला पुरुषार्थ ही सब कुछ हो ऐसा भी नहीं है। व्यक्ति को कभी भी आलसी बनकर भाग्य के सहारे नहीं बैठना चाहिये, पुरुषार्थ के बल पर आपको विश्वास रखना चाहिये, चूंकि आज का पुरुषार्थ ही कल का भाग्य बन जाता है, अतः आप जैसा चाहें वैसा भाग्य बना सकते हैं, हाँ इतना अवश्य है कि पुरुषार्थ करने के बाद भी जब सफलता नहीं मिलती, तब भाग्य का सहारा लेकर संतोष करना चाहिये।

ज्योतिष एक दर्पण के समान है, वह आपको सजग करता है, सावधान करता है। शुभ समय पर किये गये कार्यों में सफलता मिले ही यह भी एकान्त नहीं है, चूंकि तीव्र अशुभ कर्म के उदय में पुरुषार्थ सफल नहीं हो पाता है, अतः जैन ज्योतिष के हार्द को समझकर हमें अपने आपको समझने का प्रयास करना चाहिये। तभी इस शिविर की सार्थकता होगी।

* श्रुत संवर्द्धन संस्थान
247, प्रथम तल, दिल्ली रोड़,
मेरठ - 250 002

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

अर्हत् वचन
कुन्दकुन्द ज्ञानपीठ, इन्दौर

एकादश राष्ट्रीय विद्वत् संगोष्ठी

केकड़ी (अजमेर), 7 - 9 अक्टूबर 2003

■ विजय कुमार जैन *

संतशिरोमणि आचार्य श्री विद्यासागरजी महाराज के सुशिष्य मुनिपुंगव पूज्य **मुनि श्री सुधासागरजी महाराज** के चातुर्मास के अन्तर्गत आचार्य रविषेण विरचित पद्मपुराण ग्रन्थ के परिशीलनार्थ एकादश राष्ट्रीय विद्वत् संगोष्ठी का आयोजन 7 से 9 अक्टूबर 2003 के मध्य केकड़ी (अजमेर) में सम्पन्न हुआ। श्री अरुणकुमार जैन, प्राचार्य - ब्यावर के निर्देशन एवं डॉ. विजयकुमार जैन, लखनऊ के संयोजकत्व में आयोजित इस त्रिदिवसीय संगोष्ठी में विभिन्न प्रान्तों से पधारे 34 मनीषी विद्वानों ने अपने आलेख प्रस्तुत किये।

दि. 7.10.03, प्रथम/उद्घाटन सत्र- अध्यक्षता : डॉ. जयकुमार जैन, मुजफ्फरनगर

विषय प्रवर्तन : प्राचार्य श्री अरुणकुमार जैन, ब्यावर संचालन : डॉ. विजयकुमार जैन, लखनऊ

मंगल कलश स्थापन एवं दीप प्रज्ज्वलन के उपरान्त पूज्य मुनि श्री सुधासागरजी महाराज का मंगल उद्बोधन हुआ। इससे संगोष्ठी को दिशा प्राप्त हुई। **डॉ. कस्तूरचन्द्र जैन 'सुमन' (श्रीमहावीरजी)** ने 'पद्मपुराण में राम के चरित्र का वैशिष्ट्य' शीर्षक शोधपूर्ण आलेख प्रस्तुत किया।

दि. 7.10.03, द्वितीय सत्र - अध्यक्षता : डॉ. कमलेशकुमार जैन, वाराणसी, संचालन : डॉ. कपूरचन्द जैन, खतौली

वक्ता : **डॉ. जयकुमार जैन (मुजफ्फरनगर), डॉ. रमेशचन्द्र जैन (बिजनौर), डॉ. नलिन के. शास्त्री (दिल्ली), डॉ. (श्रीमती) नीलम जैन (गाजियाबाद) एवं डॉ. ऋषभचन्द जैन (आरा)।**

दि. 7.10.03, तृतीय सत्र - अध्यक्षता : प्राचार्य श्री निहालचन्द्र जैन, बीना, संचालन : डॉ. (श्रीमती) रांका जैन, लखनऊ

वक्ता : **डॉ. (श्रीमती) विमला जैन (फिरोजाबाद), डॉ. (श्रीमती) ज्योति जैन (खतौली), डॉ. राजहंस गुप्ता (बिजनौर), डॉ. (कु.) आराधना जैन (गंजबासोदा), श्री महेन्द्रकुमार जैन (भोपाल) एवं श्री नरेन्द्रकुमार जैन (सनावद)।**

दि. 8.10.03, चतुर्थ सत्र - अध्यक्षता : डॉ. जे. बी. शाह, अहमदाबाद, संचालन : डॉ. नरेन्द्र जैन, सनावद

वक्ता : **डॉ. शीतलचन्द्र जैन (जयपुर), डॉ. फूलचन्द्र जैन 'प्रेमी' (वाराणसी), श्री रतनलाल बैनाड़ा (आगरा) एवं डॉ. अशोककुमार जैन (लाडनूँ)।**

दि. 8.10.03, पंचम सत्र - अध्यक्षता : डॉ. रमेशचन्द्र जैन, बिजनौर, संचालन : डॉ. अशोककुमार जैन, लाडनूँ

वक्ता : **डॉ. प्रद्युम्न शाह (अहमदाबाद), डॉ. जे. बी. शाह (अहमदाबाद), डॉ. शिवसागर त्रिपाठी (जयपुर), डॉ. रंजन सूरिदेव (पटना), डॉ. कमलेशकुमार जैन (वाराणसी) एवं डॉ. (श्रीमती) रांका जैन (लखनऊ)।**

दि. 8.10.03, षष्ठम सत्र - अध्यक्षता : डॉ. शीतलचन्द्र जैन, जयपुर, संचालन : डॉ. (श्रीमती) ज्योति जैन, खतौली

वक्ता : **डॉ. कपूरचन्द्र जैन (खतौली), डॉ. (श्रीमती) पुष्पा जैन, श्री वीरेन्द्र निर्झर (बुरहानपुर), डॉ. रामसागर मिश्र (लखनऊ), श्री श्रीराम परिहार एवं डॉ. विजयकुमार जैन (लखनऊ)।**

दि. 9.10.03, सप्तम सत्र - अध्यक्षता : डॉ. शिवसागर त्रिपाठी, संचालन : डॉ. नरेन्द्र जैन, सनावद

वक्ता : **श्री राकेशकुमार जैन शास्त्री (सांगानेर), पं. अभयकुमार जैन (बीना), प्राचार्य निहालचन्द्र जैन (बीना), डॉ. सुरेन्द्रकुमार जैन (बुरहानपुर)।**

दि. 9.10.03, अष्टम एवं समापन सत्र - अध्यक्षता : डॉ. श्री रंजनसूरिदेव, पटना, संचालन : प्राचार्य अरुणकुमार जैन, ब्यावर

इस सत्र में समागत विद्वानों के सम्मान के अतिरिक्त **डॉ. अशोककुमार जैन (ग्वालियर)** के शोध पत्र का वाचन भी सम्पन्न हुआ। संगोष्ठी अत्यन्त सफल रही।

* संपादक - श्रुत संवर्द्धिनी, **लखनऊ**

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

सांसद श्री वी. धनंजयकुमार भगवान ऋषभदेव नेशनल अवार्ड से सम्मानित

भगवान ऋषभदेव अन्तर्राष्ट्रीय निर्वाण महामहोत्सव वर्ष (1998-99) में **परमपूज्य गणिनीप्रमुख, आर्यिकाशिरोमणि श्री ज्ञानमती माताजी** की प्रेरणा से जैन धर्म की प्राचीनता एवं भगवान ऋषभदेव द्वारा प्रतिपादित जीवनशैली के प्रचार-प्रसार में दिये गये अविस्मरणीय योगदान हेतु दिगम्बर जैन त्रिलोक शोध संस्थान, हस्तिनापुर द्वारा तत्कालीन वित्त राज्यमंत्री एवं लोकप्रिय सांसद **श्री वी. धनंजयकुमार** को संस्थान के सर्वोच्च सम्मान **भगवान ऋषभदेव नेशनल अवार्ड** से सम्मानित करने की घोषणा की गई थी।

घोषणानुसार भगवान महावीर की जन्मभूमि कुण्डलपुर (नालंदा) में प्रथम बार बिहार सरकार के पर्यटन मंत्रालय तथा कुण्डलपुर दिगम्बर जैन समिति के संयुक्त तत्वावधान में आयोजित कुण्डलपुर महोत्सव के अन्तर्गत माननीय सांसद श्री वी. धनंजयकुमारजी को पूज्य ज्ञानमती माताजी के ससंघ सान्निध्य में अवार्ड से सम्मानित किया गया।

अवार्ड समर्पण समारोह का दृश्य

इस अवसर पर रजत प्रशस्ति, शाल, श्रीफल के साथ रु. 2 लाख 51 हजार की राशि भी समर्पित की गई। पुरस्कार समर्पण समारोह में मुख्य अतिथि के रूप में पधारे **बिहार के महामहिम राज्यपाल माननीय श्री एम. रामा जोयिसजी** ने अपने उद्बोधन में कहा कि भगवान महावीर की जन्मभूमि का एक-एक कण पवित्र है। पूज्य ज्ञानमती माताजी द्वारा पुन: आज अहिंसा एवं ज्ञान का प्रकाश विश्व को प्राप्त हो रहा है। अवार्ड से सम्मानित सांसद की प्रशंसा करते हुए महामहिमजी ने कहा कि मैं धनंजयजी को पिछले तीस वर्षों से जानता हूँ। कर्नाटक की मैंगलोर लोकसभा सीट से चुनकर आने वाले वे बहुत ही योग्य और समर्पित कार्यकर्ता हैं।

श्री धनंजयजी ने पूज्य माताजी के प्रति अपनी विनय एवं श्रद्धा प्रकट करते हुए कहा कि उनके आशीर्वाद से बहुत से अच्छे काम सफलता पूर्वक सम्पन्न हो रहे हैं। वे जन-जन में पूज्य लोकमाता हैं। पूज्य गणिनीप्रमुख श्रीज्ञानमती माताजी ने अपने आशीर्वचन में श्री धनंजयकुमारजी की सादगीपूर्ण जीवनशैली, धर्म के प्रति समर्पण का भाव, तीर्थ एवं गुरु भक्ति की प्रशंसा की एवं उनके स्वस्थ, यशस्वी जीवन हेतु आशीर्वाद प्रदान किया।

पूज्य **प्रज्ञाश्रमणी आर्यिका श्री चन्दनामती माताजी** एवं **क्षुल्लक श्री मोतीसागरजी महाराज** ने भी अवार्ड समारोह को सम्बोधित किया। कार्यक्रम में श्री धनंजयजी सपरिवार उपस्थित थे। संस्थान के पदाधिकारियों ने महामहिमजी के साथ मिलकर श्री धनंजयजी को यह अवार्ड प्रदान किया। इस अवसर पर कुण्डलपुर महोत्सव स्मारिका का विमोचन भी किया गया।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

'जैन इतिहास वीथिका' प्रदर्शनी का भव्य आयोजन

परमपूज्य गणिनीप्रमुख, आर्यिकाशिरोमणि श्री ज्ञानमती माताजी की प्रेरणा से भगवान महावीर की परम्परामान्य एवं आगमसम्मत जन्मभूमि कुण्डलपुर (नालंदा) में प्रथम बार आयोजित कुण्डलपुर महोत्सव में अर्हत् वचन सम्पादक मण्डल के सदस्य एवं ज्ञानोदय फाउन्डेशन, इन्दौर के निदेशक श्री सूरजमल बोबरा ने **'जैन इतिहास वीथिका'** के नाम से एक प्रदर्शनी का संयोजन एवं प्रदर्शन किया। इसका पूर्वावलोकन 21 सितम्बर 2003 को इन्दौर में किया गया था। यह प्रदर्शनी भगवान महावीर जन्मभूमि कुण्डलपुर में निर्माणाधीन नंद्यावर्त महल में स्थाई रूप से प्रदर्शित की जानी है। सम्प्रति इसे महोत्सव के अन्तर्गत एक भव्य प्रदर्शनी मंडप में प्रदर्शित किया गया। इसका उद्घाटन केन्द्रीय लघु उद्योग मंत्री माननीय **श्री सी. पी. ठाकुर** के करकमलों से सम्पन्न हुआ। बिहार के राज्यपाल **महामहिम श्री एम. रामा जोयिस** ने प्रदर्शनी का सूक्ष्मता से अवलोकन कर इसकी भूरि-भूरि प्रशंसा की। परमपूज्य, गणिनीप्रमुख, आर्यिका श्री ज्ञानमती माताजी, प्रज्ञाश्रमणी आर्यिका श्री चन्दनामती माताजी एवं पीठाधीश क्षुल्लकरत्न श्री मोतीसागरजी महाराज ने भी प्रदर्शनी का अवलोकन कर इसकी मुक्त कंठ से प्रशंसा की।

श्री सूरजमलजी बोबरा का सम्मान करते हुए डा. अनुपम जैन, संघपति लाला महावीरप्रसाद जैन एवं श्री कमलचन्द जैन। पार्श्व में प्रज्ञाश्रमणी आर्यिका श्री चन्दनामती माताजी

पूज्य आर्यिका श्री चन्दनामती माताजी ने कहा कि इस प्रकार की प्रदर्शनी से तीर्थ पर आने वाले यात्रियों को अपनी गौरवशाली संस्कृति को जानने एवं समझने का अवसर प्राप्त होगा, ज्ञानवर्द्धन के साथ ही संस्कृति संरक्षण की प्रेरणा भी मिलेगी।

राजगृही, पावापुरी, मांगीतुंगी, अयोध्या आदि क्षेत्रों के प्रतिनिधियों ने इस प्रकार की प्रदर्शनी अपने-अपने क्षेत्रों पर भी लगाने की भावना व्यक्त की।

कुण्डलपुर महोत्सव के मध्य प्रदर्शनी के संयोजन में श्रीमती बोबरा, उनके परिवार के सदस्यों, प्रो. श्रेणिक बंडी, प्रो. कल्पना बंडी का भी प्रशंसनीय सहयोग रहा।

इस भव्य प्रदर्शनी के संयोजन में अपनी चंचला लक्ष्मी एवं प्रतिभा का उपयोग करने हेतु श्री सूरजमलजी बोबरा का कुण्डलपुर दिगम्बर जैन समिति की ओर से भावभीना अभिनन्दन किया गया।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

जम्बूद्वीप पुरस्कार - 2003 एवं आर्यिका रत्नमती पुरस्कार - 2002 एवं 2003

भगवान महावीर की जन्मभूमि कुण्डलपुर में कुण्डलपुर दिगम्बर जैन समिति तथा पर्यटन मंत्रालय - बिहार सरकार के संयुक्त तत्वावधान में प्रथम बार आयोजित कुण्डलपुर महोत्सव के अन्तर्गत परमपूज्य गणिनीप्रमुख आर्यिकाशिरोमणि श्री ज्ञानमती माताजी के ससंघ सान्निध्य में 9 अक्टूबर 2003 को पुरस्कार समर्पण समारोह आयोजित किया गया, जिसमें दिगम्बर जैन त्रिलोक शोध संस्थान, हस्तिनापुर द्वारा प्रदान किये जाने वाले आर्षिक पुरस्कार समर्पित किये गये।

जम्बूद्वीप पुरस्कार - वर्ष 2000 से प्रारम्भ किये गये इस पुरस्कार के अन्तर्गत रु. 25,000/ की धनराशि, शाल, श्रीफल एवं प्रशस्ति पत्र प्रदान किया जाता है। वर्ष 2000 का पुरस्कार इंजी. के. सी. जैन (मेरठ), वर्ष 2001 का प्रसिद्ध ज्योतिषी पं. धनराज जैन (अमीनगर सराय), वर्ष 2002 का डॉ. शेखरचन्द्र जैन, (अहमदाबाद) को प्रदान किया जा चुका है। वर्ष 2003 का पुरस्कार अहिंसा एवं शाकाहार हेतु समर्पित विद्वान एवं दिशा बोध मासिक पत्रिका के सम्पादक डॉ. चीरंजीलाल बगड़ा (कोलकाता) को नालंदा उच्च अध्ययन संस्थान के निदेशक श्री पन्त के मुख्य आतिथ्य में संस्थान के पदाधिकारियों द्वारा प्रदान किया गया। सभा में तीर्थंकर ऋषभदेव जैन विद्वत् महासंघ के अनेक विद्वान, सामाजिक कार्यकर्ता एवं श्रेष्ठीगण उपस्थित थे।

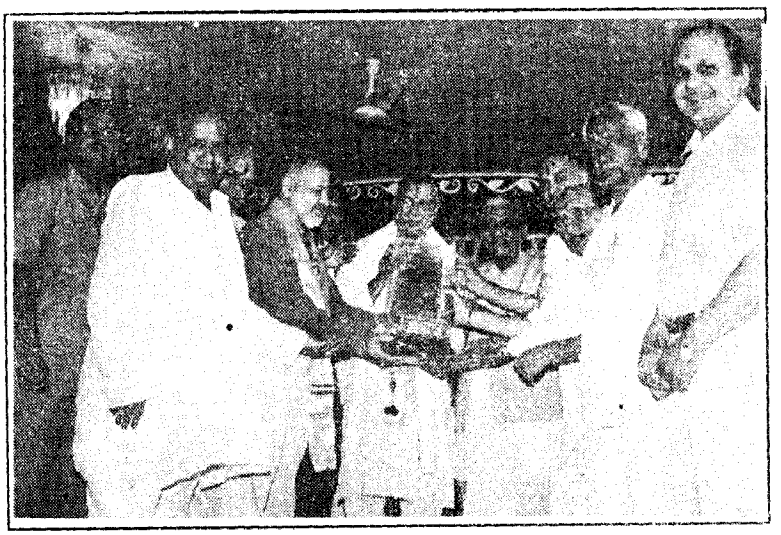

डॉ. चीरंजीलाल बगड़ा को सम्मानित करते हुए दि. जैन त्रिलोक शोध संस्थान - हस्तिनापुर के पदाधिकारीगण

इस अवसर पर दि. जैन त्रिलोक शोध संस्थान, हस्तिनापुर के अध्यक्ष कर्मयोगी ब्र. रवीन्द्रकुमारजी जैन ने कहा कि जीवदया के कार्यों से प्रेरित होकर हजारों बूचड़खानों को बन्द कराने जैसे अहिंसक कार्यों के लिये संस्थान डॉ. बगड़ाजी को हरसंभव सहयोग करेगा।

प्रज्ञाश्रमणी आर्यिका श्री चन्दनामती माताजी के आव्हान तथा डॉ. बगड़ाजी के राष्ट्रव्यापी अहिंसा आन्दोलन में अपना आर्थिक सहयोग देने की मार्मिक अपील पर सभा में उपस्थित सर्वश्री लाला महावीरप्रसादजी (संघपति), लाला प्रेमचन्दजी (दिल्ली), लाला श्रीपालदासजी (दिल्ली), श्री कमलचन्दजी जैन (खारी बावली, दिल्ली), श्री अनिलकुमारजी जैन (प्रीतविहार, दिल्ली), श्री कन्हैयालालजी सेठी (औरंगाबाद), श्री बालचन्दजी छाबड़ा (गया), श्री अशोकजी जैन (बाराबंकी), श्री सूरजमल बोबरा (ज्ञानोदय फाउण्डेशन - इन्दौर), महिला समाज (हजारीबाग), महिला समाज (गया), पं. शिवचरनलाल जैन (मैनपुरी) एवं अन्य अनेक उपस्थित महानुभावों ने अहिंसा, जीवदया एवं शाकाहार के प्रचार - प्रसार में अपना आर्थिक सहयोग प्रदान किया।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

पूज्य गणिनी श्री ज्ञानमती माताजी ने अपने मंगल उद्‌बोधन में कहा कि अहिंसा का यह मिशन विश्वव्यापी मिशन बनना चाहिये। इसलिये सभी को इसमें सहयोग प्रदान करना है। माताजी ने कहा कि परिवार में सौन्दर्य प्रसाधनों में लगने वाला पैसा भी यदि पशुओं को बचाने में प्रयुक्त किया जाता है, तो भी बहुत बड़ा कार्य हो सकता है। पूज्य माताजी ने कहा कि समाज में धनशक्ति और बुद्धि कौशल की कमी नहीं है, आवश्यकता है सही मार्गदर्शन एवं प्रोत्साहन देने की।

कुण्डलपुर महोत्सव के अन्तर्गत अहिंसा एवं शाकाहार विषय पर विशेष सभा का संचालन प्राचार्य श्री नरेन्द्रप्रकाशजी जैन (फिरोजाबाद) एवं डॉ. अनुपम जैन (इन्दौर) ने किया। इस अवसर पर पं. खेमचन्द जैन (जबलपुर), पं. भागचन्द जैन 'इन्दु' (छतरपुर), डॉ. संजीव सराफ (सागर), पं. बाबूलाल 'फणीश' (ऊन - खरगोन), श्री अजीत पाटनी (कोलकाता) आदि अनेक वक्ताओं ने अहिंसा शाकाहार के सिद्धान्तों को अनुकरणीय बताया। डॉ. अनुपम जैन, इन्दौर ने जम्बूद्वीप पुरस्कार - 2003 की प्रशस्ति का वाचन किया।

डॉ. चीरंजीलाल बगड़ा ने अपने लिखित उद्‌बोधन में देश में अहिंसा इन्स्टीट्यूट के न होने पर गहरा खेद व्यक्त करते हुई इसकी आवश्यकता पर जोर दिया एवं शीघ्रातिशीघ्र इस दिशा में कार्य प्रारम्भ करने के अपने संकल्प की घोषणा की एवं समाज से अधिकाधिक आर्थिक सहयोग प्रदान करने की अपील की, ताकि जानकारी के अभाव में अहिंसक समाज को हिंसा में अप्रत्यक्ष भागीदारी से बचाया जा सके। डॉ. बगड़ा का लिखित वक्तव्य अग्रांकित है

आर्यिका रत्नमती पुरस्कार - 2002 से श्रीमती सुमन जैन को सम्मानित करते हुए कर्मयोगी ब्र. रवीन्द्रकुमार जैन, श्रीमती कुमुदिनी जैन, ब्र. बीना जैन एवं श्री विजयकुमार जैन (पिंकू)

आर्यिका रत्नमती पुरस्कार - वर्ष 1999 से संस्थान द्वारा आर्यिका रत्नमती पुरस्कार प्रारम्भ किया गया है, इसके अन्तर्गत रु. 11000/- की राशि, शाल, श्रीफल एवं प्रशस्ति प्रदान किया जाता है। अब तक डॉ. नीलम जैन, गाजियाबाद (1999), प्रो. टीकमचन्द जैन, दिल्ली, (2000), डॉ. नन्दलाल जैन, रींवा (2001) को इस पुरस्कार से सम्मानित किया जा चुका है। 2002 का पुरस्कार ऋषभदेशना के सफल सम्पादन एवं अ.भा. दि. जैन महिला संगठन के कुशल संचालन हेतु **श्रीमती सुमन जैन, इन्दौर** एवं 2003 का पुरस्कार भगवान महावीर ज्योति के प्रवर्तन तथा जैन धर्म के प्रचार - प्रसार में सहयोग देने हेतु **श्री सुरेश जैन 'मारोरा', शिवपुरी** को प्रदान किया गया। श्री मारोरा अस्वस्थता के कारण नहीं आ सके। उनके प्रतिनिधि रूप में डॉ. संजीव सराफ, सागर ने पुरस्कार ग्रहण किया।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

कुण्डलपुर महोत्सव के अवसर पर जम्बूद्वीप पुरस्कार - 2003 प्राप्त करने के पश्चात्

डॉ. चीरंजीलाल बगड़ा, कोलकाता का लिखित वक्तव्य

सम्मानित मंच एवं उपस्थित धर्मानुरागी भाइयों एवं बहिनों,

चिन्तन - मनन और प्रवचन में, यही बात दोहराई।
मूक प्राणियों के ओंसू की, भाषा समझो भाई।
परम अहिंसा धर्म यही है, जीओ और जीने दो।
सिंह गाय को एक घाट पर, पानी तो पीने दो॥

आज चारों तरफ हिंसा की ज्वालामुखी फट रही है, धरती अधीर होकर पुकार रही है, प्रकृति का चीत्कार हमें सुनाई नहीं पड़ रहा है, राम और कृष्ण, महावीर और गांधी, भारत और अहिंसा - आज विश्व में ये युगल शब्द समानार्थक प्रतीक बनकर हमसे, विशेषकर हम महावीर के अनुयायियों से, मूक पशुओं के प्राणदान की याचना करते से प्रतीत होते हैं। हम जो अपने लिए चाहते हैं, वही दूसरों के लिए भी प्रीतिकर हैं। हिंसा पर अहिंसा की विजय यात्रा के लिए आज प्रस्थान करने की मंगल बेला है और मैं आज आप सबको इसके लिए संकल्पित होने के लिए आव्हान करता हूँ।

आज अहिंसा पर विश्व में चर्चा तो जोर - शोर से हो रही है, परन्तु दुखद है कि भारत सदृश्य इतने बड़े अहिंसक देश में भी, आज अहिंसा पर वैज्ञानिक दृष्टि से व्यावहारिक कार्यों के शोध - बोध करने के लिए एक भी संस्थान नहीं है। आपने देखा होगा अभी कुछ समय पूर्व ही दिल्ली के एक अनुसंधान संस्थान ने कोका - कोला, पेप्सी आदि कोल्ड ड्रिंक्स में रासायनिक अवशेषों की मात्रा पाये जाने का मामला उठाया और किस तरह पूरे देश में हलचल मच गई। लोकसभा, राज्यसभा, विधानसभा, न्यायालय, टीवी, प्रेस, मीडिया, सर्वत्र एक ही मुद्दा कई दिनों तक छाया रहा। यह है वैज्ञानिक शोध शक्ति - युक्त प्रस्तुत तथ्य की प्रतिक्रिया।

आज हमारा पूरा जीवन हिंसामय बना हुआ है। हमारी प्राचीन ऋषि - कृषि भी आज हिंसायुक्त है। जमीन, जल और वायु सब प्रदूषित है। हमारी भावी संतति खतरे में है। आज पूरा विश्व मौत के मुंह की तरफ बढ़ रहा है और उसे रोकने का तथा इस प्रक्रिया से वापसी का एक मात्र समाधान है व्यावहारिक जीवन में अहिंसा के मूल्यों को पुनः प्रतिष्ठापित करना, प्रकृति के शोषण को रोकना तथा प्रकृति, प्राणी और मानव जीवन के बीच संतुलित सामंजस्य स्थापित करना।

हमारी परिकल्पना देश में एक ऐसे अहिंसा इंस्टिट्यूट को स्थापित करने की है, जिसको तीन चरणों में आगे बढ़ाया जा सकता है। प्रथम चरण के अंतर्गत बीस लाख रूपयों के बजट में किताबें, वीडियों, सी.डी. आदि से युक्त एक आधुनिक संसाधन समृद्ध लाइब्रेरी के साथ अन्तर्राष्ट्रीय स्तर की एक अहिंसा डाईजेस्ट नाम से पत्रिका प्रकाशन को प्रारंभ करना है। योग्य वैज्ञानिक, प्रोफेसर तथा मनीषी चिंतकों का एक समुदाय हमारे साथ में है। आवश्यकता मात्र उन सबके साथ संपर्क जोड़कर एक कार्य योजना तैयार करने की है और आवश्यक संसाधन जुटाने के लिए आप सबका, समाज का, मुक्त हस्त से आर्थिक सहयोग जरूरी है।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

आपने देखा होगा कैसे सीमित संसाधनों एवं प्रतिकूलताओं के बावजूद, देश के सबसे बड़े मांस निर्यातक समूह से टक्कर ली, एक सौ करोड़ रूपये निवेश वाले देश के सबसे बड़े, दस हजार पशु प्रतिदिन काटने वाले बूचड़खाने को छः वर्ष तक कार्य प्रारंभ करने से रोके रखा, कैसे हमनें दसवीं पंचवर्षीय योजना के अन्तर्गत खुलने वाले छप्पन हजार बूचड़खानों की योजना को अकेले अपने स्तर पर लड़कर दो हजार करोड़ रूपये स्वीकृत धन राशि को भी योजना आयोग से निरस्त करवा पाने में सफलता प्राप्त की तथा अभी हाल ही में उत्तर प्रदेश के बारह जिलों को रोगमुक्त बनाकर मांस निर्यात क्षेत्र बनाने की सरकारी योजना को सर्वोच्च न्यायालय में केस लगाकर उस पर स्टे लगा पाने में हमने सफलता प्राप्त की है। देश से सम्पूर्ण मांस निर्यात व्यापार पर रोक लगाने हेतु भी हम पूर्ण सक्रिय हैं। ये सब बेहद व्ययसाध्य कार्य हैं। अहिंसा का कार्य करने वाली सम्पूर्ण देश की करीब चार सौ संस्थाओं को निःशुल्क सदस्य बनाकर हमने उन्हें जोड़ा है। उन्हें भी संसाधन उपलब्ध कराने हैं तथा उनके बीच जानकारियों का प्रचार-प्रसार करना है, सम्पर्क बढ़ाना है एवं गोष्ठियों का आयोजन करना है।

बंधुओं, हमें आप से सम्मान की नहीं सहयोग की अपेक्षा है। आपके द्वारा प्रदत्त इस सम्मान राशि में, मैं अपनी तरफ से भी एक तुच्छ राशि और मिलाकर, इसे अहिंसा के कार्यों के लिए अहिंसा-शाकाहार संस्थान को देने की घोषणा करता हूँ। आपसे निवेदन है कि अहिंसा के व्यापक कार्यों के लिए कृपया अधिक से अधिक सहयोग देवें, दिलावें एवम् हमारे हाथ मजबूत करें, ताकि हम भगवान महावीर के मार्ग का अनुसरण कर मूक प्राणियों के अभयदान की दिशा में कुछ सार्थक कार्य कर सकें।

भगवान महावीर से सम्बन्धित त्रिवेणी तीर्थ राजगीर, पावापुर एवं कुण्डलपुर की इस पावन धरा पर आदरणीय **पूज्य गणिनी श्री ज्ञानमती माताजी** के सान्निध्य में कुण्डलपुर महोत्सव का भव्य त्रिदिवसीय आयोजन सफलता के साथ सम्पन्न हो रहा है। तीर्थंकरों की जन्मभूमियां, जो विस्मृत सी हो गई थी, आज पुनः हम सबकी आस्था एवं श्रद्धा का केन्द्र बन रही है, यह पूज्य माताजी की प्रेरणा एवं आशीर्वाद का ही फल है।

पूज्य माताजी के 70 वें जन्म दिवस एवम् 51 वें दीक्षा दिवस के शरद पूर्णिमा के इस पावन दिन, मैं उनके श्रीचरणों में वंदना करते हुए माताजी के दीर्घायु होने की कामना करता हूँ। माताजी इसी प्रकार वर्षों तक हमें प्रेरणा एवं आशीर्वाद देती रहें ताकि हम भगवान महावीर की अंतिम दिव्य देशना के ये अंतिम शब्द "**अहिंसा की आराधना को त्रिकाल में भी न भूलें**" को सदैव स्मरण रख सकें।

महावीर के उपदेशों से, पशुओं को जीवन दान मिला।
अंधश्रद्धा के गढ़ हो गये ध्वस्त, जब वीतराग विज्ञान मिला।।
हिंसा की ज्वालामुखी फटी, धरती माता हो उठी अधीर।
तब करूणा की शीतल गगरी, छलकाते आये महावीर।।

जय महावीर! जय अहिंसा!! जय शाकाहार!!!

सम्पर्क : सम्पादक - दिशाबोध
46, स्ट्राण्ड रोड, तीसरा तल्ला,
कोलकाता - 700 007

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

तीर्थंकर ऋषभदेव जैन विद्वत् महासंघ का अधिवेशन सम्पन्न

परमपूज्य गणिनीप्रमुख आर्यिकाशिरोमणि श्री ज्ञानमती माताजी की प्रेरणा से भगवान महावीर की परम्परामान्य एवं आगमसम्मत जन्मभूमि कुण्डलपुर में पर्यटन मंत्रालय - बिहार सरकार तथा कुण्डलपुर दिगम्बर जैन समिति के संयुक्त तत्वावधान में आयोजित कुण्डलपुर महोत्सव के अन्तर्गत तीर्थंकर ऋषभदेव जैन विद्वत् महासंघ की कार्यकारिणी एवं साधारण सभा की बैठक दिनांक 8.10.2003 को सम्पन्न हुई जिसमें देश के 40 मूर्धन्य विद्वान सम्मिलित हुए। वर्ष 2003 हेतु विद्वत् महासंघ पुरस्कारों की घोषणा के साथ ही यह निर्णय भी लिया गया कि शास्त्री परिषद के यशस्वी अध्यक्ष प्राचार्य श्री नरेन्द्रप्रकाश जैन के 25 - 26 दिसम्बर 2003 को कोलकाता में होने वाले अभिनन्दन समारोह में महासंघ का एक दल सम्मिलित हो तथा महासंघ की ओर से भी उनका अभिनन्दन किया जाये। इस अवसर पर महासंघ की कार्यकारिणी की बैठक 25.12.03 की रात्रि में कोलकाता में आयोजित की जायेगी।

महासंघ के अध्यक्ष डॉ. शेखरचन्द्र जैन का सम्मान करते हुए महासंघ के संरक्षक श्री अनिलकुमार जैन (कमल मन्दिर, दिल्ली) एवं श्री अजयकुमार जैन (आरा)

अहिंसा, शाकाहार एवं तीर्थंकर जन्मभूमियों पर प्राचार्य नरेन्द्रप्रकाश जैन (फिरोजाबाद), डॉ. शेखरचन्द्र जैन (अहमदाबाद), पं. शिवचरनलाल जैन (मैनपुरी), डॉ. अनुपम जैन (इन्दौर), डॉ. मालती जैन (मैनपुरी) आदि के संबोधन हुए। तीर्थंकर ऋषभदेव जैन विद्वत् महासंघ के नैमित्तिक अधिवेशन में अखिल भा. दि. जैन शास्त्री परिषद के यशस्वी अध्यक्ष प्राचार्य श्री नरेन्द्रप्रकाश जैन (फिरोजाबाद) ने अपने प्रभावपूर्ण वक्तव्य में कहा कि तीर्थक्षेत्र कमेटी का कर्तव्य तो यह है कि वह अपने मन्दिरों व धर्मायतनों इत्यादि का संरक्षण, संवर्द्धन करे न कि प्राचीन काल से मान्यता प्राप्त तीर्थ के विषय में यह निश्चित करे कि कौनसी भूमि तीर्थ है अथवा नहीं है। वास्तव में कुण्डलपुर (नालंदा) के परमाणुओं में ही वह आकर्षण शक्ति है जिसके कारण देश भर के श्रद्धालु प्राचीनकाल से महावीर जन्मभूमि की वन्दना करने हेतु यहाँ पधारते रहे हैं और अब इसी आकर्षण के कारण पूज्य गणिनी श्री ज्ञानमती माताजी ने मात्र कुछ ही माह में यहाँ पाँच मन्दिरों का भव्य तीर्थ समाज को प्रदान कर दिया है। विद्वत् महासंघ के महामंत्री डॉ. अनुपम जैन ने महासंघ की नीतियों, प्राथमिकताओं, विगत वर्षों की उपलब्धियों एवं भावी योजनाओं पर प्रकाश डाला। पं. शिवचरनलाल जैन (मैनपुरी) ने कहा कि कुण्डलपुर भगवान महावीर की जन्मभूमि है, यह बात तो पहले से ही पूरी तरह सिद्ध है, अब तो हमें इसके विकास के प्रति जाग्रत होना है। सभा का सफल संचालन किया डॉ. अनुपम जैन (इन्दौर) ने। अधिवेशन की अध्यक्षता विद्वत् महासंघ के अध्यक्ष डॉ. शेखरचन्द्र जैन (अहमदाबाद) ने की। क्षेत्रीय विधायक श्री श्रवणकुमारजी (नालन्दा) विशिष्ट अतिथि के रूप में पधारे।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

भारतवर्षीय तीर्थंकर जन्मभूमि विकास समिति का गठन

बिहार के राज्यपाल महामहिम श्री एम. राजा जोयिस तीर्थंकर जन्मभूमि विकास समिति के प्रथम पोस्टर का लोकार्पण करते हुए

कुण्डलपुर महोत्सव में शरदपूर्णिमा के पावन दिवस दिनांक 10.10.2003 पर पूज्य गणिनीप्रमुख श्री ज्ञानमती माताजी ने तीर्थंकरों की जन्मभूमियों के विकास की प्रेरणा दी। साथ ही इस कार्य को सम्पादित करने हेतु भारतवर्षीय तीर्थंकर जन्मभूमि विकास समिति भी गठित की। सांसद श्री धनंजयकुमार जैन को गौरव अध्यक्ष, कर्मयोगी ब्र. रवीन्द्रकुमारजी जैन को अध्यक्ष तथा श्री अनिलकुमार जैन - दिल्ली, श्री सरोजकुमार जैन - फतेहपुर एवं श्री अजयकुमार जैन - आरा को महामंत्री घोषित करते हुए इन्हें शेष समिति के गठन हेतु अधिकृत किया गया।

महिला संगठन का अधिवेशन एवं ऋषभ देशना के विशेषांक का विमोचन

कुण्डलपुर महोत्सव में अखिल भारतीय दिगम्बर जैन महिला संगठन का वार्षिक अधिवेशन दिनांक 8 अक्टूबर 2003 को संगठन की अध्यक्षा श्रीमती निर्मला जैन (दिल्ली) की अध्यक्षता में सम्पन्न हुआ। इसमें आगामी 3 वर्षों हेतु दिल्ली प्रदेश की अध्यक्षा श्रीमती आशा जैन को राष्ट्रीय अध्यक्ष तथा वर्तमान महामंत्री श्रीमती सुमन जैन (इन्दौर) को पुन: राष्ट्रीय महामंत्री पद पर नियुक्त किया गया। इस अवसर पर संगठन के मुखपत्र ऋषभदेशना के कुण्डलपुर महोत्सव विशेषांक का विमोचन भी सम्पन्न हुआ। विशेषांक का विमोचन मेरठ से पधारी श्रीमती त्रिशला जैन ने किया जिन्होंने महोत्सव में पत्रिका की परम संरक्षिका बनना स्वीकार किया।नवनिर्वाचित पदाधिकारियों को कुन्दकुन्द ज्ञानपीठ परिवार की बधाई।

ऋषभ देशना के विमोचन का एक दृश्य - बायें से क्रमश: ब्र. (कु.) स्वाती जैन, श्रीमती सुमन जैन, श्रीमती रेखा पतंग्या, श्रीमती त्रिशला जैन एवं श्रीमती उषा पाटनी

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

गणिनी ज्ञानमती प्राकृत शोधपीठ के भवन का निर्माण प्रारम्भ

पूज्य प्रज्ञाश्रमणी **आर्यिका श्री चन्दनामती माताजी** की प्रेरणा से युवा जैन विद्वान एवं गणितज्ञ **डॉ. अनुपम जैन** के निर्देशन में गणिनी ज्ञानमती प्राकृत शोधपीठ के इन्दौर परिसर के विकास का निर्णय 21 फरवरी 2002 को किया गया था।

ज्ञातव्य है कि समाजरत्न एवं प्रसिद्ध व्यवसायी **श्री दिग्विजयसिंहजी जैन** द्वारा सुदामानगर, इन्दौर में प्रदत्त भूखण्ड पर इन्दौर परिसर के निर्माण का भूमिपूजन अक्षय तृतीया के पावन पर्व पर 4 मई 2003 को परमपूज्य **आचार्य श्री अभिनन्दनसागरजी महाराज** एवं **उपाध्याय श्री निजानन्दसागरजी महाराज** के ससंघ मंगल सान्निध्य तथा **कर्मयोगी ब्र. रवीन्द्रकुमारजी जैन** के निर्देशन में प्रसिद्ध समाजसेवी एवं उद्योगपति **श्री आर. के. जैन** के करकमलों से **इंजी. श्री आजाद जैन शाह** के विशिष्ट आतिथ्य में सम्पन्न हो चुका है।

श्री अजितकुमारसिंह कासलीवाल भूमि खनन कर निर्माण कार्य का शुभारम्भ करते हुए

भवन निर्माण कार्य का शुभारम्भ दिनांक 27.10.03 को कुन्दकुन्द ज्ञानपीठ के कोषाध्यक्ष **श्री अजितकुमारसिंह कासलीवाल** के करकमलों से श्री दिग्विजयसिंहजी जैन की उपस्थिति में सम्पन्न हुआ। इस पावन अवसर पर श्रीमती विमला कासलीवाल (मंत्री - कुन्दकुन्द ज्ञानपीठ परीक्षा संस्थान), श्रीमती सुमन जैन (महामंत्री - अ. भा. दि. जैन महिला संगठन), श्री प्रदीप कासलीवाल (राष्ट्रीय अध्यक्ष - महासमिति ट्रस्ट), इंजी. श्री आजाद जैन शाह, श्री जयसेन जैन (सम्पादक - सन्मतिवाणी), श्री रमेश कासलीवाल (सम्पादक - वीर निकलंक), श्री सुभाष गंगवाल (सम्पादक - मानतुंग पुष्प), पं. नाथूराम डोंगरीय (संरक्षक - जैन समाज, सुदामानगर), इंजी. के. सी. जैन (उपाध्यक्ष - जैन समाज, सुदामा नगर), श्री पदमचन्द मोदी (महामंत्री - जैन समाज, सुदामा नगर), श्रीमती संगीता विनायका (व्याख्याता), श्री कोमलचन्द जैन, श्री जीवनप्रकाश जैन एवं नगर के अनेक प्रबुद्धजन उपस्थित थे।

निर्माण कार्य द्रुतगति से चल रहा है एवं आशा है कि आगमी 6 माह में प्रथम चरण पूर्ण हो जायेगा। श्री अरविन्दकुमार जैन (फिरोजाबाद), श्री सुनीलकुमार जैन (सारंगपुर), श्री पदमचन्द मोदी (इन्दौर) ने भी निर्माण कार्य में सहयोग की घोषणा की। शिलान्यासकर्ता उद्योगपति श्री आर. के. जैन एवं इंजी. श्री आजाद जैन शाह का उदात्त सहयोग पूर्व से ही प्राप्त है। निर्माण प्रसिद्ध वास्तुविद् मे. भिड़े एसोसिएट के मार्गदर्शन में एम.एस.जे. कन्स्ट्रक्शन कं. के परामर्शानुसार हो रहा है।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

महासमिति (मध्यांचल) की पदाधिकारी प्रशिक्षण कार्यशाला सम्पन्न

दिगम्बर जैन महासमिति के राष्ट्रीय उपाध्यक्ष एवं प्रसिद्ध हीरा व्यवसायी, श्री विवेक काला ने भोपाल में दिनांक 3 अगस्त 2003 को आयोजित दिगम्बर जैन महासमिति मध्यांचल की पदाधिकारी प्रशिक्षण कार्यशाला के उद्घाटन समारोह में मुख्य अतिथि के रूप में अपने उद्गार व्यक्त करते हुए कहा कि मनुष्य भगवान की सर्वश्रेष्ठ कृति है, मानव सेवा ही प्रभु सेवा है।

श्री काला ने आगे कहा कि हम किसी के लिये अच्छा करते हैं तो हमारे मन में खुशी होती है, महासमिति ऐसे कार्य करे जिससे हम सीधे समाज की सेवा कर सकें, हम हमारे लक्ष्य बनायें। महासमिति के पूरे देश में लगभग पैंतीस हजार सदस्य हैं। उन्होंने जैन समाज को रूढ़िवादिता से बाहर आकर सेवा कार्य करने का आह्वान किया। आपने कहा कि जैन समाज प्रतिवर्ष पंचकल्याणक समारोह आयोजित कर लगभग सौ करोड़ रूपये का अपव्यय करता है, उस पैसे को बचाकर हम शिक्षा एवं चिकित्सा के क्षेत्र में लगाकर जरूरतमंद लोगों की मदद कर सकते हैं। श्री काला ने कहा कि संगठन में ही शक्ति है, जैन समाज अपने झगड़े भुलाकर एक संगठन के झंडे तले इकट्ठा होकर अपनी शक्ति का प्रदर्शन कर सकता है। जैन समाज बड़ा दयावान समृद्ध एवं दूसरों की मदद करने वाला समाज है। हम सब मिलकर चलेंगे तो और भी अच्छी सेवा कर सकते हैं।

समारोह का उद्घाटन मध्यप्रदेश कांग्रेस कमेटी के कोषाध्यक्ष एवं पूर्व सांसद श्री डालचन्द जैन ने किया। इस अवसर पर उन्होंने कहा कि महासमिति का गठन सन् 1975 में यत्र-तत्र बिखरी जैन संस्थाओं को एक झंडे तले लाने के लिये किया था। इस उद्देश्य के लिये महासमिति ने बहुत कार्य किया है लेकिन अभी भी इस क्षेत्र में कार्य बाकी है। श्री जैन ने कहा कि सभी जैन संस्थाओं का आपस में समन्वय होना बहुत जरूरी है। अन्य समाजों ने भी अपनी पहचान अपने संगठन के माध्यम से ही बनाई है। जैन समाज भी संगठन के माध्यम से अपनी पहचान बना सकेगा।

कार्यक्रम में विशेष अतिथि के रूप में बोलते हुए भोपाल के **कलेक्टर श्री अनुराग जैन** ने कहा कि हमारा देश प्रजातांत्रिक है। यहाँ वोटों की गिनती से काम चलता है। जिसका संगठन मजबूत होता है उसी की बात सुनी जाती है। मध्यप्रदेश शासन ने जैन समाज को अल्पसंख्यक घोषित कर अच्छा कार्य किया है। लेकिन जैन समाज को मतभेद भुलाकर एक होना पड़ेगा तभी

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

हम शासन पर दबाव बनाकर समाज का उत्थान कर सकेंगे।

विशेष अतिथि भोपाल संभाग के **मंडल रेल प्रबन्धक श्री सुबोधकुमार जैन** ने कहा कि मुझे खुशी है कि मैं समाज के बीच में हूँ और ऐसे आयोजन मुझे समाज से जुड़ने का मौका देते हैं। महासमिति के पूर्व राष्ट्रीय अध्यक्ष श्री प्रदीपकुमारसिंह कासलीवाल ने अपने संबोधन में कहा कि बिना किसी भेदभाव के हम सभी इकट्ठा होकर जैन समाज और महासमिति को मजबूत बनाकर समाजसेवा कर सकते हैं। हमें जैन समाज को एक साथ लाने का प्रयास करना होगा। दिगम्बर जैन महासमिति के राष्ट्रीय महामंत्री श्री एम. के. जैन ने कहा कि यह पदाधिकारी प्रशिक्षण कार्यशाला का आयोजन देश में पहली बार किया गया है। महासमिति का संगठनात्मक रूप क्या है? एवं इसको कैसा चलाना है? यह इस कार्यशाला का मुख्य उद्देश्य है।

महासमिति में एक परिवार के रूप में कार्य करना है। कार्यशाला का आयोजन दिगम्बर जैन महासमिति भोपाल संभाग द्वारा किया गया। भोपाल संभाग के अध्यक्ष श्री सुभाष काला ने शुरुआत में अपने स्वागत भाषण में कहा कि आप सबके सहयोग से महासमिति एक आन्दोलन का रूप ले रही है। श्री काला ने कहा कि हमें सौभाग्य मिला है देश में पहली बार इस पदाधिकारी प्रशिक्षण कार्यशाला के आयोजन का।

कार्यशाला में बोलते हुए मध्यप्रदेश शासन के **उपसचिव श्री सुभाष जैन** ने कहा कि 30 वर्ष के पश्चात भी हमारा संगठन अभी बाल्यावस्था में ही है। हमें इसको सभी भेदभाव भुलाकर और मजबूत करना है। चिकित्सा एवं शिक्षा के क्षेत्र में जैन समाज समाज अभी बहुत पीछे है। हम फालतू खर्चों को रोककर इस क्षेत्र में अच्छी सेवा कर सकते हैं।

महासमिति मध्यांचल के महामंत्री श्री कीर्तिकुमार पांड्या ने कहा कि दिगम्बर जैन महासमिति सम्पूर्ण देश में जैन संसद के रूप में जानी जाती है। इस कार्यशाला के माध्यम से संगठन को मजबूती प्रदान की जा सकेगी। महासमिति के राष्ट्रीय संयुक्त महामंत्री श्री हसमुख जैन गांधी ने कार्यशाला में व्यक्तित्व विकास पर चर्चा की एवं नेतृत्व के लिये किन-किन गुणों की आवश्यकता है इस पर विचार विमर्श किया। इन्दौर से आये महासमिति मध्यांचल के अध्यक्ष श्री माणिकचन्द जैन पाटनी ने महासमिति का इतिहास बताया।

अंतिम वक्ता डॉ. अनुपम जैन, सचिव-कुन्दकुन्द ज्ञानपीठ, इन्दौर ने कहा कि किसी भी संगठन के सुचारू संचालन में निम्न 4 की प्रमुख भूमिका होती है - (1) कार्यकर्ता (2) कार्यालय (3) कार्यक्रम एवं (4) कोष। 35000 सदस्यों के माध्यम से महासमिति के पास कार्यकर्ताओं का विशाल समूह है, जो निरन्तर वृद्धिंगत हो रहा है। इसके कार्यालय को पूर्व राष्ट्रीय महामंत्री एवं वर्तमान में मध्यांचल के अध्यक्ष श्री माणिकचन्द पाटनी ने अत्यन्त कुशलता एवं कर्मठता से संचालित किया है। कार्यकर्ताओं एवं कार्यालय की शक्ति से ही कार्यक्रमों का संचालन संभव है। धार्मिक संस्कारों के कारण हमारे कार्यकर्ता धार्मिक पर्वों - महावीर जयंती, दीपावली, ऋषभ जयंती, ऋषभ निर्वाण दिवस, वीर शासन जयंती, मोक्ष सप्तमी, अष्टान्हिका, पर्यूषण पर्व आदि तो मनाते ही हैं, इन्हें इकाई की गतिविधि के रूप में संयोजित करें। स्थानीय समाज के कार्यक्रमों में इकाई का जुड़ाव करें, उसमें पूर्ण सहयोग दें। सामूहिक हित एवं रूचि के कार्यक्रम बनायें जैसे मंडल विधानों का आयोजन, भक्ति संगीत, तीर्थ यात्राओं का आयोजन आदि। इनसे समाज सीधे जुड़ती है एवं महासमिति को लाभ मिलता है। हमें किसी को कुछ देना नहीं होता है। हमें सीधे समाजसेवा के लिये मंच उपलब्ध होता है। कार्यक्रम के संचालन की पूरी योजना लिखित में बनाना। संचालक का अधिक बोलना अशोभनीय माना जाता है, इस बात का ध्यान रखें। कार्यक्रम की रिपोर्ट तैयार करने का दायित्व अपने अनुभवी साथी को दें। रिपोर्ट फोटो सहित दैनिक समाचार पत्रों, जैन पत्र पत्रिकाओं में भेजें जिससे अन्य कार्यकर्ताओं को प्रेरणा मिले। सभी दृष्टियों से कार्यशाला अत्यन्त सफल रही। भोपाल संभाग का संयोजन एवं आतिथ्य सराहा गया।

■ **माणिकचन्द जैन पाटनी**

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

दिव्यावदान महोत्सव

आत्मविशुद्धि को प्राप्त कर सिद्ध परमात्मा बनने के लिये जैन संस्कृति में सर्वज्ञ वीतराग देव, निर्ग्रन्थ गुरु और अनेकान्तमयी जिनवाणी की आराधना आवश्यक मानी गई है। सर्वज्ञ देव वन्दनीय हैं। निर्ग्रन्थ गुरु का दर्शन परमकल्याणकारी और प्रेरणास्पद होता है।

जैन संस्कृति के विकास और उन्नति के इतिहास पर दृष्टिपात करने से यह ज्ञात होता है कि कैवल्य सूर्य की रश्मियों से विश्व का मोहान्धकार दूर करने वाले तीर्थंकरों ने अपने जन्म द्वारा उत्तर भारत की भूमि को पवित्र किया और निर्वाण द्वारा भी उसे तीर्थस्थल बनाया, किन्तु उनके धर्मदेशनारूप अमृत को पीकर, महत्वपूर्ण वीतरागता भरे शास्त्रों का निर्माण करने वाले धुरन्धर आचार्यों ने अपने जन्म से दक्षिण भारत की भूमि को श्रुतवन्दनीय तीर्थ बनाया।

आत्म-विशुद्धि करने वाले महापुरुषों की अक्षुण्ण परम्परा अनादिकाल से चली आ रही है, जिन्होंने जिनधर्म का उद्योतन किया है, अज्ञानरूपी अंधकार को दूर भगाकर जिनधर्म की प्रभावना की एवं अनेक भव्यात्माओं को रत्नत्रय निधि प्रदान कर पवित्र बनाया है।

इसी श्रृखला में विक्रम सं. 1929, आषाढ़ कृष्णा छठ, गुरुवार (दि. 25 जुलाई 1872 ई.) को भोज ग्रामवासी भीगगौड़ा पाटिल श्रेष्ठी की सत्यवती नाम की भार्या की कुक्षि से यलगुड में एक अत्यन्त होनहार तेजस्वी बालक ने जन्म लिया, जिसका नाम सातगौड़ा रखा गया। सातगौड़ा सत्य और शाश्वत मार्ग पर शनैः शनैः आगे बढ़ते गये और क्रम से सपतम प्रतिमा, क्षुल्लक, ऐलक, मुनि और आचार्य पद पर प्रतिष्ठित हुए जिन्हें आज हम चारित्रचक्रवर्ती, परम्पूज्य आचार्य श्री शान्तिसागरजी मुनिराज के नाम से जानते हैं।

दिगम्बराचार्य श्री शान्तिसागरजी मुनिराज चन्द्रमा के समान शीतलता देने वाले तथा सूर्य की भांति तपस्या के तेज से अलंकृत थे। वे ऐसी आध्यात्मिक लोकोत्तर ज्योति थे, जिसमें भानु और शशि की विशेषता केन्द्रित थीं। उनका जीवन परोपकारपूर्ण समुज्ज्वल प्रवृत्तियों से समलंकृत था। उन्होंने आत्मशुद्धि और रत्नत्रय साधना को अपने जीवन का केन्द्र बनाकर आत्माराधना के कल्याणपथ को अपनाया। वास्तव में वे परम योगी थे जिन्होंने शरीरपोषण से पूर्ण विमुखता धारण कर आत्मोन्मुखता प्राप्त की। आचार्यश्री श्रेष्ठ आध्यात्मिक साधक थे, जिनका पूर्ण जीवन आत्मा में विद्यमान अनन्त शक्ति सम्पन्न चैतन्य तत्त्व की अभिव्यक्ति द्वारा परमपद की प्राप्ति में संलग्न रहा। आचार्यश्री ने देश के कोने कोने में मंगलविहार कर प्राणियों को कल्याणकारी मार्ग बताया और जैनधर्म की प्राणप्रण से रक्षा की।

आचार्य श्री वीरसागरजी के शब्दों में - 'तीर्थयात्रा करनी है तो शिखरजी जाओ, अद्भुत मूर्ति के दर्शन करने हों तो श्रवणबेलगोला में भगवान गोम्मटेश्वर की दिव्य प्रतिमा के समीप पहुँचो और यदि साधुराज के दर्शन करने हों तो आचार्य श्री शान्तिसागरजी की मंगल छवि निहारो।

आचार्यश्री शान्तिसागरजी की प्रेरणा से जिज्ञासुजनों ने धर्म के सही स्वरूप को समझा और उस वीतरागमयी मार्ग पर चलकर अपनी आत्मा का कल्याण किया। वर्तमान में अनेक पूज्य त्यागीवृन्द अपने को चारित्रचक्रवर्ती आचार्य श्री शान्तिसागरजी की परम्परा का मान कर गौरवान्वित अनुभव कर रहे हैं।

ऐसे परम साधक, अध्यात्म योगी, मुनिश्रेष्ठ, आचार्य श्री शान्तिसागरजी का 131 वाँ जन्मजयंती महोत्सव वर्ष 'संयम वर्ष' के रूप में मनाया जा रहा है। इस आयोजन का पवित्र उद्देश्य चारित्रचक्रवर्ती आचार्य श्री शान्तिसागरजी के कालजयी योगदान एवं दिव्य अवदान को स्मरण करते हुए परम पावन जीवन चरित्र को नमन करना और पई पीढ़ी को उससे अवगत कराना है।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

बीसवीं सदी के महान संत आचार्य श्री शांतिसागरजी महाराज की
131 वीं जन्मजयंती पर फिरोजाबाद में विद्वत् संगोष्ठी

महिला जैन मिलन के सान्निध्य में तथा डॉ. विमला जैन के संयोजन में आचार्य श्री शांतिसागरजी महाराज की 131 वीं जन्मजयंती 'संयम वर्ष' के रूप में फिरोजाबाद के चन्द्रप्रभु मन्दिर में बड़े धूमधाम से मनाई गई। इस अवसर पर भारत के कोने कोने से पधारे प्रकाण्ड विद्वान डॉ. भागचन्द्र जैन 'भागेन्दु' - दमोह, प्रा. लालचन्द्र जैन 'राकेश' - गंजबासौदा, डॉ. अनुपम जैन - इन्दौर, डॉ. चिरंजीलाल बगड़ा - कोलकाता, प्रतिष्ठाचार्य पं. विनोदकुमार जैन - रजवारा, श्री अजित पाटनी - कोलकाता (सम्पादक - वर्द्धमान सन्देश) आदि ने आचार्यश्री के व्यक्तित्व और कृतित्व पर प्रकाश डाला। स्थानीय विद्वान प्रा. नरेन्द्रप्रकाश जैन (सम्पादक - जैन गजट), पं. अनूपचन्द्र जैन 'एडवोकेट', भारतीय जैन मिलन के केन्द्रीय उपाध्यक्ष वीर देवेन्द्रकुमार जैन, क्षेत्र क्र. 17 के अध्यक्ष वीर अभयकुमार जैन, प्रो. प्रेमकुमार जैन, विदुषी बहन चन्द्रकुमारी, डॉ. विमला जैन, डॉ. रश्मि जैन, डॉ. अंजू जैन, कु. श्वेता जैन आदि ने आचार्यश्री के अनुपमेय व्यक्तित्व, महान कृतित्व एवं आदर्श चर्या तथा समाज व श्रमण संस्कृति के उन्नयन में अपूर्व योगदान पर प्रकाश डाला। जैन मिलन की अध्यक्षा वीरा सत्या जैन ने आभार व्यक्त किया तथा 'संयम वर्ष' के रूप में पूरे वर्ष के लिये आचार्य शान्तिसागरजी पर अनेक कार्यक्रमों की रुपरेखा पर भी प्रकाश डाला।

■ **डॉ. विमला जैन, फिरोजाबाद**

Mystic India

A Bi-monthly Bilingual Magazine dealing with Holistic, Astrological, Alternate and Occult Sciences. A magazine that helps you to know the unknown. Anything and everything that is supernatural and paranormal finds a place in it. Though it is authentic and exhaustive artiles by masters of their subjects.

MYSTIC IS OUR BUSINESS - MAKE IT YOUR TOO!

Subscribe today for yourself or Gift to someone you love

SUBSCRIPTION RATES

	Single	One Year (6 issues)	Two Years (12 issues)	Five Years (30 issues)	Ten Years (60 issues)
India	Rs. 35/-	Rs. 150/-	Rs.275/-	Rs. 600/-	Rs. 1100/-
Foreign	$-3	$-16	$-30	$-60	$-120

A Golden Opportunity : Avail membership of Mystic India for Ten Years (60 issues) and get all previous available issues (approx. 40 of value of Rs. 1000/- free of cost. Courier expenses of sending back issue i.e. Rs. 2000/- ($20) will be born by subscriber.

Now you can deposit your subscription AT PAR in the any branch if ICICI Bank of your city in favour of MYSTIC INDIA. Our A/c. No. is 629205023049 and send Zerox of pay-in-slip to us.

D-65, Gulmohar Park, Ground Floor, New Delhi-110049
Ph.: 26521999 Fax : 23986100 E-mail : mysticindiamag@rediffmail.com

ASK FOR A FREE SAMPLE COPY (Send Rs. 10/- for Courier Charges)

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

डॉ. निर्मलकुमार जिनदास फडकुले को चारित्रचक्रवर्ती पुरस्कार

कुन्दकुन्द सभामण्डप, ऋषभदेव पार्क, लाल किले के सामने, दिल्ली में सिद्धान्त चक्रवर्ती, राष्ट्रसंत, परमपूज्य मुनि **श्री विद्यानन्दजी महाराज** के पावन सान्निध्य में कांग्रेस संसदीय दल के उपनेता माननीय श्री शिवराजजी पाटील के कर कमलों द्वारा सांस्कृतिक चेतना के प्रबुद्ध प्रवर्तक, प्राच्य भारतीय विद्याओं के महान साधक, प्रख्यात समाजसेवी, यशस्वी लेखक, पत्रकार **डॉ. निर्मलकुमार जिनदास फडकुले, सोलापुर** (महा.) के निरपेक्षवृत्ति से समाज एवं राष्ट्र के उत्थान के लिये किये गये बहुआयामी रचनात्मक कार्यों का मूल्यांकन करते हुए एवं उनकी साहित्यिक सेवाओं के लिये **ओम कांटारी फाउन्डेशन** द्वारा स्थापित एवं संपोषित **त्रिलोक उच्चस्तरीय अध्ययन एवं अनुसंधान संस्थान** द्वारा प्रवर्तित **चारित्रचक्रवर्ती** पुरस्कार प्रदान कर 7 सितम्बर को सम्मानित किया गया। पुरस्कार स्वरूप एक लाख रुपये, प्रशस्ति पत्र एवं स्वर्ण पदक प्रदान किया गया।

समारोह की अध्यक्षता श्री सुपारसजी भंडारी, अध्यक्ष एवं प्रबन्ध निदेशक - भारतीय कृषि बीमा कम्पनी लि. ने की। समारोह के विशिष्ट अतिथि के रूप में साहू श्री रमेशचन्दजी जैन, अध्यक्ष - भारतवर्षीय दिगम्बर जैन तीर्थक्षेत्र कमेटी, एवं श्री चक्रेशकुमारजी जैन (बिजली वाले) मंचासीन थे।

विद्वत् महासंघ पुरस्कार 2003 घोषित

तीर्थंकर ऋषभदेव जैन विद्वत् महासंघ द्वारा जैन संस्कृति के प्रचार - प्रसार में दिये जा रहे योगदान हेतु प्रतिवर्ष निम्नांकित 2 पुरस्कार प्रदान किये जाते हैं। इसके अन्तर्गत रुपये 11,000.00 की नगद राशि, शाल, श्रीफल एवं प्रशस्ति प्रदान की जाती है।

1. **स्व. चन्दारानी जैन, टिकैतनगर स्मृति विद्वत् महासंघ पुरस्कार**
2. **श्रीमती रूपाबाई जैन, सनावद विद्वत् महासंघ पुरस्कार**

डॉ. शेखरचन्द जैन, अहमदाबाद की अध्यक्षता में गठित पाँच सदस्यीय निर्णायक मण्डल की अनुशंसा के आधार पर विद्वत् महासंघ की कार्यकारिणी की 9 अक्टूबर 2003 की कुण्डलपुर (नालंदा) में सम्पन्न बैठक में वर्ष 2003 के पुरस्कार क्रमशः **(1) पं. खेमचन्द जैन, जबलपुर एवं (2) डॉ. (कु.) मालती जैन, मैनपुरी** को प्रदान करने की घोषणा की गई। निकट भविष्य में यह पुरस्कार समर्पित किये जायेंगे।

श्री प्रवीणकुमार जैन को पी एच.डी.

श्री प्रवीणकुमार जैन, मेरठ को उनके शोध प्रबन्ध **'भारत में पर्यावरण प्रदूषण के नियन्त्रण के लिये राजनीतिक भूमिका - एक विवेचनात्मक अध्ययन'** विषय पर चौधरी चरणसिंह वि.वि., मेरठ द्वारा पी.एच.डी. की उपाधि प्रदान की गई है। एम.ए. की परीक्षा राजनीति विज्ञान से करने के उपरान्त उन्होंने एस.एस.एस.एस. (पी.जी.) कॉलेज के राजनीति विज्ञान विभाग के अध्यक्ष एवं रीडर डॉ. आर. के. पालीवाल के निर्देशन में अपना शोध कार्य पूर्ण किया।

उल्लेखनीय है कि श्री प्रवीणकुमार जैन की अध्ययन, लेखन में गहन अभिरूचि है तथा उन्हें शैक्षिक प्रकाशन व्यवसाय (विद्या पब्लिशिंग हाउस) का दीर्घकालीन अनुभव है। उन्हें शाकाहार के प्रचार - प्रसार, पर्यावरण संरक्षण एवं जीव-जन्तुओं की सुरक्षा के लिये मेरठ में 'पक्षियों का धर्मार्थ अस्पताल' की स्थापना सहित अनेक सराहनीय कार्यों के लिये प्रतिष्ठित **'अहिंसा कार्यकर्ता अवार्ड'** से सम्मानित किया जा चुका है तथा शैक्षणिक पुस्तक - प्रकाशन के क्षेत्र में उल्लेखनीय योगदान के लिये मेरठ वि.वि. के पूर्व कुलपति डॉ. रवीन्द्रकुमार के कर कमलों द्वारा भी सम्मानित किया जा चुका है।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

पूज्य मुनि श्री प्रवचनसागरजी का समाधिमरण

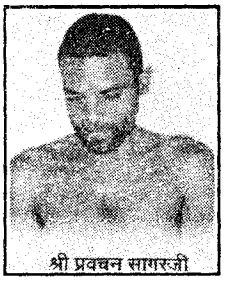
श्री प्रवचन सागरजी

दिगम्बर जैन उदासीन आश्रम के पूर्व अधिष्ठाता ब्र. चन्द्रशेखरजी शास्त्री, जिन्होंने संतशिरोमणि आचार्य श्री विद्यासागरजी महाराज से दिगम्बर जैन सिद्धोदय सिद्धक्षेत्र, नेमावर जिला देवास में 16.10.97 (आश्विन पूर्णिमा, वि. सं. 2054) को मुनि दीक्षा ग्रहण कर प्रवचनसागर नाम प्राप्त किया था, का समाधिमरण कटनी (म.प्र.) में शनिवार, दिनांक 29.11.03 (मगसिर शुक्ला 6, वि. सं. 2060) को हो गया है।

शान्त स्वभावी, सरल परिणामी, तत्व जिज्ञासु, स्वाध्यायी विद्वान ब्र. चन्द्रशेखरजी का जन्म बेगमगंज (रायसेन) निवासी श्री बाबूलालजी जैन एवं माता श्रीमती फूलरानी जैन, के परिवार में 29.10.60 को हुआ था। वैराग्य के भावों से अनुप्राणित चन्द्रशेखरजी ने M.Com (पूर्वार्द्ध) तक की शिक्षा प्राप्त करने के बाद संयम के पथ पर बढ़ना प्रारम्भ कर दिया था। 29.10.87 को थुबौनजी में ब्रह्मचर्य के व्रत, 20.4.96 को तारंगाजी में क्षुल्लक दीक्षा एवं 19.12.96 को गिरनारजी में ऐलक दीक्षा धारण कर आप साधना के पथ पर सतत बढ़ते रहे।

अल्पकालिक अस्वस्थता में ही दृढ़ संकल्पी मुनिश्री ने समाधि योग धारण कर अपने मानव जीवन को सफल बनाया। समाधि के समय मुनि श्री समतासागरजी, मुनि श्री प्रमाणसागरजी, मुनि श्री निर्णयसागरजी, मुनि श्री प्रबुद्धसागरजी एवं ऐलक श्री निश्चयसागरजी आदि 85 व्रती आपके समीप थे। समाधि का समाचार प्राप्त होते ही कुन्दकुन्द ज्ञानपीठ में श्रद्धांजलि सभा का आयोजन किया गया। मुनि श्री के गुणानुवाद के पश्चात् दिवंगत आत्मा की शीघ्र मुक्ति की कामना सहित 9 बार णमोकार मंत्र की जाप सहित मुनिश्री को दि. जैन उदासीन आश्रम के सभी ब्रह्मचारी बन्धुओं एवं ज्ञानपीठ परिवार की ओर से श्रद्धांजलि अर्पित की गई।

श्री राजेन्द्रकुमारसिंहजी कासलीवाल दिवंगत

दिगम्बर जैन उदासीन आश्रम ट्रस्ट के ट्रस्टी, प्रसिद्ध समाजसेवी, विख्यात छायाकार श्री राजेन्द्रकुमारसिंहजी कासलीवाल का दुखद निधन बुधवार, 10 दिसम्बर 2003 को हो गया है। अनेक विधाओं में प्रवीण श्री कासलीवाल इन्दौर के प्रसिद्ध श्रेष्ठि स्व. श्री हीरालालजी कासलीवाल के सुपुत्र थे। अनेक धार्मिक, पारमार्थिक संस्थाओं से सम्बद्ध श्री कासलीवालजी जीवन के संध्याकाल में भी समाजसेवा से जुड़े रहे। आपके निधन से समाज की अपूरणीय क्षति हुई है।

दिगम्बर जैन उदासीन आश्रम ट्रस्ट, आश्रम एवं कुन्दकुन्द ज्ञानपीठ की संयुक्त श्रद्धांजलि सभा में दिवंगत आत्मा की शीघ्र मुक्ति एवं शोक संतप्त परिवार को धैर्य प्राप्त होने की कामना की गई।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

चि. अभिषेक जैन का आकस्मिक देहावसान

श्री विनोदकुमार जैन (लखनऊ) के ज्येष्ठ पुत्र चि. अभिषेक जैन का आकस्मिक निधन दिनांक 16.11.03 को हो गया। वे 30 वर्ष के थे। वे सीतापुर रोड़ स्थित अपनी फैक्ट्री से अपने निवास मोटरसाइकल से आ रहे थे कि अचानक पीछे से आ रहे किसी वाहन ने टक्कर मार दी जिससे मस्तिष्क में चोट लग जाने के कारण उसी समय उनकी मृत्यु हो गई। वह सरल स्वभावी एवं उदारवादी व्यक्ति थे। आपका विवाह कुरावली निवासी डॉ. रसिकलाल जैन की धेवती एवं डॉ. सुशील जैन की बहिन अल्पना जैन के साथ दिनांक 30 नवम्बर 2001 को हुआ था। श्रीमती अल्पना जैन तीर्थंकर ऋषभदेव जैन विद्वत् महासंघ की सदस्या हैं एवं अन्य अनेक संस्थाओं से जुड़ी हैं।

आपके निधन से समाज ने एक धर्मनिष्ठ युवा खो दिया। कुन्दकुन्द ज्ञानपीठ परिवार की हार्दिक श्रद्धांजलि।

श्रीमती सुन्दरदेवी डागा का देहावसान

अखिल भारतीय साधुमार्गी जैन संघ के मुखपत्र श्रमणोपासक के सम्पादक श्री चम्पालालजी डागा की धर्मपत्नी श्रीमती सुन्दरदेवी डागा का दिनांक 11.09.03 को 60 वर्ष की आयु में टी. नगर, चैन्नई में निधन हो गया। अत्यन्त धार्मिक प्रवृत्ति की निष्ठावान गुरुभक्त श्रीमती डागा को पूज्य आचार्य श्री नानेश एवं आचार्य श्री रामलालजी महाराज साहब का विशेष आशीर्वाद प्राप्त था। आप अपने पीछे भरापूरा परिवार छोड़ गई हैं। आपकी स्मृति में परिवार ने एक निधि स्थापित की है।

श्रीमंत सेठ शिखरचन्दजी जैन का देहावसान

मध्यप्रदेश के सुप्रसिद्ध समाजसेवी, उद्योगपति सर्वश्री श्रीमंत सेठ भगवानदास शोभालालजी जैन परिवार, सागर के प्रमुख सदस्य, अखिल भारतीय दिगम्बर जैन परिषद के पूर्व अध्यक्ष श्रीमंत सेठ डालचन्दजी जैन (पूर्व सांसद) के अनुज श्रीमंत सेठ शिखरचन्दजी जैन का दिनांक 13 अगस्त 2003 को बीमारी के बाद स्वस्थ होते होते धर्मध्यान पूर्वक असामयिक एवं आकस्मिक निधन हो गया है।

श्रीमंत सेठ शिखरचन्दजी जैन अत्यन्त दयालु, विनम्र, परोपकारी एवं धार्मिक प्रवृत्ति के साथ-साथ असहाय एवं बीमार व्यक्तियों को सहायता प्रदान करने वाले महान समाजसेवी एवं उदारमना व्यक्ति थे।

उनके निधन से सम्पूर्ण श्रीमंत परिवार एवं जैन समाज की अपूरणीय क्षति हुई है। वह अपने सम्पन्न परिवार के साथ अपनी धर्मपत्नी एवं दो पुत्रियों को रोता बिलखता छोड़ गये हैं - परिवार, संबंधी एवं स्नेही सभी उनके वियोग से अत्यन्त दुखी हैं। कुन्दकुन्द ज्ञानपीठ परिवार की विनम्र श्रद्धांजलि।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

धन्यवाद/आभार

किसी भी शोध संस्थान की पहली आवश्यकता होती है पुस्तकालय। इसी कारण 19.10.1987 को कुन्दकुन्द ज्ञानपीठ (शोध संस्थान) की स्थापना की घोषणा के कुछ माह बाद ही ज्ञानपीठ पुस्तकालय का शुभारम्भ 1988 में श्री देवकुमारसिंहजी कासलीवाल से भेंट स्वरूप प्राप्त जैन संस्कृति संरक्षक संघ, शोलापुर के 65 ग्रन्थों से कर दिया गया। उन्हीं से ही भारतीय ज्ञानपीठ, दिल्ली के कतिपय प्रकाशनों का सेट भी प्राप्त हुआ। कुन्दकुन्द ज्ञानपीठ, इन्दौर की शोध त्रैमासिकी अर्हत् वचन में सभी प्राप्त पुस्तकों, कुन्दकुन्द ज्ञानपीठ को भेंट स्वरूप प्राप्त पुस्तकों एवं डॉ. अनुपम जैन द्वारा प्रदत्त पुस्तकों से ज्ञानपीठ पुस्तकालय शनैः शनैः विकसित होने लगा।

24.03.1991 को पूज्य उपाध्याय मुनि श्री गुप्तिसागरजी महाराज के सान्निध्य में कुँवर दिग्विजयसिंह जैन (MSJ) के करकमलों से पुस्तकालय के नवीन भवन के उद्घाटन के साथ ही इसके विकास को गति मिली। पुस्तकालय में उपकरण के रूप में हमें निम्नांकित का विशिष्ट सहयोग मिला -

1. श्री शिवकुमार जैन, कोलकाता के माध्यम से श्री जैन मिश्रीलाल पद्मावती फाउन्डेशन ट्रस्ट - कोलकाता द्वारा बुकसेल्फ क्रय करने हेतु रुपये 1,00,000 = 00.
2. श्री राजेन्द्रकुमार जैन एवं श्रीमती सुधा जैन (न्यू पुष्पक रेस्टॉरेन्ट) द्वारा एक बुकसेल्फ।
3. डॉ. रमा जैन W/o. डॉ. नरेन्द्रकुमार विद्यार्थी, छतरपुर द्वारा एक बुकसेल्फ।
4. डॉ. सविता जैन, सम्पादिका - आदित्य आदेश, उज्जैन द्वारा एक बुकसेल्फ।

निम्नांकित पूज्य गुरुजन, ब्रह्मचारी बंधुओं, महानुभावों द्वारा हमें अनेकशः पुस्तकें प्राप्त हुई हैं -

1. पूज्य आचार्य श्री कनकनन्दिजी महाराज
2. पूज्य मुनि श्री अभयसागरजी महाराज
3. पूज्य गणिनी श्री ज्ञानमती माताजी
4. ब्र. अनिलजी, अधिष्ठाता - उदासीन आश्रम, इन्दौर
5. ब्र. सुनीलजी, उदासीन आश्रम, इन्दौर
6. ब्र. भावेशजी, उदासीन आश्रम, इन्दौर
7. ब्र. राजेशजी, सम्मेदशिखरजी
8. स्व. प्रो. जमनालालजी जैन के परिजन, इन्दौर
9. स्व. श्री ईश्वरचन्दजी बड़जात्या I.A.S. के परिजन
10. स्व. पं. वृद्धिचंद जैन, इन्दौर के परिजन
11. श्री देवकुमारसिंह कासलीवाल, इन्दौर
12. श्री अजितकुमारसिंह कासलीवाल, इन्दौर
13. डॉ. अनुपम जैन, इन्दौर
14. श्री रमेश कासलीवाल, संपादक - वीर निकलंक, इन्दौर
15. श्री जयसेन जैन, संपादक - सन्मति वाणी, इन्दौर
16. डॉ. टी. व्ही. जी. शास्त्री, सिकन्दराबाद
17. डॉ. महेन्द्रकुमार जैन 'मनुज', इन्दौर
18. डॉ. (श्रीमती) सुशीला सालगिया, इन्दौर
19. डॉ. एन. पी. जैन, पूर्व राजदूत, इन्दौर
20. डॉ. एन. एन. सचदेवा, इन्दौर
21. श्री डालचन्दजी जैन, पूर्व सांसद, सागर
22. श्री नेमिनाथजी जैन, इन्दौर
23. डॉ. रमा जैन, छतरपुर
24. श्री प्रेमचन्द जैन, संपादक - तीर्थंकर, इन्दौर
25. श्री राजेन्द्रकुमारसिंह कासलीवाल, कल्याण भवन, इन्दौर

आप सबके उदारता पूर्वक पुस्तकें प्रदान करने के कारण एवं उदासीन आश्रम ट्रस्ट द्वारा प्रदत्त अनुदान से प्रतिवर्ष पुस्तकें क्रय किये जाने के कारण ही वर्ष 2003 के अन्तिम माह में हमारे पास लगभग 10500 पुस्तकें पंजीकृत हो चुकी हैं। अन्य पूज्य मुनिराजों/आर्यिका माताओं/ब्रह्मचारी भाइयों/प्रकाशकों/दानी महानुभावों से अनुरोध है कि वे नवीन प्रकाशन हमें अनवरत भेजते रहें। जिससे कुन्दकुन्द ज्ञानपीठ पुस्तकालय देश का समृद्ध पुस्तकालय बन सके।

वर्ष 2003 में हमें अनेक नवीन पुस्तकें भेंट स्वरूप या समीक्षार्थ प्राप्त हुई हैं। उनकी सूची हम 16(1) में प्रकाशित करेंगे। पश्चात हम त्रैमासिक रूप से ऐसी सूची प्रकाशित करते रहेंगे जिससे नये प्रकाशनों की सूचना भी पाठकों को मिल सकेगी एवं पुस्तकालय भी समृद्ध होगा।

डॉ. अनुपम जैन

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

कुन्दकुन्द ज्ञानपीठ की गतिविधियाँ

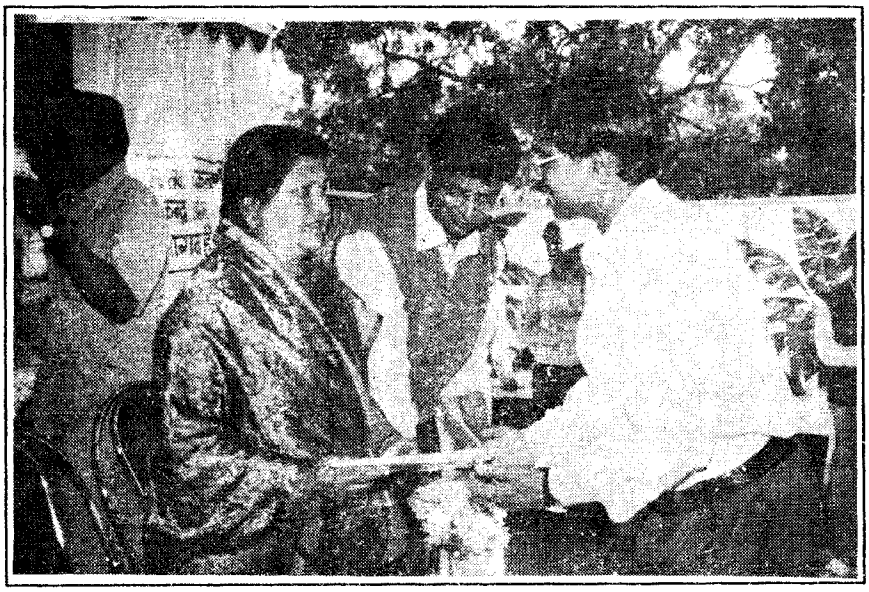

मध्यप्रदेश की नवनियुक्त शिक्षा राज्यमंत्री श्रीमती अलका जैन को कुन्दकुन्द ज्ञानपीठ, इन्दौर की अकादमिक गतिविधियों की जानकारी देते हुए संस्था के मानद सचिव डॉ. अनुपम जैन, इन्दौर (14.12.03)

पूज्य मुनि श्री पुलकसागरजी महाराज के ससंघ सान्निध्य में दिगम्बर जैन उदासीन आश्रम के अधिष्ठाता ब्र. अनिल जैन द्वारा सम्पादित 'तीर्थंकर वर्द्धमान जैन पंचांग' का विमोचन करते हुए श्री अजितकुमारसिंह कासलीवाल एवं श्रीमती विमला कासलीवाल (15.12.03)

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

मत – अभिमत

अर्हत् वचन का जनवरी - जून 2003 अंक प्राप्त हुआ है। अंक बहुत उपयोगी है तथा शोधार्थियों को संदर्भ ग्रन्थ के रूप में इससे विशेष लाभ मिलेगा। चौदह साल का पूरा लेखा - जोखा इसमें आ गया है। लेखों की विषयानुसार सूची में पहले अकारादि क्रम में लेख का नाम होता तथा उसके बाद लेखक का नाम होता और फिर प्रकाशन वर्ष तथा क्रमांक इत्यादि होते तो मेरे विचार से अधिक अच्छा रहता। फिर भी कुल मिलाकर एक अच्छा प्रयास हुआ है। इसके लिये बधाई स्वीकार करें।

■ **डॉ. अनिलकुमार जैन**
प्रबन्धक - तेल एवं प्राकृतिक गैस आयोग
14.08.03 सूर्य नारायण हाउसिंग सोसायटी, विसत पेट्रोल पम्प के सामने, अहमदाबाद

अर्हत् वचन के 15 वें वर्ष में प्रवेश पर प्रकाशित पिछले 14 वर्षों का संक्षिप्त लेखाजोखा प्रकाशित कर आपने एक अविस्मरणीय सद्कार्य किया है जो संग्रह और सन्दर्भ की दृष्टि से सृजन, अध्ययन, अनुसंधानकर्ताओं के लिये एक मार्गदर्शन का कार्य रहेगा।

अपने नाम के अनुरूप कुन्दकुन्द ज्ञानपीठ द्वारा अर्हत् वचन के रूप में यह पुरुषार्थ, धर्म, दर्शन और इतिहास संस्कृति के लिये एक रचनात्मक कार्य है, विशेषकर जैन दर्शन, धर्म, साहित्य हेतु मालवांचल ही नहीं समूचे हिन्दी जगत की एक सराहनीय कृति है।

इस धर्म यज्ञ में मैं भी मानसिक रूप से तथा किंचित लेखक - पाठक की दृष्टि से इससे जुड़ा रहा हूँ। इस कृति की प्रस्तुति के लिये माननीय देवकुमारसिंहजी कासलीवाल एवं निष्ठा और दृढ संकल्प के धनी डॉ. अनुपम जैन साधुवाद के पात्र हैं।

सदैव ही प्रगति पथ पर मार्ग प्रशस्त करती रहे यह कालजयी रचना, इसी सद्भावना सहित।

19.08.03 ■ **डॉ. शचीन्द्र उपाध्याय**
वरिष्ठ आचार्य, इतिहास विभाग, माधव महाविद्यालय, **उज्जैन**

अर्हत् वचन, वर्ष 15, अंक 1 - 2 की प्रति प्राप्त हुई। यह देखकर प्रसन्नता हुई कि आपके संरक्षण में पत्रिका में 14 वर्षों से प्रकाशित निबन्धों की सूची वर्षानुसार, विषयानुसार एवं लेखकानुसार तैयार की गई। यह अपने में शोधपूर्ण कार्य ही है, जो सराहनीय तो है ही, साथ ही शोधकर्ताओं के लिये अति उपयोगी है। आवश्यकतानुसार जिन व्यक्तियों को जिन विषयों से अभिरूचि होगी, वे तत्संबंधी निबंधों को आसानी से खोज निकालेंगे तथा लाभान्वित होंगे। ऐसी सूची के प्रकाशन के लिये आप बधाई के पात्र हैं तथा इस कार्य के लिये हार्दिक धन्यवाद है। साथ ही ज्ञानपीठ की प्रगति - गतिविधि के सम्बन्ध में भी एक ही जगह सारी सूचनाओं की भी इस अंक से जानकारी मिल जायेगी। इसी तरह अर्हत् वचन एवं ज्ञानपीठ दिन - ब - दिन प्रगति के पथ पर आगे बढ़ते रहें तथा शिक्षित समाज को प्रेरणा प्रदान करते रहें, यह हार्दिक शुभकामना है। जहाँ तक सम्भव होगा, मैं भी सहयोग करने का प्रयास करूँगा।

20.08.03 ■ **डॉ. परमेश्वर झा**
सेवानिवृत्त प्राचार्य, सरस्वती सदन, विद्यापुरी, **सुपोल** - 852 131

Having gone through Jan.-Jun. 03 issue of 'ARHAT VACANA', I am very much inclined to endorse the sentiments expressed by respected Kaka Sahib in the 'Preface' that this indeed is the outcome of the personalised attention and sustained efforts undertaken by Dr. Anupam Jain in the documentation of such an exclusive compendium.

Precisely the spectrum of topics being too wide, yet presentation has been nicely made that one can identify the item of intertest conveniently.

22.08.03 ■ **Kokal Chand Jain, Jaipur**

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

अर्हत् वचन, वर्ष - 15, अंक - जनवरी - जून 2003 प्राप्त हुआ। प्रस्तुत विशेषांक अत्यन्त उपादेय है। अनुसंधानकर्ता तथा अभ्यासक कर्ता को यह संकलन गागर में सागर जैसा है। इसी तरह कोई एक विषय लेकर 'अर्हत् वचन' का वार्षिक विशेषांक प्रकाशित करें।

■ **डॉ. दिपक म. तुपकर, सावंतवाडी - 416 510**

आपके द्वारा प्रेषित अर्हत् वचन का नया अक प्राप्त हुआ। इसमें विगत चौदह वर्षों के शैक्षणिक कार्यों और प्रकाशनों की बहुत उपयोगी जानकारी आपने प्रदान की है। कुनदकुन्द ज्ञानपीठ निरन्तर प्रगति के पथ पर अग्रसित होता रहे, मेरी ओर से यही मंगल कामना है।

10.09.03 ■ **प्रो. प्रेमसुमन जैन, उदयपुर**

आपके द्वारा प्रेषित 'अर्हत् वचन' का वर्ष 15, अंक 1 - 2, (जन. - जून 2003) प्राप्त हुआ। इस संयुक्तांक का आद्योपान्त अवलोकन करने से इस अंक की उपयोगिता का अहसास स्वत: हो जाता है। अर्हत् वचन की विगत चतुर्दश वर्षीय यात्रा का सांगोपांग विवरण विभिन्न आयामों में वर्गीकृत करते हुए जिस प्रकार प्रस्तुत किया गया है वह सम्पादक के श्रमसाध्य एवं समय साध्य प्रयास का सुपरिणाम है। तदर्थ निश्चय ही वे बधाई के पात्र हैं।

विभिन्न कोणों से सूची का निर्माण करना सम्पादक के विलक्षण बुद्धि वैशिष्ट्य की ओर इंगित करता है। पाठक जिस किसी भी रूप में 'अर्हत् वचन' के चतुर्दश वर्षीय क्रियाकलाप की जानकारी प्राप्त करना चाहे वह उसे सहज रूप में प्राप्त हो जायेगी। यह संयुक्तांक केवल सामान्य अंक नहीं है, अपितु यह एक ऐसा संग्रहणीय महत्वपूर्ण दस्तावेज है जो आद्योपान्त शोधपरक सामग्री से परिपूर्ण है। अत: शोधार्थियों के लिये तो यह उपयोगी सामग्री सुलभ कराता ही है, सामान्य जिज्ञासु पाठकों के लिये भी इसमें अपेक्षित जानकारी युक्त भरपूर सामग्री विद्यमान है। इसके अतिरिक्त प्रस्तुत संयुक्तांक से ज्ञानपीठ की उन विभिन्न गतिविधियों, संगोष्ठियों, क्रिया कलापों एवं आयोजनों की जानकारी प्राप्त होती है जो विगत चौदह वर्षों में ज्ञानपीठ द्वारा संचालित/आयोजित हुई हैं। इससे निश्चय ही एक बहुत बड़े अभाव की पूर्ति हुई है।

ज्ञानपीठ की सर्वाधिक महत्वपूर्ण उपलब्धि है निराबाध रूप से 'अर्हत् वचन' का प्रकाशन जिसमें सदैव उच्च स्तरीय शोधपूर्ण उत्कृष्ट लेखों का प्रकाशन हुआ है। इससे अल्प समय में ही पत्रिका ने अपना उच्च स्तर बना लिया और पत्रिका विद्वत् वर्ग एवं प्रबुद्धजनों में लोकप्रिय बन गई। अत: यह कहना अतिशयोक्तिपूर्ण नहीं होगा कि वर्तमान में जैनधर्म के विभिन्न पक्षों - विषयों पर शोधपूर्ण साम्रगी प्रस्तुत करने में यह पत्रिका अग्रणी रही है। सुन्दर छपाई, आकर्षक कलेवर एवं साजसज्जा के कारण भी पत्रिका ने जनमानस में अपनी पैठ बनाई है। **वर्तमान में जैन समाज में विभिन्न स्थानों से प्रकाशित होने वाली पत्रिकाएँ तो अनेक हैं किन्तु उन सभी में अर्हत् वचन ने अपना जो स्थान बनाया है वह सबसे अलग और सर्वोपरि है।** इस सब के मूल में है पत्रिका के सम्पादक डॉ. अनुपम जैन की श्रम साधना, अथक - अनवरत प्रयास तथा जैन धर्म और उसके साहित्य के प्रति समर्पण भाव। अत: वे निश्चय ही साधुवाद के पात्र हैं।

■ **आचार्य राजकुमार जैन**

25.09.03 निदेशक - जैनायुर्वेद अनुसंधान एवं चिकित्सा केन्द्र, **इटारसी**

अर्हत् वचन जनवरी - जून 03 अंक मिला। धन्यवाद। जैन विषयों में शोधकर्ताओं या अभिरूचि रखने वालों के लिये अंक निश्चय ही लाभदायक है। आप विस्तृत शोध क्षेत्र से जुड़े हैं। कई स्वयंसेवी संस्थाओं एवं दानवीरों का सहयोग प्राप्त है। किन्तु इधर शोध की चर्चा मखौल है। व्यक्तिगत आंतरिक अभिरूचि ही जोड़े हुए है। मैंने भी कई लेखों में जैन गणितज्ञों की देन का आश्रय लिया है।

■ **प्रो. गंगानन्दसिंह झा**

1.10.03 प्राध्यापक - गणित, **विनोदपुर - कटिहार (बिहार)**

अर्हत् वचन का वर्गीकृत सूची विशेषांक मुझे तथा डॉ. सुनीता को प्राप्त हो गया है। आभार लें। चौदह वर्षों में प्रकाशित सामग्री के उपयोग के सन्दर्भ एक साथ उपलब्ध हो जाने से शोधकर्ता को विशेष सुविधा होगी। कुन्दकुन्द ज्ञानपीठ का प्रगति विवरण भी आ गया। इससे संस्थान की प्रवृत्तियों की जानकारी सर्व सुलभ हो गई। 'सिरिभूवलय परियोजना' की प्रगति और पूरी योजना पर स्वतंत्र विवरण पुस्तिका का प्रकाशन ज्ञानपीठ से शीघ्र आना चाहिये।

■ **प्रो. गोकुलचन्द्र जैन**

18.10.03 जैन बालाविश्राम, धमुपुरा, **आरा - 802 301**

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

मत – अभिमत

वैसे तो आपके सम्पादकत्व में प्रकाशित 'अर्हत् वचन' का मैं नियमित पाठक हूँ। पर आपने जनवरी - जून 2003 अंक में जो 14 वर्षों के सम्पूर्ण आलेखों का विविधता के साथ विवरण और वह भी वर्षानुसार, विषयानुसार तथा लेखकानुसार दिया है, साथ ही पुरस्कृत लेखों की अलग से सूची देने से आपकी विद्वत्ता में चार चाँद लगे हैं। इसकी जितनी भी प्रशंसा की जाये, वह कम ही होगी। और फिर जुलाई - सितम्बर 2003 अंक भी आज मिला। इसमें श्री सूरजमलजी बोबरा का आलेख जिसमें धार की भोजशाला का विस्तृत विवरण इस पुष्टि के साथ कि ब्रिटिश म्यूजियम में सुरक्षित वाग्देवी सरस्वती की प्रतिमा धार भोजशाला की जैन परम्परा की मूर्ति है। इससे यह प्रमाणित है कि जिस भोजशाला की आज चर्चा है वह एक समय जैन समाज का पूजनीय स्थल था। इसके साथ ही श्री अनिलकुमार जैन का 'व्रत उपवास - वैज्ञानिक अनुचिंतन', श्री पारसमल अग्रवाल का 'आत्मज्ञान', श्री अजितकुमार जैन का 'णमोकार महामंत्र - एक वैज्ञानिक अनुचिंतन' आदि अनेक आलेख प्रकाशित कर आपने अध्येताओं और शोधार्थियों का बहुत उपकार किया है। इस प्रकार की विलक्षण प्रस्तुति के लिये आपको मेरी हार्दिक बधाई।

■ **माणिकचन्द जैन पाटनी**
अध्यक्ष - दिगम्बर जैन महासमिति मध्यांचल, **इन्दौर**

15.09.03

अर्हत् वचन का जुलाई - सितम्बर 03 अंक मुझे प्राप्त हुआ। इसमें प्रकाशित सकल सन्दर्भ शोध मूलक है। विशेषत: 'व्रत - उपवास : वैज्ञानिक अनुचिन्तन', 'अण्डाहार : धर्मग्रन्थ और विज्ञान' और 'विज्ञान एवं नेतृत्व के प्रतीक - गणेश' लेख अत्यन्त उपयोगी हैं। इन लेखों के प्रकाशित होने से पाठक समाज अवश्य प्रभावित होगा। विश्व कल्याण निमित्त इस तरह का प्रयास उत्तम एवं प्रशंसनीय है।

■ **प्रो. विश्वनाथ स्वाई**
विभागीय प्रमुख - धर्म शास्त्र विभाग,
श्री जगन्नाथ वेद कर्मकाण्ड महाविद्यालय, स्वर्गद्वार मार्ग, **पुरी** – 752 001 (उड़ीसा)

आपने एक महत्वपूर्ण शोध पत्रिका को सार्थक और सकारात्मक समकालीन जमीनी कोशिश प्रदान की है। इसका अन्तर्राष्ट्रीय स्वरूप निर्मित होता जा रहा है। यह संपादक की पत्रिका न बनकर विद्वानों, शोधकों, संस्कृति प्रेमियों की पत्रिका रही है। 15 वर्ष से अद्वितीयता व सर्वश्रेष्ठ होने की मोहर स्पष्ट तौर पर लग रही है। पत्रिका को प्राणवंत बनाने में काकाजी का संरक्षण भी उल्लेखनीय है। इस अंक में जर्नल की जगह बुलेटिन शब्द का चयन समीचीन है।

उत्तम संपादकीय के लिये साधुवाद। नायाब आलेखों के चयन में आपको महारथ हासिल है।

■ **डा. अभयप्रकाश जैन**
एन - 14, चेतकपुरी, **ग्वालियर** – 474 009

15.09.03

अर्हत् वचन के वर्ष 15 का अंक 3 मिला और उसमें आपने मेरे आलेख 'अकबर और जैन धर्म' को स्थान दिया, एतदर्थ आभारी हूँ। विविध ज्ञानवर्द्धक सामग्री संजोये पत्रिका की नयनाभिराम प्रस्तुति का श्रेय आपको है। बधाई स्वीकार करें।

मालवांचल में यत्र - तत्र प्रतिष्ठित रही जैन सरस्वती की मूर्तियों के विषय में श्री सूरजमल बोबरा के आलेख और कवि द्विजदीन की सुहेलबावनी विषयक श्री पुरुषोत्तम दुबे के आलेख ने मन मोहा।

■ **डॉ. रमाकान्त जैन**
ज्योति निकुंज, चारबाग, **लखनऊ** – 226 004

17.9.03

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

हमारे लेखक

श्री नरेशकुमार पाठक - मध्यप्रदेश शासन की सेवा में कार्यरत, अनेक वर्षों तक केन्द्रीय संग्रहालय - इन्दौर में संग्रहाध्यक्ष के पद पर सेवाएँ, 'मध्यप्रदेश का जैन शिल्प' एवं 'विदेशी संग्रहालयों में भारत की जैन मूर्तियाँ' शीर्षक पुस्तकों के लेखक। सम्प्रति जिला संग्रहालय - पन्ना में संग्रहाध्यक्ष के पद पर पदस्थ। अर्हत् वचन के नियमित लेखक।

श्री रामजीत जैन एडवोकेट - जैन इतिहास एवं पुरातत्व के वरिष्ठ अध्येता, जैसवाल, खरौआ, बरैया, बुढेलवाल आदि जैन जातियों के इतिहास ग्रन्थों तथा गोपाचल (ग्वालियर) पर शोधपूर्ण कृति के लेखक, श्रुत संवर्द्धन पुरस्कार से सम्मानित, अर्हत् वचन के नियमित लेखक।

श्री शांतिराज शास्त्री - कन्नड़ भाषी प्रसिद्ध जैन विद्वान, कन्नड़ भाषा में जैन दर्शन पर अनेक शोधपूर्ण आलेखों के लेखक, स्वर्गस्थ विद्वान।

प्रो. पद्मावतम्मा - मैसूर विश्वविद्यालय - मैसूर के गणित विभाग में प्राध्यापक पद पर कार्यरत, जैन गणित में विशेष रूचि, महावीराचार्य कृत 'गणित सार संग्रह' का कन्नड़ अनुवाद कर भारतीय गणित की महती सेवा।

समणी सत्यप्रज्ञा - श्वेताम्बर तेरापंथ जैन धर्म संघ के नायक आचार्य श्री महाप्रज्ञजी की आज्ञानुवर्ती सुशिष्या, जैन विश्व भारती संस्थान (मानित विश्वविद्यालय), लाड़नूँ से सम्बद्ध।

श्री सूरजमल बोबरा - जैन इतिहास के अध्येता, ज्ञानोदय फाउन्डेशन - इन्दौर के माध्यम से जैन इतिहास के अध्ययन एवं अनुसंधान कार्य को विकसित करने हेतु प्रयासरत। ज्ञानोदय पुरस्कार के प्रायोजक, ज्ञानोदय फाउन्डेशन के निदेशक।

आचार्य राजकुमार जैन - भारतीय चिकित्सा अनुसंधान परिषद के पूर्व निबन्धक एवं सचिव, जैन आयुर्वेद के वरिष्ठ अध्येता, जैनायुर्वेद विषयक अर्हत् वचन में प्रकाशित अनेक आलेखों के लेखक।

डॉ. रमेश जैन - रमेश नूतन नाम से राष्ट्रीय स्तर पर मूर्तिकार के रूप में प्रसिद्ध, वर्तमान में भोपाल के मौलाना आजाद राष्ट्रीय प्रौद्योगिकी संस्थान में वास्तुकला एवं नियोजन विभाग में प्राध्यापक के पद पर कार्यरत। ललित कला के क्षेत्र में देश विदेश में शिक्षा प्राप्त करने के बाद पिछले दो दशकों से हड़प्पा संस्कृति के अभिलेखों कर शोध कार्यरत। 1991 में बरकतउल्ला विश्वविद्यालय, भोपाल से डाक्टर ऑफ फिलासफी की उपाधि प्राप्त। सम्प्रति 'हड़प्पा वासियों के अभिलेख एवं उनके लेखक' विषय पर आप विश्वविद्यालय अनुदान आयोग की वृहद् शोध परियोजना पर कार्यरत।

श्री दिपक जाधव - कुन्दकुन्द ज्ञानपीठ, इन्दौर के माध्यम से जैन गणित, विशेषत: सिद्धान्तचक्रवर्ती आचार्य श्री नेमिचन्द्र के ग्रन्थों में निहित गणित पर पी.एच.डी. हेतु कार्यरत। सम्प्रति जवाहरलाल नेहरू आदर्श शासकीय उच्चतर माध्यमिक विद्यालय, बड़वानी में व्याख्याता - गणित के पद पर कार्यरत।

डॉ. (श्रीमती) जया जैन - जैन चित्रकला में पी.एच.डी. की उपाधि प्राप्त। अनेक शोधालेखों की लेखिका। सम्प्रति ग्वालियर में शोधरत।

प्रो. महेश दुबे - प्राचीन भारतीय गणित के विशिष्ट अध्येता, धर्म एवं विज्ञान के सम्बन्धों पर गहन चिन्तन करने वाले वरिष्ठ विद्वान। सम्प्रति होलकर स्वशासी विज्ञान महाविद्यालय, इन्दौर के गणित विभाग में पदस्थ।

डॉ. अनुपम जैन - जैन गणित पर अनुसंधानरत, कुन्दकुन्द ज्ञानपीठ - इन्दौर के मानद सचिव, भारतीय गणित इतिहास परिषद, दि. जैन त्रिलोक शोध संस्थान एवं अन्य अनेक राष्ट्रीय संस्थाओं से सम्बद्ध। सम्प्रति होलकर स्वशासी विज्ञान महाविद्यालय के गणित विभाग में पदस्थ।

ब्र. संदीप 'सरल' - जैन पाण्डुलिपियों के सर्वेक्षण, संकलन एवं संरक्षण हेतु समर्पित, दिगम्बर जैन धर्म की मर्यादाओं के अनुरूप व्रती जीवन का निर्वाह कर रहे जैन न्याय के विद्वान, अनेकान्त ज्ञान मन्दिर - बीना के संस्थापक।

श्री मुकेशकुमार जैन - श्रुत संवर्द्धन संस्थान - मेरठ की गतिविधियों के संचालन में सहभागी, सराक सोपान के सम्पादक मंडल के सदस्य।

डॉ. विजयकुमार जैन - 'श्रुत संवर्द्धिनी' मासिक के सम्पादक, राष्ट्रीय संस्कृत संस्थान (मानित विश्वविद्यालय - लखनऊ परिसर) में उपाचार्य के पद पर पदस्थ। सम्पर्क - 5/779, विराम खण्ड, गोमती नगर, लखनऊ।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

प्राचार्य श्री नरेन्द्रप्रकाश जैन का अभिनंदन समारोह संपन्न

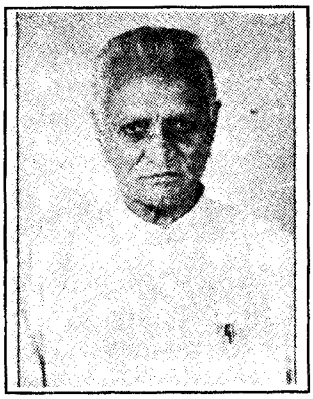

विद्या, विनय, विवेक के जीवंत व्यक्तित्व, जैन दर्शन के उद्भट विद्वान एवं जैन गजट के यशस्वी संपादक **प्राचार्य श्री नरेन्द्रप्रकाशजी जैन** का अभिनंदन समारोह अत्यंत भव्यता के साथ कोलकाता के कलामंदिर प्रेक्षागृह में 25 दिसम्बर 2003 को सम्पन्न हुआ। इस अवसर पर देशभर के हजारों लोगों ने उपस्थित होकर समारोह को गरिमामय बनाया।

श्री भारतवर्षीय दिगम्बर जैन (धर्मसंरक्षिणी) महासभा (पश्चिम बंगाल शाखा) के तत्वावधान में आयोजित त्रिदिवसीय अभिनंदन समारोह (24 - 26 दिसबर 03) के मुख्य अतिथि कोलकाता के मेयर **श्री सुब्रतो मुकर्जी** थे। कार्यक्रम का उद्घाटन श्री धर्मचंद पाटनी ने किया। समारोह की अध्यक्षता वयोवृद्ध समाजसेवी, श्री हरकचंद सरावगी ने की। मुख्य अतिथि ने अपने उद्बोधन में विद्वानों के प्रति पूर्ण समर्पण की बात कही। आपने कहा कि राजाओं का सम्मान सिर्फ उनके राज्य में ही होता है किन्तु विद्वानों का सम्मान सर्वत्र होता है। बंगला भाषा में अपने उद्बोधन में आपने कहा कि हमारा देश सिर्फ विद्वानों के दम पर ही चल रहा है। आपने जैन धर्म के सिद्धांतों को आत्मसात करने की बात कही तथा इस क्षेत्र में शिक्षा का कार्य करने हेतु कोलकाता में कोई भी समुचित भूमि देने की घोषणा की।

मुख्य समारोह में प्राचार्यजी के साथ डॉ. चीरंजीलाल बगड़ा (प्रबन्ध सम्पादक) एवं डॉ. अनुपम जैन (सदस्य - संपादक मंडल)

श्री नीरज जैन (सतना) ने कहा कि प्राचार्यजी के पिताश्री ने यह अवश्य कहा होगा कि मेरा बेटा भले ही प्रतिष्ठाचार्य न बन पाए लेकिन उसकी प्रतिष्ठा किसी भी प्रतिष्ठाचार्य से अधिक ही होगी।

तीर्थंकर ऋषभदेव जैन विद्वत् महासंघ के पूर्व अध्यक्ष, प्राचार्यजी के अत्यन्त करीबी, देश के मूर्धन्य विद्वान, **पं. शिवचरनलाल जैन, मैनपुरी** ने उन्हें ग्राम जटौआ का जाट निरूपित करते हुए जैन समाज के प्रति उनके समर्पण पर प्रकाश डाला।

तीर्थंकर ऋषभदेव जैन विद्वत् महासंघ के संस्थापक महामंत्री एवं अभिनंदन ग्रंथ मनीषा संपादक मंडल के सदस्य **डॉ. अनुपम जैन (इन्दौर)** ने कहा कि संपूर्ण देश के विद्वानों के लिए प्राचार्यजी आदर्श हैं, इनके सम्मान से हमारा गौरव बढ़ा है। इनमें अभूतपूर्व संगठन शक्ति है। आपने कहा कि यह सत्य है कि आपने कोई महाकाव्य एवं उपन्यास नहीं लिखा किन्तु आपके संपादकीय एवं अन्य आलेखों के संकलन **'समय के शिलालेख'** एवं **'चिंतन प्रवाह'** शीर्षक पुस्तकें समाज को दिशा देने वाली है। मेरा निवेदन है कि इनके शेष संपादकीय

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

आलेखों के संकलन को भी प्रकाशित किया जाना चाहिए।

तीर्थंकर ऋषभदेव जैन विद्वत् महासंघ के परामर्शदाता कर्मयोगी **ब्र. रवीन्द्रकुमार जैन, हस्तिनापुर** ने प्राचार्यजी को विद्वानों का विद्वान निरूपित किया तथा जैन धर्म के प्रति उनके समर्पण की मुक्तकंठ से प्रशंसा की। आपने कहा कि ऐसे विद्वान बिरले ही होते हैं जो अपना संपूर्ण जीवन धर्म के प्रति समर्पित कर देते हैं। प्राचार्यजी इसकी बेहद ही खुबसूरत मिसाल हैं। आपने आगे कहा कि समाज में आज विद्वानों की कमी होती जा रही है। प्राचार्यजी इस हेतु समाज में गांधी की भूमिका का निर्वाह करें एवं प्राचार्य से आचार्य बनें। आपने **पूज्य गणिनीप्रमुख आर्यिका श्री ज्ञानमती माताजी** का संदेश भी प्रस्तुत किया।

महासभा के अध्यक्ष **श्री निर्मलकुमारजी सेठी** ने अपना उद्बोधन चारित्रचक्रवर्ती आचार्य श्री शांतिसागरजी, गणिनीप्रमुख आर्यिका श्री ज्ञानमतीजी एवं आर्यिका श्री सुपार्श्वमतीजी तथा मुनिसंघों की जय के साथ प्रारंभ किया। आपने प्राचार्यजी की निर्लोभी वृत्ति की चर्चा करते हुए इस बात का खुलासा किया कि प्राचार्यजी ने विगत 23 वर्षों से जैन गजट का कुशलतापूर्वक संपादन किया है किन्तु इस हेतु उन्होंने एक पैसा भी नहीं लिया है। आपने कहा कि मैं प्राचार्यजी में मुनिमुद्रा के दर्शन करना चाहता हूँ।

दिशाबोध के संपादक **डॉ. चीरंजीलाल बगड़ा** ने कहा कि यदि संपूर्ण मानव की पहचान करना है तो प्राचार्यजी के जीवन को आत्मसात करें। वे मानव मुकुट हैं तथा हजारों में अनोखे हैं। अभिनंदन ग्रंथ मनीषा को उपयोगी बताते हुए उसे संदर्भ ग्रंथ के रूप में पढ़े जाने की भी अपील उन्होंने की।

प्राचार्य श्री नरेन्द्रप्रकाश जैन अभिनंदन समारोह में असम, नागालैंड, मध्यप्रदेश, छत्तीसगढ़, महाराष्ट्र, उत्तरप्रदेश, बिहार, बंगाल, उड़ीसा, झारखंड, दिल्ली, कर्नाटक सहित कई प्रदेशों के लोग उपस्थित थे। इस अवसर पर 700 पृष्ठीय अभिनंदन ग्रंथ 'मनीषा' की प्रारूप पुस्तिका का विमोचन कोलकाता के मेयर श्री सुब्रतो मुकर्जी ने किया। तत्पश्चात् मेयर का शॉल और श्रीफल से सम्मान भी किया गया। प्राचार्यजी एवं उनकी धर्मपत्नी श्रीमती राजेश्वरी देवी को मंच पर शादी का साफा पहनाकर, गठजोड़ बाँधकर की गई संगीतमय पुष्पवर्षा बेहद आकर्षक थी।

इस अवसर पर श्री कैलाशचंद बड़जात्या, श्री महावीरजी गंगवाल, श्री महावीरजी गंगवाल, श्री त्रिलोकचंद सेठी, श्री जयकुमार जैन, श्री कपूरचंद पाटनी, श्री अनूपचंद जैन एडवोकेट ने भी अपने विचार रखे। कुन्दकुन्द ज्ञानपीठ की ओर से सचिव डॉ. अनुपम जैन ने सम्मान किया।

प्राचार्यजी ने अपने अभिनंदन के प्रत्युत्तर में कहा कि मैं कल्पना भी नहीं कर सकता कि देश के कोने-कोने से इतने लोगों का प्यार मुझे मिलेगा। मुझे प्रसन्नता है कि गणिनी प्रमुख आर्यिका श्री ज्ञानमती माताजी तथा गणिनी आर्यिका श्री सुपार्श्वमती माताजी ने अपने दूतों (कर्मयोगी ब्र. रवीन्द्रकुमार जैन एवं ब्र. डॉ. प्रमिला जैन) के माध्यम से मुझे आशीर्वाद प्रदान किया है। मैं आचार्यश्री विद्यासागरजी, आचार्यश्री वर्द्धमानसागरजी, आचार्यश्री अभिनंदनसागरजी का भी कृतज्ञ हूँ जिन्होंने मुझे इस अवसर पर आशीर्वाद प्रदान किया। मैं उन सभी पूर्ववर्ती विद्वानों का कृतज्ञ हूँ जिन्होंने मुझे इस लायक बनाया है। कोलकाता वालों के दिलों में मेरे प्रति जो भाव हैं उसे मैं अपने पूर्व जन्म के पुण्य का प्रताप तथा यशकीर्ति कर्म के उदय का प्रतिफल मानता हूँ। आपने स्वाध्याय की परंपरा निभाने पर जोर दिया ताकि माँ सरस्वती का सम्मान होता रहे। आपने कोलकाता वासियों से **'गौरव**

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

भारती' संस्था बनाने की अपील की ताकि प्रतिवर्ष एक पी.एच.डी. शोध ग्रंथ को प्रकाशित किया जा सके। आपने कहा कि मैं सम्मान पाकर बहक न जाऊँ, अतः मुझे सावधान भी करते रहें।

कार्यक्रम का संचालन वर्द्धमान संदेश के संपादक श्री **अजीत पाटनी** ने किया तथा आभार श्री महावीर गंगवाल ने माना।

सायंकाल में देश की कई प्रतिनिधि संस्थाओं, अ. भा. दिगम्बर जैन शास्त्री परिषद, तीर्थंकर ऋषभदेव जैन विद्वत् महासंघ की कार्यकारिणी की बैठकें तथा जैन संपादक सम्मेलन आयोजित किया गया। देश भर के लगभग 32 पत्र - पत्रिकाओं के संपादकों ने जैन पत्रकार परिषद का गठन कर संचालन करने के लिये एक त्रिसदस्यीय कमेटी गठित की जिसमें डॉ. चिरंजीलाल बगड़ा (कोलकता), डॉ. अनुपम जैन (इन्दौर) एवं डॉ. सुरेन्द्र भारती (बुरहानपुर) (संयोजक) शामिल हैं।

24 - 12 - 03 के रात्रिकालीन सत्र में महासभा के अधिवेशन के दौरान जैन शिक्षण नीति पर लंबी चर्चा की गई। डॉ. अनुपम जैन, इन्दौर ने कहा कि 1980 में आर्यिकारत्न श्री ज्ञानमती माताजी के सान्निध्य में बैठकर शिक्षा नीति की चर्चा हुई थी। जरूरत है इस पर योजनाबद्ध तरीके से कार्य करने की। श्री निर्मलकुमार सेठी ने कहा कि महासभा अब विद्यावाहिनी प्रोजेक्ट के माध्यम से शिक्षा के क्षेत्र में कार्य करेगी तथा हमारा नारा शिक्षा - शिक्षा - शिक्षा, प्रेम - प्रेम - प्रेम ही होगा। श्री जे. के. जैन, मुम्बई ने इस अवसर पर महासभा की प्रस्तावित शिक्षा योजना पर प्रकाश डाला। रमेश कासलीवाल ने इन्फार्मेशन टेक्नोलॉजी के युग में बेसिक तैयारी पर जोर दिया। डॉ. भागचन्द जैन 'भागेन्दु' ने कुन्दकुन्द ज्ञानपीठ में किये गये विकास की चर्चा की तथा कहा कि जब डॉ. अनुपम जैन जैसा युवा विद्वान हमारे पास है तो हम निश्चित रूप से आगे बढ़ेंगे। श्री लालमणिप्रसाद जैन बरैया ने बड़ी - बड़ी योजनाओं में छोटे - छोटे गाँवों को भी समाविष्ट करने पर बल दिया। पूर्व विधायक श्री कपूरचन्द घुवारा ने कहा कि जो पाठशालाएँ चल नहीं रही हैं उन्हें हम जीवन्त बनायें। प्राचार्य नरेन्द्रप्रकाश जैन ने सिर्फ दो पाठशालाओं को गोद लेकर उन्हें मॉडल का रूप प्रदान करने पर बल दिया। डॉ. संजीव सराफ, सागर ने विभिन्न परीक्षाओं के लिये बड़ी जगहों पर होस्टल बनाने तथा शुद्ध भोजन की व्यवस्था की बात कही। संचालन महासभा के राष्ट्रीय महामंत्री **श्री चैनरूप बाकलीवाल** ने किया।

अभिनन्दन समारोह के दूसरे दिन श्री दिगम्बर जैन बड़ा मन्दिरजी में कर्मयोगी ब्र. रवीन्द्रकुमार जैन की अध्यक्षता में विशेष सम्मान सभा का आयोजन किया गया। इस अवसर पर आकाशवाणी कलाकार श्री प्रदीप गंधर्व एवं श्री रमेश कासलीवाल, इन्दौर ने सुन्दर भजन प्रस्तुत किये। महासभा द्वारा प्राचार्यजी को प्रदत्त राशि एक लाख रुपये में प्राचार्यजी ने अपनी तरफ से पाँच हजार जोड़ते हुए शास्त्री परिषद को विद्वानों के सम्मान के लिये समर्पित किये जाने की घोषणा की सभी ने भूरि - भूरि प्रशंसा की। आपने कहा कि मेरे पूज्य पिताजी स्व. श्री रामस्वरूपजी की स्मृति में प्रतिवर्ष इस राशि की ब्याज राशि से एक पुरस्कार संचालित किया जाये। इस अवसर पर तीर्थंकर ऋषभदेव जैन विद्वत् महासंघ द्वारा प्राचार्यजी का शॉल, श्रीफल से अभिनन्दन किया गया। सम्मान पत्र का वाचन महासंघ के अध्यक्ष डॉ. शेखरचन्द जैन के किया। साथ ही दिगम्बर जैन त्रिलोक शोध संस्थान, कुन्दकुन्द ज्ञानपीठ, अ. भा. दिगम्बर जैन युवा परिषद, विद्वत् परिषद, शास्त्री परिषद सहित देश की कई संस्थाओं ने प्राचार्यजी का सम्मान किया। दिगम्बर जैन महासमिति के राष्ट्रीय कार्याध्यक्ष श्री माणिकचन्द पाटनी (इन्दौर) ने शाल ओढ़कर प्राचार्यजी का सम्मान किया।

यह सम्मान समारोह सभी दृष्टियों से अभूतपूर्व रहा।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

25 दिसम्बर 03 को कलामन्दिर प्रेक्षागृह में प्रशस्ति के साथ प्राचार्यजी एवं आयोजन समिति के पदाधिकारीगण

दिगम्बर जैन त्रिलोक शोध संस्थान, हस्तिनापुर एवं कुन्दकुन्द ज्ञानपीठ, इन्दौर द्वारा सम्मान के उपरान्त प्रतीक चिन्ह के साथ प्राचार्यजी

दि. जैन महासमिति की ओर से प्राचार्यजी का सम्मान करते हुए राष्ट्रीय कार्याध्यक्ष श्री माणिकचन्द पाटनी (इन्दौर)। समीप खड़े हैं श्री रमेश कासलीवाल एवं डॉ. अनुपम जैन (इन्दौर)

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

विविध गतिविधियाँ

कोलकाता से पधारे श्री सुशीलचन्दजी का कुन्दकुन्द ज्ञानपीठ पुस्तकालय में स्वागत करते हुए मानद सचिव डॉ. अनुपम जैन। समीप खड़े हैं श्री निर्मलचन्दजी सोनी (बायें) एवं श्री अजितकुमारसिंह कासलीवाल (दाएं)

भगवान महावीर जन्मभूमि कुण्डलपुर (नालंदा) में विचार मूंजषा पुस्तक का विमोचन करते हुए रेल मंत्री श्री नीतिशकुमारजी। समीप हैं श्री कैलाशचन्द जैन श्री कमलचन्द जैन (खारी बावली) श्री अनिलकुमार जैन (कमल मन्दिर, दिल्ली), कर्मयोगी ब्र. रवीन्द्रकुमार जैन (हस्तिनापुर) एवं डॉ. अनुपम जैन (संपादक)

महावीर ट्रस्ट के आयोजन में संस्थाध्यक्ष श्री देवकुमारसिंह कासलीवाल के साथ मध्यप्रदेश के तत्कालीन मुख्यमंत्री श्री दिग्विजयसिंह जी

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

राजस्थान के राज्यपाल महामहिम श्री निर्मलचन्द जैन की स्मृतियाँ

महामहिल श्री निर्मलचन्दजी जैन के साथ संस्थाध्यक्ष श्री देवकुमारसिंह कासलीवाल, इन्दौर। पार्श्व में श्री माणिकचन्द पाटनी

(27.07.03)

महामहिम श्री निर्मलचन्दजी जैन का पुष्पहार से सम्मान करते हुए कुन्दकुन्द ज्ञानपीठ के मानद सचिव डॉ. अनुपम जैन

(27.07.03)

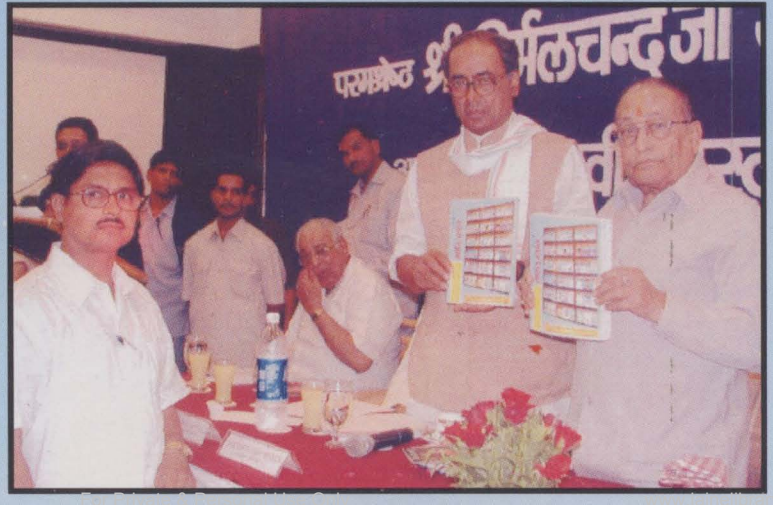

अर्हत् वचन के विशेषांक का लोकार्पण करते हुए महामहिम राज्यपाल– राजस्थान एवं तत्कालीन माननीय मुख्यमंत्रीजी। समीप खड़े हुए डॉ. अनुपम जैन तथा बैठे हुए श्री नेमनाथजी जैन

(27.07.03)

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org